रूदाद

जमाअते-इस्लामी

(भाग-6)

विषय-सूची

कार्रवाई कुल हिन्द इजतिमा

✦✦✦

अल्लाह के नाम से जो बड़ा मेहरबान और रहमवाला है।

कार्रवाई कुल हिन्द इजतिमा

जमाअते-इस्लामी हिन्द, रामपुर (यू. पी.)

दिनांक 20, 21, 22, अप्रैल 1951 ई.

देश के बँटवारे के बाद जमाअत की नई व्यवस्था जब से क़ायम हुई, रुफ़क़ा (साथियों) का बराबर मुतालबा था और ख़ुद जमाअत की मस्लिहतों का तक़ाज़ा भी था कि कुल हिन्द इजतिमा का आयोजन किया जाए, ताकि जो साथी देश के विभिन्न हिस्सों में बिखरे हुए हैं और बदले हुए हालात में नई-नई समस्याओं से दोचार हैं वे एक जगह जमा हों और एक-दूसरे से विचारों के आदान-प्रदान के ज़रिए उनके हालात और काम करने के ढंग को क़रीब से समझने की कोशिश करें। लेकिन देश के आम दंगा ग्रस्त हालात, ग़ैर-मुस्लिम वर्ग की बद-गुमानियों और मुसलमानों के डर और ख़ौफ़ ने इस तरह के किसी इजतिमा का मौक़ा नहीं दिया। इसलिए ज़रूरतों और दिली ख़ाहिशों के बावजूद कोई कुल हिन्द इजतिमा आयोजित नहीं किया जा सका। हालाँकि यह ज़रूरत थोड़ी बहुत हल्क़ावारी इजतिमाआत के ज़रिए से पूरी की जाती रही।

पिछले साल जब हालात कुछ बेहतर हुए तो कुल हिन्द इजतिमा की तैयारी भी शुरू कर दी गई। लेकिन जब तैयारी पूरी होने ही वाली थी कि अचानक जमाअत के मर्कज़ (रामपुर) के क़रीबी ज़िलों में दंगे शुरू हो गए और दंगों से प्रभावित इलाकों के उजड़े हुए ख़ानदान 'रामपुर' में पनाह लेने लगे, जिनकी तरफ़ जमाअत ने ध्यान दिया। इस तरह पूरी तैयारी होने के बावजूद कुल हिन्द इजतिमा को मुल्तवी (स्थगित) करना पड़ा।

10 जनवरी, 1951 ई. की मजलिसे-शूरा के इजलास में इस मसले पर

फिर ग़ौर किया गया। उस समय तक दंगों के असरात बहुत हद तक ख़त्म हो चुके थे। रुफ़क़ा के ख़त बराबर आ रहे थे और जमाअत के हित में भी यह बात ज़रूरी मालूम हो रही थी । इसलिए मजलिसे-शूरा में तय किया गया कि कुल हिन्द इजतिमा रामपुर में किया जाए, जिसमें दक्षिणी भारत के सिर्फ़ नुमाइन्दे बुलाए जाएँ और उत्तरी भारत के रुफ़क़ा को यह सहूलत दी गई कि किसी शरई मजबूरी के सिवा अपनी दूसरी क़ाबिले-लिहाज़ कारोबारी या सामाजिक मजबूरियों के सबब ग़ैर-हाज़िर रहने की इजाज़त दी जा सकती है।

इसलिए इस फ़ैसले के बाद इजतिमा किए जाने का एलान कर दिया गया, जिसके लिए जमाअत और रुफ़क़ा की सहूलत का ख़याल करते हुए 20, 21, 22, अप्रैल सन् 1951 ई. (13, 14, 15, जुमादल-आख़िरा 1370 हि.) की तारीख़ें तय की गईं। इजतिमागाह के लिए शहर रामपुर में सआदत यार ख़ाँ साहब की कोठी, निकट थाना पाखड़ को चुना गया और इजतिमा के इंचार्ज मुहम्मद युसुफ़ साहब सिद्दीक़ी (टोंक) बनाए गए।

इजतिमा से एक महीना पहले बड़े इश्तिहारात (पोस्टर), हैण्डबिल और दावतनामे छपवाए गए जो पास के इलाक़ों के अलावा दूसरी जगहों पर भी, जहाँ जमाअतें या हल्क़े क़ायम थे, बाँट दिए गए। देश के बँटवारे के बाद यह पहला इजतिमा हो रहा था इसलिए क़ुदरती तौर पर जमाअती हल्क़ों के अलावा दूसरे हल्क़ों में भी इस इजतिमा के साथ दिलचस्पी दिखाई गई। लेकिन हमें अफ़सोस है कि कुछ लोगों ने जानकारी न होने की वजह से अमन की ग़रज़ के लिए इस इजतिमा को ग़लत शक्ल में पेश करने की कोशिश की। इसलिए इसी ज़माने में कई अख़बारों में यह ख़बर प्रकाशित हुई कि :

"रामपुर में जमाअते-इस्लामी का इजलास 20, 21, 22, अप्रैल 1951 ई. को"

रामपुर, 22 मार्च। मालूम हुआ है कि जमाअते-इस्लामी का कुल हिन्द

सालाना इजलास रामपुर में 20 से 22 अप्रैल तक होगा। जिसमें सारे हिन्दुस्तान से जमाअते-इस्लामी के लीडर शरीक होंगे और आइन्दा के लिए कार्य नीति बनाई जाएगी। इस इजलास में शरीक होने के लिए और भी मुस्लिम लीडरों को बुलाया गया है। वे सब मिलकर इस बात पर विचार करेंगे कि मुसलमान राजनीति में किस प्रकार भाग लें और कौन-सी ऐसी राजनीतिक पार्टी में शरीक हों कि उन्हें आनेवाले चुनाव में अधिक-से-अधिक सीटें मिल सकें।" (अख़बार मदीना 28 मार्च, 1951 ई.)

इसी प्रकार की ख़बरों को देखते हुए मौलाना अबुल्लैस साहब इस्लाही (अमीर जमाअते-इस्लामी हिन्द) ने एक तफ़सीली बयान दिया जो स्थानीय और बाहर के उर्दू-अंग्रेज़ी अख़बारों में प्रकाशित हुआ। बयान नीचे दर्ज किया जाता है :

"मुझे यह जानकर अफ़सोस हुआ कि जमाअते-इस्लामी हिन्द का जो कुल हिन्द इजतिमा 20, 21, 22, अप्रैल को रामपुर में होनेवाला है उसके बारे में कुछ पत्रकारों ने ग़ैर-ज़िम्मेदाराना तौर पर कुछ ऐसी सूचनाएँ दी हैं जिन से बेवजह जमाअत के बुनियादी मक़सद और तरीक़ेकार के बारे में ग़लतफ़हमियाँ फैल जाने की आशंका है, इसलिए मैं मुख़्तसर तौर पर जमाअत के बुनियादी मक़सद और तरीक़ेकार और आनेवाले इजतिमा के बारे में कुछ ज़रूरी बातें कह देना मुनासिब समझता हूँ।

जमाअते-इस्लामी एक उसूली जमाअत है जिसका मक़सद दीन के बुनियादी उसूलों की तबलीग़ व इशाअत (प्रचार-प्रसार) है और जो ख़ुदा परस्ताना अख़लाक़ की बुनियादों पर समाज की तामीर करना चाहती है। क्योंकि मौजूदा सियासत को ख़ुदा-परस्ती के नज़रियात से कोई ताल्लुक़ नहीं है। इसलिए इसमें हिस्सा लेना वह अपने उसूलों के ख़िलाफ़ समझती है। यही वजह है कि पिछले किसी भी चुनाव में जमाअत ने हिस्सा नहीं लिया और न आनेवाले चुनाव में वह किसी प्रकार का हिस्सा लेना चाहती है।

रामपुर में जो इजतिमा हो रहा है वह इसी तरह का इजतिमा है, जैसा कि इससे पहले देश के विभिन्न हिस्सों में कई बार हो चुका है। इस तरह के

इजतिमाआत के मक़सद सिर्फ़ दो हैं, एक यह कि जो लोग जमाअत के मक़सद के अनुसार दीनी और इस्लाही (समाज के सुधार का) काम कर रहे हैं वे साल में एक बार जमा होकर अपनी कोशिशों का जाइज़ा ले सकें। दूसरा मक़सद यह है कि जमाअत की दावत (पैग़ाम) से देश के तमाम गंभीर और सोच-समझ रखनेवाले लोगों को वाक़िफ़ कराया जाए। इसलिए हम अपने इजतिमाआत में किसी धर्म व जाति के भेदभाव के बिना हर जमाअत और हर क़ौम व हर फ़िरक़े (वर्ग) के सोच-समझ रखनेवाले लोगों को शरीक होने की दावत देते हैं। और हमें यह ज़ाहिर करते हुए ख़ुशी होती है कि हमारी दावत (पैग़ाम) पर इस तरह के लोग बराबर शरीक होते रहे हैं। चुनाँचे एक बार पटना के एक इजतिमा में ख़ुद गाँधी जी ने हिस्सा लिया था और उसके बाद अपनी प्रार्थना के एक भाषण (तक़रीर) में इस इजतिमा में शामिल होने पर अपने विचार प्रकट करते हुए कहा था कि "अगर मुझे पहले से मालूम होता कि यह ऐसे लोगों का इजतिमा है तो मैं वहाँ पैदल चलकर जाता।" अपने इस तरीक़ेकार के मुताबिक़ हमने इस साल भी देश के कई नामी-गिरामी व्यक्तियों के नाम बिना किसी धार्मिक भेद-भाव के दावतनामे भेजे हैं और इस प्रकार के जो लोग हमारे इस इजतिमा में शरीक होंगे हम उनका स्वागत करेंगे।" (7, अप्रैल 1951 ई.)

ख़ुदा का शुक्र है कि इस बयान के बाद अख़बारों की तरफ़ से ग़लत बयानी का सिलसिला थम गया। लेकिन रामपुर के दो स्थानीय अख़बारों ने इस के बावजूद एक ही तारीख़ में, लगभग एक जैसे अलफ़ाज़ में, रामपुर में इजतिमा के आयोजित होने पर इस वजह से एतिराज़ किया कि इस से साम्प्रदायिक तत्वों को रामपुर के मुसलमानों को बदनाम करने का मौक़ा मिल जाएगा। इस सिलसिले में अख़बार 'आग़ाज़' ने जो नोट लिखा था वह इस प्रकार है।

"जमाअते-इस्लामी का सालाना जलसा (अधिवेशन) रामपुर में 20, 21, 22, अप्रैल को आयोजित हो रहा है जिसके बारे में पैदा होनेवाली ग़लत-फ़हमियाँ दूर करने के लिए अमीरे-जमाअत मौलाना अबुल्लैस साहब

का एक बयान भी इसी अंक में प्रकाशित किया जा रहा है। अगर्चे जमाअते-इस्लामी का अब तक जो कुछ काम रहा है या समय-समय पर जो इजतिमाआत देखने में आए हैं वे राजनीति से बिलकुल अलग रहे हैं, साथ ही यह भी एक हक़ीक़त है कि जमाअते-इस्लामी के अरकान (मेम्बर) बहुत कम तादाद में हैं। हालाँकि पिछले कुछ समय से इसका मर्कज़ (केन्द्र) रामपुर में स्थानान्तरित हो चुका है, लेकिन यहाँ भी इस के अरकान की तादाद "चन्द (कुछ)" से आगे नहीं बढ़ी है। यह जमाअत जो पैग़ाम (सन्देश) देती है वह क़ुरआन की रौशनी में देती है और इसकी दावते-फ़िक्र, सोचने-समझने के लिए प्रेरित करने का दायरा किसी क़ौम या सम्प्रदाय व मज़हब तक सीमित नहीं, लेकिन इस सबके बावजूद यह इजतिमा आज के ज़माने में रामपुर जैसे छोटे और मुस्लिम बाहुल्य शहर में साम्प्रदायिक तत्वों के लिए इस बात की गुंजाइश पैदा करता है कि वे इससे साम्प्रदायिकता की हवा दें। अपने सहयोगी अख़बारों में इसे बुरी तरह उछालें और बदनाम करें। इसलिए अच्छा तो यही होता कि यह इजतिमा दिल्ली, लखनऊ, इलाहाबाद या कानपुर में किया जाता, क्योंकि रामपुर को अब तक कुछ लोग और साम्प्रदायिक समाचार पत्र बुरा-भला कहने और बदनाम करने पर तुले हुए हैं, और वे हर मामले में मौक़ा व बेमौक़ा रामपुर के ख़िलाफ़ प्रोपैगन्डा करने और ज़हर उगलने में कमी नहीं करते।

माना कि जमाअत के इजतिमाआत में हर धर्म व सम्प्रदाय के लोगों के लिए दरवाज़े खुले हैं और सबको इजतिमा में शिरकत के लिए आम दावत है मगर बात वहीं जाती है कि बदनाम करनेवालों के ख़यालात और जज़्बात शायद बग़ैर भड़के न रह सकें, और वे जितना हो सकेगा मौक़े का फ़ायदा उठाकर ढिंढोरा पीटने में कमी न करेंगे क्योंकि वे तो बिना किसी बात के भी इस तरह की हरकतें करने से बाज़ नहीं आते और जबकि जमाअते-इस्लामी के नाम पर इजतिमा हो तो फिर क्यों चूकेंगे ?

हो सकता है कि वे सरकार को भी मजबूर करें कि वह इस इजतिमा और रामपुर के रहनेवालों दोनों को शक की नज़र से देखकर एक ऐसी राय

क़ायम करें, जो रामपुर के मुसलमानों के लिए किसी भी तरह से फ़ायदेमन्द न हो, इस इजतिमा की तारीख़ों में काफ़ी दिन बाक़ी हैं। अच्छा हो जो जमाअत के ज़िम्मेदार अपने इस फ़ैसले पर दूरअंदेशी के साथ ग़ौर कर लें, और हो सके तो अपने फ़ैसले में फेर-बदल की कोई सूरत निकाल लें।"

(आग़ाज़ - 8 अप्रैल 1951 ई.)

और इसी प्रकार का नोट दैनिक "नाज़िम" में भी प्रकाशित हुआ। इन सम्पादकीय टिप्पणियों के प्रकाशित होने से पहले ही स्थानीय तौर पर एक वर्ग की ओर से इजतिमा का विरोध शुरू हो चुका था, इसलिए यह मुनासिब समझा गया कि इन सम्पादकीय टिप्पणियों के ज़रिए से जो आशंकाएँ उभर सकती हैं उसको फ़ौरन दूर कर दिया जाए, चुनांचे नीचे लिखा ख़त अमीरे-जमाअत ने अख़बारों को भेजा।

"आपने अपने अख़बार में 'जमाअते-इस्लामी का सालाना इजतिमा' के शीर्षक से जो सम्पादकीय टिप्पणी की है उस पर मुझे इस हद तक तो ख़ुशी हुई है कि इसमें आपने जमाअत की दावत को किसी हद तक उसकी अस्ली शक्ल में पैश करने की कोशिश की है, यानी यह कि जमाअत जो दावत देती है क़ुरआन व सुन्नत की रौशनी में देती है और उसकी दावते-फ़िक्र का दायरा किसी क़ौम या सम्प्रदाय व धर्म तक सीमित नहीं है, जिसका समर्थन भी आपने सही रूप में जमाअत के अब तक के तरीक़ेकार (कार्यप्रणाली) और इसके इजतिमाआत से "जिनके देखने का आपको समय-समय पर मौक़ा मिला है" सुबूत के तौर पर पेश किया है।

लेकिन इस के साथ मुझे यह देखकर हैरत हुई कि जमाअत की दावत की इन बुनियादी ख़ूबियों को मानने के बाद भी आपने सिर्फ़ इस आशंका के सबब रामपुर में उसके सालाना इजतिमा के आयोजित होने पर उनकी नापसंदीदगी ज़ाहिर की है कि इस से साम्प्रदायिक तत्वों को रामपुर के मुसलमानों को बदनाम करने का मौक़ा मिल जाएगा।

मैं यह समझने में असमर्थ हूँ कि जमाअत की दावत और इजतिमाआत की ऊपर बयान की गई सूरते-हाल के होते हुए भी कुछ लोग ऐसे हो सकते

हैं जो हमारी वजह से ख़ामख़ाह रामपुर के मुसलमानों को बदनाम करने की कोशिश करें, और अगर मान भी लिया जाए कि कुछ लोग ऐसे हों भी जो बेवजह यहाँ के मुसलमानों को बदनाम ही करना चाहें तो आपके कहने के अनुसार वे बिना किसी बात के भी इस प्रकार की हरकतों से नहीं रुकेंगे। फिर ऐसे लोगों का हम या आप क्या इलाज कर सकते हैं ? क्या आपके नज़दीक यह बात मुनासिब हो सकती है कि सिर्फ़ ऐसे लोगों की इस तरह की कोशिशों के पेशेनज़र हम अपने सारे काम बन्द कर दें और ख़ालिस दीनी काम के लिए भी कहीं इकट्ठे न हो सकें, जबकि नागरिक होने के नाते यह हमारा क़ानूनी हक़ भी है और दीन की ज़रूरतों का तक़ाज़ा भी यही है। इस पहलू को सामने रखकर अगर ग़ौर किया जाए तो ऊपर बयान किए गए अन्देशे की हैसियत अपने आप वाज़ेह हो जाती है, लेकिन इस सिलसिले में एक बात और कहना चाहता हूँ, और वह मेरे नज़दीक ज़्यादा अहम और क़ाबिले-ग़ौर है, और वह यह है कि हमारे नज़दीक ऊपर बताए गए लोगों को उनकी इस तरह की हरकतों से रोकने का अगर कोई इलाज हो सकता है तो वह सिर्फ़ हमारी दावत ही के ज़रिए से हो सकता है क्योंकि हम तमाम इनसानों को इस बात की दावत देते हैं कि वे अपने ख़ालिक़ (पैदा करनेवाले ख़ुदा) के सामने अपनी सारी ज़िम्मेदारियों को महसूस करें, और जब कि वह सारे इनसानों का ख़ालिक़ है और तमाम इनसान एक ही माँ-बाप की औलाद हैं, तो उनके लिए ज़िन्दगी बिताने का एक मात्र तरीक़ा यही हो सकता है कि वे सम्प्रदायिकता, जातिवाद और वतनपरस्ती के जज़्बात से ऊपर उठकर अपने पैदा करनेवाले के भेजे हुए आदेशों की पैरवी करें।

अगर हमारी यह दावत (पैग़ाम) पूरी तरह फैल सके तो यह अपने आप में फ़िरक़ापरस्ती (साम्प्रदायिकता) फैलानेवालों की विचारधारा को बदलने का ज़रिआ होगा और फिर धीरे-धीरे मुसलमानों के बारे में उनका यह ख़याल भी बदल सकता है कि मुसलमानों की हैसियत उनके किसी क़ौमी दुश्मन की है। वे इसके बजाए यह समझने पर मजबूर होंगे कि उनकी हैसियत एक ऐसी इस्लाह और सुधार करनेवाली जमाअत की है जिसकी सारी दौड़-धूप इस्लाही और अख़लाक़ बनाने के उद्देश्य से देश के लिए आम तौर

पर फ़ायदेमन्द हो सकती है, हम अपनी जगह यह उम्मीद रखते हैं कि सालाना इजतिमा के मौक़े पर हमारे जो साथी (रुफ़क़ा) हिन्दुस्तान के विभिन्न हिस्सों से आएँगे उनके काम करने का तरीक़ा, और हम अपने इज़तिमाआत में जो कार्रवाइयाँ करेंगे उनके आम अन्दाज़, इंशाअल्लाह (अल्लाह ने चाहा तो) ग़ैर-मुस्लिम लोगों की इस्लाम और मुसलमानों के बारे में इस तरह की बहुत-सी ग़लत-फ़हमियों को दूर करने का ज़रिआ साबित होगा, जैसा कि हमारा इससे पहले कई बार का तजरिबा है। ख़ुद रामपुर में हमारे जलसे और बड़े इजतिमाआत भी हो चुके हैं, जिनमें मुस्लिम और ग़ैर-मुस्लिम दोनों ही शरीक रहे हैं और आज तक हमें यह मालूम न हो सका कि किसी ने भी साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से इसको नुक़सानदेह और क़ाबिले-ऐतिराज़ समझा हो। मैं यहाँ एक बात और खोलकर कह देना चाहता हूँ कि जमाअते-इस्लामी की तहरीक (आन्दोलन) एक दीनी तहरीक की हैसियत से आम हिन्दुस्तान में जानी जाती है, इसलिए अगर कुछ लोग इसके सालाना इजतिमा के सिलसिले में किसी ग़लतफ़हमी या नासमझी की वजह से किसी तरह की रुकावट डालना चाहते हैं तो उन्हें इससे पहले यह अच्छी तरह सोच लेना चाहिए कि इसका असर आम लोगों और ख़ास तौर पर मुसलमानों के लिए बहुत ही बेचैनी व मायूसी की वजह बनेगा। यह बात शायद आपको मालूम नहीं कि हमारे इजतिमा में शरीक होनेवालों के बारे में जो ख़बरें मिल रही हैं उनमें एक अच्छी ख़ासी तादाद ग़ैर-मुस्लिमों की भी है।

ख़ुद रामपुर में न सिर्फ़ मुसलमानों का बल्कि ग़ैर-मुस्लिमों का भी संजीदा और सूझ-बूझ रखनेवाला वर्ग, जमाअत के बारे में अच्छी तरह जानकारी रखता है, और जहाँ तक हमने अन्दाज़ा किया है, वह रामपुर में इजतिमा आयोजित होने पर बहुत ख़ुश है और उसका इन्तिज़ार कर रहा है। इसलिए मुझे तो आपकी इस सम्पादकीय टिप्पणी पर बड़ी हैरत है कि आपने उनके जज़बात की परवाह किए बिना किस तरह यहाँ इजतिमा के आयोजित किए जाने पर अपनी नापसन्दीदगी का इज़्हार किया है। मेरा ख़याल है कि ऐसे तमाम लोगों के लिए आपकी टिप्पणी हैरत में डालनेवाली साबित हुई

होगी। मैं आख़िर में यह भी साफ़ बता देना चाहता हूँ कि हमने इजतिमा के लिए रामपुर को क्यों चुना है ?

रामपुर के बारे में हमारा यह ख़याल है, जिससे किसी व्यक्ति को इनकार नहीं हो सकता कि दूसरे मक़ामात के मुक़ाबले में यहाँ हिन्दु-मुस्लिम सम्बन्ध हमेशा से ख़ुशगवार और अच्छे रहे हैं और क़ुदरती तौर पर हमारी दावत के लिए ऐसा ही माहौल ज़्यादा साज़गार और अच्छा होता है।

इन दैनिक समाचार पत्रों ने जिन ख़यालात का इज़हार किया था;उनको ख़ुद शहर के शिक्षित और गंभीर विचारोंवाले लोगों ने भी अच्छा नहीं समझा इसलिए कुछ ही दिनों के बाद नीचे लिखा ख़त अख़बार के पाठकों की तरफ़ से प्रकाशित हुआ।

"कुछ समय हुआ स्थानीय अख़बारों ने मशवरा दिया था कि रामपुर में जमाअते-इस्लामी का सालाना इजतिमा नहीं होना चाहिए क्योंकि हर दो की राय में यह इजतिमा रामपुर के मुसलमानों के लिए नुक़सानदेह हो सकता है। मैंने ख़ुद इन मशवरों पर ग़ौर किया, और दूसरों से विचार विमर्श किया, अधिकतर संजीदा राय देनेवालों से ही मालूम किया मगर उनमें से कोई भी इन अख़बारों के विचारों से सहमत न हो सका।

इसके बाद हमने एक छोटी-सी जमाअत बनाकर आम लोगों के विचार जानने के लिए आम व ख़ास लोगों से मुलाक़ातें कीं। किसी एक व्यक्ति को भी इजतिमा के ख़िलाफ़ कुछ कहते नहीं पाया और लगभग हर एक व्यक्ति ने अख़बारों के मशवरे को हैरत की नज़र से देखा। ज़्यादातर लोगों ने इस बात पर ज़ोर दिया कि उनके ख़यालात को अख़बारात में प्रकाशित कर दिया जाए कि हम इजतिमा की ताईद (समर्थन) व हिमायत में हैं।"

(आग़ाज़ - 19 अप्रैल 1951 ई.)

इन बातों के सामने आ जाने के बाद एक अख़बार का रवैया तो बिलकुल बदल गया और उसने मुख़ालिफ़त बन्द कर दी लेकिन दूसरे अख़बार ने कुछ दिन की चुप्पी के बाद एक दूसरी सम्पादकीय टिप्पणी प्रकाशित की जिसमें कुछ मुहल्लों का नाम लेकर यह ख़बर दी गई कि इस

मुहल्ले के लोग इस इजतिमा की मुख़ालिफ़त पर उतारू हैं। मगर एक मुअज़्ज़ज़ शहरी (सम्मानित-शहरी) ने उपरोक्त पत्र के जवाब में दूसरे ही दिन पत्र प्रकाशित किया –

> "जो ख़बर हम तक पहुँचाई गई वह सख़्त गुमराह करनेवाली और आपस में फूट डालनेवाली है और जो ख़बरें दी गई हैं वे सिरे से बेबुनियाद हैं।" (आग़ाज़ - 21 अप्रैल 1951 ई.)

इन ख़बरों व पाठकों के पत्रों से यह तो मालूम हो गया कि स्थानीय तौर पर आम लोगों की राय इजतिमा के हक़ में है और जमाअत को जो ख़बरें मिली थीं वे बिलकुल सही थीं, लेकिन इसके बावजूद एक ख़ास गरोह जिसका ताल्लुक़ आम तौर पर असरदार हल्क़ों व लोगों से समझा जाता है, आख़री दिन तक मुख़ालिफ़त करता रहा और इस मुख़ालिफ़त ने कुछ ऐसा रूप ले लिया जिनसे हमारे मक़ामी साथियों को दिमाग़ी व माली हैसियतों से काफ़ी तकलीफ़ और नुक़सान उठाना पड़ा जिसका सिलसिला अब भी जारी है और इसी बीच में एक दूसरे तबक़े ने मज़हब की बुनियाद पर भी जमाअत के ख़िलाफ़ काफ़ी प्रोपैगन्डा किया और फ़तवे मँगवा-मँगवाकर प्रकाशित किए। कुछ बाहर के मज़हब के ठेकेदारों ने भी इस प्रोपैगन्डे को सहयोग दिया और उन सबका मक़सद यह था कि हमें इजतिमा स्थगित करने पर मजबूर कर दिया जाए या अगर इजतिमा हो तो नाकाम हो जाए। लेकिन अल्लाह का शुक्र है कि उन सब मुख़ालिफ़तों के बावजूद इजतिमा की तैयारियाँ आराम के साथ चलती रहीं, यहाँ तक कि इजतिमा का वक़्त आ गया और अल्लाह का शुक्र है कि तमाम रुकावटों और मुख़ालिफ़तों के बावजूद वह बहुत ही सुकून के माहौल में आयोजित हुआ और उम्मीद से कहीं ज़्यादा कामयाब रहा।

जमाअत के रुफ़क़ा (साथी) चूँकि एक लम्बे समय से कुल हिन्द इजतिमा की ज़रूरत को शिद्दत से महसूस कर रहे थे, इसलिए हालात के ठीक न होने और माली परेशानियों के बावजूद लोग बड़ी तादाद में इस इजतिमा में शरीक हुए। उनकी हलक़ावारी तादाद इस तरह है –

नाम हल्क़ा	तादाद	नाम हल्क़ा	तादाद	नाम हल्क़ा	तादाद
इलाहाबाद	46	कानपुर	70	बनारस	113
बाराबंकी	41	लखनऊ	64	दिल्ली	37
कलकत्ता (कोलकाता)	9	राजिस्थान	58	शाहजहाँपुर	70
कश्मीर	4	भोपाल	39	बम्बई (मुम्बई)	18
बिहार	83	हैदराबाद	21	रामपुर	319
दक्षिणी भारत	8				

19 अप्रैल 1951 ई. तक देश के विभिन्न हिस्सों से लगभग 900 अरकान (सदस्य), हमदर्दान (सहमत लोग), जमाअत की दावत से प्रभावित लोग तथा ग़ैर-मुस्लिम हज़रात रामपुर पहुँच चुके थे और 20 अप्रैल को 7:30 बजे जब पहली निशस्त (बैठक) की कार्रवाई शुरू हुई तो शरीक होनेवालों की तादाद 1300 तक पहुँच चुकी थी।

20 अप्रैल की सुबह को फ़ज्र की नमाज़ के बाद क़ुरआन का दर्स हुआ। सबसे पहले क़ारी अब्दुल-वाहिद साहब ने अपने ख़ास अंदाज़ में सूरा-2 अल-बक़रा की आयत "इन्नल-लज़ी-न यक्तुमू-न" से "हुमुल मुत्तक़ून" तक (क़ुरआन सूरा-2 आयत 174 से 177) की तिलावत की। मौलाना सद्रुद्दीन साहब इस्लाही ने इन आयतों की तफ़सील बयान की। जिसमें आपने फ़रमाया कि 'शहादते-हक़' एक अहम फ़र्ज़ है जिसके लिए पिछले नबियों की उम्मतें उठाई जाती रहीं। लेकिन जब उन्होंने इस फ़र्ज़ को पूरा करने में ज़बान से और अमल (व्यवहार) से लापरवाही दिखाई तो अल्लाह तआला ने अपने क़ानूने-अद्ल के तहत इस मंसब (पद) पर मुसलमानों को ला खड़ा किया, इसलिए इनकी ज़िन्दगी का सबसे बड़ा और अहम फ़र्ज़ शहादते-हक़ (सच्चाई की गवाही) है और शहादते-हक़ का असल मतलब यह है कि आदमी दुनिया में ख़ुदा के क़ानून को बरपा करने के लिए अपनी ज़बान और अमल से जिद्दोजुहद करे क्योंकि सारा तक़्वा

(परहेज़गारी), ख़ुदा का ख़ौफ़, इबादात और ज़िक्र और वज़ीफ़ों की हक़ीक़ी कसौटी यही है। तफ़सीर लगभग आधा घण्टा चली। इसके बाद नाश्ता वग़ैरा करने के बाद इजतिमा की पहली निशस्त (बैठक) 7:30 बजे सुबह शुरू हुई।

पहली निशस्त (जुमा) 20 अप्रैल 1951 ई.

कार्रवाई क़ारी अब्दुल-वाहिद साहब की क़िरअत से शुरू हुई, हाज़रीन सुकून के साथ क़ुरआन में डूबे हुए ख़ामोश सुन रहे थे। क़िरअत के बाद अमीर जमाअते-इस्लामी हिन्द ने इफ़्तिताही तक़रीर की जो नीचे लिखी जाती है –

ख़ुतबा-ए-मसनूना के बाद

मुहतरम हाज़रीन व रुफ़क़ा-ए-जमाअत!

मैं अल्लाह तआला का शुक्र अदा करता हूँ कि एक मुद्दत के बाद हमारी यह दिली तमन्ना पूरी हो रही है कि जो रुफ़क़ा मुल्क के मुख़्तलिफ़ हिस्सों में काम करते रहे हैं वे एक जगह जमा हो सकें। (मुल्क के) बँटवारे के बाद जब से अलग जमाअत का नज़्म क़ायम हुआ है उस वक़्त से रुफ़क़ा का इसरार था और ज़मायती ज़रूरतों के तहत इसकी ज़रूरत भी थी कि कुल हिन्द इजतिमा आयोजित किया जाए। पहली चीज़ तो यह एक फ़ितरी बात है कि जो लोग एक मक़सद के लिए काम कर रहे हैं वे एक-दूसरे से मिलने और विचारों के आदान-प्रदान करने के ख़ाहिशमन्द हों और दूसरी बात यह कि जमाअते-इस्लामी जो इजतिमाई काम करना चाहती है उसके लिए ज़रूरी है कि काम करनेवालों में आपसी मेल-मिलाप और एक-दूसरे की मदद करने का जज़्बा ज़्यादा-से-ज़्यादा पैदा हो क्योंकि जब तक आपस में पूरा तालमेल, एक राय और पूरी एकता न हो उस वक़्त तक किसी प्रोग्राम को अमल में नहीं लाया जा सकता और यह ज़ाहिर है कि उसके लिए यह इजतिमा कितना अहम और ज़रूरी है।

लेकिन बदक़िस्मती से बँटवारे के बाद मुल्क के हालात कुछ ऐसे रहे हैं

कि उनकी वजह से आज से पहले कुल हिन्द (अखिल भारतीय) इजतिमा का आयोजन मुमकिन नहीं हो सका। जैसा कि आपको मालूम है कि बँटवारे के साथ ही देश में दंगो का एक सिलसिला शुरू हो गया था जो लम्बे समय तक चलता रहा। वह ज़माना किसी ऐसे इजतिमा के लिए किसी तरह साज़गार (अनुकूल) नहीं था जिसमें सारे हिन्दुस्तान से जमाअत के रुफ़क़ा जमा होकर शरीक हो सकें, वह वक़्त अगर मुनासिब था तो सिर्फ़ इस बात के लिए कि जिनके दिल मुर्दा नहीं हो चुके हैं और अगर उनमें हिम्मत और हौसले की कमी है तो अपने घरों में बैठकर इनसानियत का मातम करें या अगर अपने अन्दर हिम्मत व हौसला पाते हैं तो घरों से बाहर निकलकर दंगों को दूर करने की कोशिश करें!

इसके बाद ख़ुदा-ख़ुदा करके यह दौर ख़त्म हुआ लेकिन इसके ख़त्म होने के बाद भी हालात इजतिमा के लिए मुनासिब नहीं रहे, क्योंकि दंगों के दौरान में जो इश्तिआल (उत्तेजना) और ग़ुस्सा ग़ैर-मुस्लिमों के दिलों में पैदा हो गया था वह अभी भी बाक़ी था और उसकी वजह से हर तरह के मुसलमान तरह-तरह के सन्देहों और बदगुमानी की निगाह से देखे जा रहे थे और उसके साथ इन दंगों ने मुसलमानों को भी एक ख़ास तरह के डर व ख़ौफ़ में मुब्तला कर दिया था। जिसकी वजह से वे ख़ुद भी मुसलमानों के किसी इजतिमा को ख़तरे की निगाह से देखते थे और उसको सख़्त नापसन्दीदा समझते थे .... जमाअते-इस्लामी जिस तरह के इजतिमाआत करती है और उनमें जो पैग़ाम या दावत पेश करती है उसके लिहाज़ से हमें ख़ुद न किसी तरह का ख़तरा महसूस हो रहा था और न किसी अन्देशे (आशंका) की हमारे दिल में जगह थी बल्कि हम इन हालात में इजतिमा की ज़्यादा-से-ज़्यादा ज़रूरत महसूस कर रहे थे क्योंकि हमारा ख़याल यह था कि हमारे इजतिमा और हमारी दावत इन हालात में ख़ुशगवार तब्दीलियों का सबब बनेगी लेकिन इस समय चारों तरफ़ से जो परेशानियाँ किसी कुल हिन्द इजतिमा के सिलसिले में पेश आ सकती थीं उन पर क़ाबू पाना हमारे लिए कोई आसान बात नहीं थी। इसलिए मजबूर होकर हमने यह फ़ैसला किया कि अगर फ़िलहाल कुल हिन्द इजतिमा मुमकिन नहीं है तो

इसका मक़सद हल्क़ावार इजतिमाआत के ज़रिए से हासिल किया जाए। इसलिए इसका एक लम्बा-चौड़ा प्रोग्राम बनाया गया और अल्लाह का शुक्र है कि तरह-तरह की रुकावटों के बावजूद जो ज़्यादातर मुसलमानों के डरे और सहमे होने और उनकी मायूसी भरी ज़हनियत का नतीजा थे, हम उनके आयोजन में सफ़ल रहे और उनसे उम्मीदों से कहीं ज़्यादा अच्छे नतीजे निकले और यह डर भी ग़लत साबित हुआ कि हमारे किसी इजतिमा से मुसलमानों के लिए कोई ख़तरा हो सकता है या सरकारी अफ़सरों के किसी तरह के शक व संदेहों में पड़ने की सम्भावना है।

लेकिन जो बड़े फ़ायदे कुल हिन्द इजतिमा से हासिल होते हैं ज़ाहिर है वे हल्क़ावार इजतिमाआत से हासिल नहीं हो सकते थे। इसलिए रुफ़क़ा के मुतालबों और जमाअत की ज़रूरतों को देखते हुए जैसे ही हमें लगा कि कुल हिन्द इजतिमा के लिए हालात कुछ बेहतर हो रहे हैं, हमने पिछले साल इस महीने में कुल हिन्द इजतिमा करने का फ़ैसला कर लिया जिसका एलान भी किया जा चुका था, लेकिन अभी हिन्दुस्तान की बदक़िस्मती ख़त्म नहीं हुई थी। ठीक उसी समय में उत्तर प्रदेश में दंगों का सिलसिला दोबारा शुरू हो गया जिसका सबसे ज़्यादा ज़ोर हमारे आस-पास के ज़िलों में था, और इन दंगाग्रस्त इलाक़ों के कुछ लोग पनाह लेने के लिए रामपुर में भी आ गए थे जिनकी तरफ़ जमाअत के मरकज़ को मुतवज्जोह होना पड़ा। इसलिए सारी तैयारियाँ पूरी होने के बावजूद भी इजतिमा को स्थगित करना पड़ा। लेकिन अल्लाह का शुक्र है कि इस बार दंगों का यह दौर ज़्यादा लम्बा न हो सका। हालात जल्द सामान्य हो गए इसलिए हमने इस साल अल्लाह का नाम लेकर दोबारा ज़्यादा मज़बूती के साथ यह फ़ैसला किया कि कुल हिन्द इजतिमा जो अब तक टलता चला आ रहा है इस साल ज़रूर किया जाए और इस समय मेरा दिल अल्लाह के फ़ज़्ल के एहसास से भरा हुआ है कि उसने इस इजतिमा के आयोजन के लिए हालात को हमारे लिए बेहतर बना दिया है लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि इस साल इस इजतिमा को करने में हमें किसी तरह की परेशानी या रुकावट का सामना नहीं करना पड़ा है। आपको यह सुनकर हैरत होगी और अफ़सोस भी कि इस साल भी जब

कुल हिन्द इजतिमा का एलान किया गया तो हमें स्थानीय तौर पर तरह-तरह की परेशानियों का सामना करना पड़ा। अफ़सरों को तरह-तरह की बदगुमानियाँ हुईं और रुकावटें डाली गईं और इसी तरह ख़ुद मुसलमानों के एक वर्ग को भी कुछ अन्देशों के तहत यहाँ रामपुर में इजतिमा आयोजित किए जाने पर एतिराज़ हुआ। लेकिन ख़ुदा का बड़ा फ़ज़्ल है कि ये बदगुमानियाँ और अन्देशे बड़ी हद तक दूर हो चुके हैं फिर भी कुछ लोग ऐसे मौजूद हैं जो दूसरी वजहों से हमारी मुख़ालिफ़त पर आमादा हैं। मुझे उम्मीद तो यही है कि अल्लाह तआला उन लोगों को ख़ुद समझ-बूझ देगा कि वे हमारी मुख़ालिफ़त में कोई नापसन्दीदा हरकत न करें। लेकिन यह नामुमकिन नहीं है कि वे इस इजतिमा में गड़बड़ी पैदा करने की कोशिश करें। अगर ऐसा हुआ तो बेशक हमें इस पर अफ़सोस होगा। लेकिन क्योंकि हमारा अक़ीदा यह है कि जो कुछ होता है अल्लाह ही की तरफ़ से होता है और इसमें कोई न कोई पहलू भलाई ही का होता है, इसलिए इस तरह के हालात के स्वागत के लिए भी आपको तैयार रहना चाहिए। हो सकता है अल्लाह तआला हमारी मुख़ालिफ़त करनेवालों के दिलों में इस तरह का ख़याल डालकर हमारी सीरत व किरदार (चरित्र व आचरण) की जाँच के लिए एक मौक़ा देना चाहता हो ताकि लोग देख सकें कि जब हमपर ज़ुल्म ढाया जा रहा हो तो उस वक़्त हम कैसा रवैया अपनाते हैं और इस तरह इस बुराई से भी भलाई का पहलू निकल आ सकता है। मैं इस सिलसिले में आपको ख़बरदार करना चाहता हूँ कि आपका रवैया ऐसे मौक़ों पर ग़ुस्से और झुंझलाहट का नहीं होना चाहिए बल्कि इसके बजाए आपको सब्र व ज़ब्त, माफ़ करने और नज़रअंदाज़ कर देने और बर्दाश्त से काम लेना चाहिए। मुख़ालिफ़ों की तरफ़ से जो कुछ भी पेश आए उसे ख़ुशदिली के साथ बर्दाश्त कीजिए और उनकी शिकायत करने के बजाए अल्लाह तआला से अपने लिए माफ़ी और मग़फ़िरत और मज़बूती और जमाव की दुआ कीजिए। आप का यह तरीक़ा ख़ुद मुख़ालिफ़ों के लिए एक सबक़ होगा। और हो सकता है इसके बाद उनपर राहेहक़ (सत्यमार्ग) खुल जाए और वे अपने-आप अपनी मुखालिफ़तों से रुक जाएँ। आप दीन का काम करने के लिए तैयार हुए हैं

और इस काम में इस तरह की मुख़ालिफ़तों का होना कोई हैरत की बात नहीं है। ज़रूरत इस बात की है कि इस काम के सिलसिले में दीन के सच्चे ख़ादिमों और अलमबरदारों (ध्वजावाहकों) के अच्छे तरीक़े को सामने रखा जाए। आपको मालूम है कि जब ख़ुदा के पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) दीन की तबलीग़ (प्रचार) के लिए ताइफ़ गए थे तो उस वक़्त मुख़ालिफ़त करनेवालों ने आप के साथ क्या कुछ नहीं किया था। आप (सल्ल०) की हँसी उड़ाई गई। आपके पाक जिस्म पर पत्थरों की बारिश की गई, यहाँ तक की आप (सल्ल०) का पूरा जिस्म ख़ून में नहा गया था और वह दिन आप (सल्ल०) के लिए इतना सख़्त साबित हुआ था कि इस वाक़िआ को लम्बा समय बीत जाने के बाद भी आप (सल्ल०) ने एक मौक़े पर इस दिन का ज़िक्र 'एक सख़्त दिन' के नाम से किया। लेकिन इसके बावजूद आप (सल्ल०) ने जो कुछ आपके साथ पेश आया, उसे ख़ुशदिली के साथ गवारा किया और इस ज़ुल्म और अत्याचार के मुक़ाबले में अगर आप (सल्ल०) की ज़बाने-मुबारक से उनके हक़ में कोई बात (कलिमा) निकली भी तो वह यह निकली –

> "ऐ अल्लाह! मेरी क़ौम को हिदायत दे क्योंकि वे इल्म (ज्ञान) नहीं रखते।"

इसी तरह क़ुरआन मजीद में एक मौक़े पर हज़रत आदम (अलैहि०) के दो बेटों की गुज़री हुई कहानी सुनाई गई है जिनमें से एक का हाल यह था कि जब उसकी क़ुरबानी उसके इरादे में खोट की वजह से क़बूल नहीं हुई और दूसरे भाई की क़बूल कर ली गई तो वह रश्क व हसद (ईर्ष्या) से जल उठा और उसने अपने भाई को क़त्ल कर देने का इरादा कर लिया। लेकिन इसके मुक़ाबले में दूसरे भाई का रवैया यह था कि इस हालत में भी उसके दिल में भाई के ख़िलाफ़ कोई ग़ुस्सा पैदा न हुआ। इस मौक़े पर भी उसने जो कुछ कहा, वह यह था –

> "अगर तू मुझपर मेरे क़त्ल करने के लिए हाथ उठाएगा तो मैं तुझे क़त्ल करने के लिए तुझपर हाथ उठानेवाला नहीं हूँ। मैं अल्लाह से डरता हूँ जो कायनात का रब है।"

हमारा रवैया भी अपने मुख़ालिफ़ों के मुक़ाबले में यही होना चाहिए। इससे आपके अख़लाक़ में बुलन्दी पैदा होगी और इस तरह ये मुख़ालिफ़तें और रुकावटें आपके अख़लाक़ को बनाने में बड़ी मददगार साबित होंगी!

बहरहाल यह एक बात बीच में आ गई है। हमें और आपको अल्लाह तआला का शुक्र अदा करना चाहिए कि तरह-तरह की मुख़ालिफ़तों और रुकावटों के बावजूद उसने आज हमें यहाँ इकट्ठा होने का मौक़ा दिया। क़ुदरती तौर पर इस मौक़े के हासिल होने पर आपको भी ख़ुशी महसूस होती होगी, क्योंकि देश के बँटवारे के बाद यह पहला मौक़ा है कि हिन्दुस्तान के लगभग सभी इलाक़ों के रुफ़क़ा इकट्ठा हुए हैं और मेरा दिल भी ख़ुशी से भरा हुआ है क्योंकि हक़ीक़त में मेरे लिए सबसे ज़्यादा ख़ुशी का पल वह होता है जब अपने साथियों से मुलाक़ात हो और जबकि इतने रुफ़क़ा से मुलाक़ात का मौक़ा मिल रहा है जिनसे एक साथ मुलाक़ात मालूम नहीं फिर कब हो सकेगी और इनमें से कितनों से बाद में भी कोई व्यक्तिगत मुलाक़ात का मौक़ा मिल सकेगा या नहीं, मेरी ख़ुशी का अन्दाज़ा ही नहीं किया जा सकता। लेकिन मैं ज़रूरत महसूस करता हूँ कि इस मौक़े पर आप को तवज्जोह दिलाऊँ कि बेशक हमख़याल और हममक़सद लोगों से मिलना एक ख़ुशी का मौक़ा होता है और इस मौक़े पर ख़ुशी का एहसास करना एक बिलकुल फ़ितरी बात है। लेकिन हर चीज़ की तरह इसकी भी एक हद है। अगर यह उस हद को पार कर जाए तो यही चीज़ बजाए तारीफ़ के क़ाबिल होने के नापसन्दीदा बन सकती है। लम्बे समय के बिछड़े हुए लोग आज मिल रहे हैं इसलिए दिल खोलकर मिलिए और मिलकर जितना भी ख़ुश हो सकते हों ख़ुश होइए। लेकिन इस ख़ुशी में इस बात को न भूल जाइए कि आपका लम्बा-चौड़ा सफ़र करके यहाँ जमा होना और मिलना-जुलना किसी ज़रूरत और मक़सद के लिए है। आपके यहाँ जमा होने का सबसे पहला मक़सद यह है कि रुफ़क़ा की एक-दूसरे से जान-पहचान हो ताकि उनमें मुहब्बत, एकता और आपसी मदद के जज़्बात पैदा हो सकें जो इस काम के लिए ज़रूरी हैं। इस मक़सद के लिए आपको एक-दूसरे से ज़रूर मुलाक़ातें करनी चाहिएं बल्कि इजतिमाआत के प्रोग्राम से जो फ़ारिग़ लमहे

आपको मिलें उनको इसी काम में लगाना चाहिए। लेकिन मक़सद सिर्फ़ यह होना चाहिए कि सिर्फ़ गप-शप और बे-मक़सद बातें जो न सिर्फ यह कि फ़ायदेमन्द नहीं हो सकतीं बल्कि उल्टी नुक़सान-देह और वक़्त को बर्बाद करने का सबब होंगी। दूसरा मक़सद इस इजतिमा का यह है कि आप इस बात का जाइज़ा ले सकें कि अलग-अलग मौक़ों पर आप के साथी क्या और किस तरह का काम कर रहे हैं और उनकी रुकावटें और परेशानियाँ क्या हैं, ताकि आप सारी सूरते-हाल को सामने रखकर यह फ़ैसला कर सकें कि आपको आगे क्या और किस तरह काम करने की ज़रूरत है।

इस मक़सद के लिए आपको दो बातों का ख़ास तौर से ध्यान रखना होगा। पहली बात यह कि आप वक़्त की पूरी-पूरी पाबंदी करें, खाने-पीने, उठने-बैठने, सोने-जागने और नमाज़ और इजतिमा के जो वक़्त तय किए गए हैं उनकी सख़्ती के साथ पाबंदी होनी चाहिए वरना ज़रूर ही इसका असर आपके आम प्रोग्राम पर पड़ेगा और जो बहुत से ज़रूरी काम इन चन्द दिनों में आपको पूरे करने हैं वे वक़्त पर पूरे नहीं हो सकेंगे।

दूसरी बात यह है कि आप हर कार्रवाई में पूरे ज़ौक़-शौक़ और ध्यान व लगन के साथ हिस्सा लें। ख़ास तौर पर दूसरे मक़सद के तहत जो प्रोग्राम होगा उसमें सिर्फ़ हमारे रुफ़क़ा-ए-कार (सदस्यों व कार्यकर्ताओं) को ही दिलचस्पी हो सकती है और दूसरे लोगों के लिए, जिनका जमाअत के कामों से कोई ख़ास लगाव नहीं है, उनको वह प्रोग्राम बड़ा ख़ुश्क (रूखा-फ़ीका) और बेमज़ा लगेगा। अगर ख़ुदा न करे आप लोगों की दिलचस्पी भी इसके साथ वैसी नहीं हुई जैसी होनी चाहिए तो इसका मतलब सिर्फ़ यही होगा कि अभी काम के साथ आपको पूरा-पूरा लगाव पैदा नहीं हुआ है।

तीसरा मक़सद इस इजतिमा का यह है कि आप अपनी दावत दूसरे लोगों तक पहुँचा सकें। इसी मक़सद के लिए ख़ुसूसी इजतिमाआत के साथ आम इजतिमा भी किया जाता है जिसमें मुस्लिम और ग़ैर-मुस्लिम हर तरह के लोगों को शरीक होने की दावत दी जाती है और इस साल इस मक़सद की अहमियत को ध्यान में रखते हुए दो दिन ख़िताबे-आम के लिए रखे गए हैं और हम उम्मीद रखते हैं कि इन दो दिनों के प्रोग्रामों के ज़रिए से हम

अपनी दावत बहुत कुछ नए लोगों तक पहुँचा सकेंगे लेकिन यह बात आपके पेशे-नज़र रहनी चाहिए कि इस मक़सद के लिए इजतिमा-ए-आम के प्रोग्राम हीं काफ़ी नहीं हैं। आप की दावत के अनगिनत और बेहद लम्बे-चौड़े पहलू हैं जिन की व्याख्या व तफ़सील के लिए दो दिन के इजतिमाआत काफ़ी नहीं हो सकते। जो बातें इनमें पेश होंगी उनके अलावा भी बहुत सी बातें ऐसी हो सकती हैं जिन के पेश करने की ज़रूरत हो और आपके इस इजतिमा में बहुत से लोग ऐसे हो सकते हैं जो ख़ास तरह की उलझनें या शक व शुबह रखते हों जिन पर बात करने का मौक़ा इजतिमाआत की तक़रीरों में न मिल सके। इसलिए आप लोग सिर्फ़ इजतिमा-ए-आम के प्रोग्राम पर भरोसा करके अपने दावती व तबलीग़ी काम में कोई कोताही न करें। आप लोग ऐसे लोगों की तलाश कर-करके उन के पास पहुँचने की कोशिश करें । और उनकी ओर पूरा ध्यान दें और नर्मी व हमदर्दी के साथ अपनी बातें समझाने की कोशिश करें हो सकता है कि इस कोशिश के दौरान में आप लोगों का वास्ता ऐसे लोगों से पेश आए जो उन में अनजान या किसी बदगुमानी की वजह से आपके साथ कोई ऐसा रवैया अपनाए जो आपका दिल दुखानेवाला हो । ऐसे लोगों के रवैये से आप लोगों को कोई असर नहीं लेना चाहिए बल्कि पूरे सुकून और इत्मीनान के साथ उनकी सारी बातें सुननी चाहिए और फिर पूरे ख़ुलूस और नर्मी के साथ उनके शक, शुबहों और एतिराज़ों को दूर करने की कोशिश करनी चाहिए। यह भी हो सकता है कि कुछ लोग सिर्फ़ आप को परेशान करने के लिए कुछ सवाल करें। ऐसे लोगों की इस नीयत का अंदाज़ा कर लेने के बाद उनको नज़रअंदाज़ कर दें और बे-मक़सद की बहस और तकरार में न उलझें।

बहरहाल यह मौक़ा अपनी दावत से लोगों को वाक़िफ़ कराने, जो पहले से कुछ जानते हैं उनकी जानकारी को और ज़्यादा बढ़ाने और जो शक व शुबहों में फंसे पड़े हैं उनके शक और शुबहों को दूर करने के लिए एक बहुत ही अच्छा मौक़ा है, इस से भरपूर फ़ायदा उठाने की कोशिश करनी चाहिए। लेकिन यहाँ मैं आपको तवज्जोह दिलाना चाहता हूँ कि बेशक दावत ज़बानी भी दी जा सकती है लेकिन हक़ीक़ी और असरदार दावत

अमल ही के ज़रिए से मुमकिन है। आज जो नए लोग यहाँ हक़ीक़त जानने के मक़सद से आए हैं, वे इसलिए नहीं आए हैं कि वे आपकी ज़बानी कुछ नई-नई बातें सुनेंगे। आप जो बातें पेश करते हैं वे नई बातें नहीं हैं और हो सकता है कि उनमें से कितने ऐसे हों जो इन बातों को आपसे ज़्यादा अच्छी तरह जानते हों या आप से अच्छे अंदाज़ में बयान करनेवालों की ज़बानी उन्होंने सुनी हों। उनके यहाँ आने का ज़्यादातर मक़सद यह है कि वे आप के इजतिमा में शरीक होकर यह देखें कि आप जो ऊँची-ऊँची बातें करते हैं आप अपने व्यक्तिगत या इजतिमाई अमल का क्या नमूना पेश करते हैं और वे कहाँ तक आप की बातों के मुताबिक़ हैं। अच्छी और ऊँची बातें करना इस ज़माने में कोई अनोखी चीज़ नहीं है। अलबत्ता अच्छा अमल और अच्छा रवैया ज़रूर कम पाई जाने वाली और नायाब चीज़ है। और दुनिया को हक़ीक़त में इसकी तलाश है। अगर आप ने सब कुछ कर लिया लेकिन अपने अमल का कोई अच्छा नमूना आप पेश न कर पाए तो सिर्फ़ यही नहीं कि आपकी दावत असरदार नहीं हो सकेगी बल्कि अन्देशा है कि आप लोगों के लिए दीन और दीनी काम से नफ़रत का सबब न बन जाएँ और यक़ीनन यह मामला बड़ा ही सख़्त और तवज्जोह के क़ाबिल है।

इस बारे में बुनियादी बात यह है और यही हक़ीक़त में आप के काम का अस्ल उसूल है कि आप में ख़ुदा का ख़ौफ और परहेज़गारी इस हद तक होनी चाहिए कि इसका असर आपकी हर बात और अमल से साफ़ तौर पर महसूस किया जा सके। इस मक़सद के लिए आपको हर-हर क़दम पर ख़ुद अपना जाइज़ा लेना चाहिए कि आप इस बुनियादी बात का कहाँ तक ध्यान रख रहे हैं और इस जाइज़े का सबसे बेहतर ज़रिआ नमाज़ है। मेरा ख़याल है कि अगर तक़वा व ख़ौफ़े-ख़ुदा की यह कैफ़ियत हासिल करने और उसको बाक़ी रखने की कोशिश की जाए तो इसके कम-से-कम नतीजे ये होंगे -

(1) आप अपना वक़्त बेकार या बेमक़सद बातचीत में लगाने से बचेंगे। क्योंकि वक़्त भी अल्लाह तआला की एक नेमत है जिस के बारे में हर इनसान को जवाब देना होगा कि उसे उसने किस काम में लगाया।

(2) आप अपनी ज़बान को ग़ीबत (पीठ पीछे बुराई करने) और बुरे अलफ़ाज़ बोलने से महफ़ूज़ रखेंगे क्योंकि ज़बान जो कुछ बोलती है उसका भी हमें हर हाल में हिसाब देना है।

(3) आप कोशिश करेंगे कि आपका कोई अमल बिलावजह किसी की तकलीफ़ का सबब न बने, बल्कि आप दूसरों की ख़िदमत व मदद करना अपना फ़र्ज़ समझेंगे। क्योंकि यह चीज़ ख़ुदा की नाराज़गी से बचने और उसकी खुशनूदी हासिल करने का बड़ा ज़रिआ है।

(4) आप दूसरों की इस्लाह और सुधार करने में शौक़ व दिलचस्पी से हिस्सा लेंगे क्योंकि यह चीज़ आख़िरत की ज़िन्दगी में आप के लिए फ़ायदेमन्द हो सकती है।

(5) आप ख़ुद अपनी इस्लाह के लिए आमादा होंगे और इस बारे में दूसरों की नसीहत को बिना कोई नागवारी महसूस किए हुए दिल से क़बूल करेंगे और उसके शुक्र गुज़ार होंगे। बहरहाल तक़्वा (परहेज़गारी) दीन की जान है। अगर हम और आप इसको अपनाने में कामयाब होंगे तो यक़ीनन हमारे इस इजतिमा से ख़ैर और बरकत पैदा होगी और हम अपने मक़सद में कामयाब होंगे लेकिन अगर ख़ुदा न करे कि सब कुछ हुआ लेकिन तक़्वा की असल रूह का हम उसके तक़ाज़ों के मुताबिक़ ध्यान नहीं रख सके तो आपकी यह जिद्दोजुहद और तकलीफ़ें उठाकर आना और आपका यह सारा इन्तिज़ाम बिलकुल बेकार साबित होगा और इस से कुछ हासिल नहीं होगा।

दूसरी बात जिसकी तरफ़ मुझे इस सिलसिले में आपको तवज्जोह दिलानी है वह यह है कि आपकी एक ख़ास ख़ूबी जो आपको आम मुसलमानों से अलग करती है वह यह है कि आपने अपने को एक इजतिमाइयत (संगठन) से जोड़ा है। आप ज़ाती तौर पर अपनी इस्लाह करने और अपने आमाल (कर्मों) को अल्लाह के क़ानून के मुताबिक़ ढालने की जिद्दोजुहद के साथ यह भी चाहते हैं कि आपकी ज़िन्दगी एक नज़्मे जमाअत (संगढन-व्यवस्था) के तहत गुज़रे। यह चीज़ ज़रूरी होने के साथ कुछ नई

भी नहीं है। क़िन्तु बदक़िस्मती से मुसलमानों का इस तरफ़ कोई ध्यान नहीं है, इसलिए मैं चाहता हूँ कि इस मौक़े पर आपकी जमाअती ज़िन्दगी की ख़ूबियाँ साफ़ तौर से सामने आ सकें। आपने जब हुक्म की इताअत और जमाअत के नज़्म (अनुशासन) की पाबंदी का ख़ुद अपनी मरज़ी से वादा किया है तो आपको अपनी हर चीज़ में इसकी पूरी-पूरी पाबन्दी करनी चाहिए। वैसे हुक्म सुनने और इताअत करने के बारे में मैं आम तौर से अपने रुफ़क़ा (साथियों) के बारे में अच्छी उम्मीद रखता हूँ लेकिन हक़ीक़त यह है कि आम हालात में इसका अंदाज़ा लगाना बहुत मुश्किल है, न सिर्फ़ मेरे लिए बल्कि ख़ुद आपके लिए भी। उसकी सही हैसियत उस वक़्त ज़हिर हो सकती है जब इनसान को कोई मुश्किल पेश आए या अपनी मरज़ा और पसन्द के ख़िलाफ़ कुछ बातें करनी पड़ें और यह इजतिमा का मौक़ा भी इसी तरह का एक मौक़ा है। इजतिमा के सिलसिले के ये सारे इन्तिज़ामात जो आपके सामने हैं आप ही लोगों के भरोसे पर शुरू किए गए हैं। उनको क़ायम करना और बाक़ी रखना यह आप लोगों की ज़िम्मेदारी है। हो सकता है कि इसके लिए आप लोगों को अपनी हर तरह की राहत व आराम को क़ुरबान करना पड़े और रात-दिन के वक़्तों में आप लोगों को थोड़ी देर के लिए सोने का मौक़ा भी न मिल सके। मैं उम्मीद करता हूँ कि आप लोग इस तरह की तकलीफ़ें ख़ुशी के साथ गवारा करेंगे और जो काम जिस व्यक्ति को सौंपा जाए उसे वह पूरी लगन और चुस्ती से करेगा। यह भी हो सकता है कि आप लोगों को इन्तिज़ामात के बारे में कुछ ऐसे भी काम करने पड़ें जिन को आम तौर से नीचा और क़ाबिले-नफ़रत समझा जाता है। लेकिन इज़्ज़त व ज़िल्लत का आम पैमाना आपके सामने नहीं होना चाहिए। आप हर उस काम को इज़्ज़त का काम समझें जो दीन का बोलबाला करने और ख़ुदा की रज़ामंदी को हासिल करने के लिए किया जाए, चाहे वह आम आदमी की निगाहों में कितना ही नीचा काम क्यों न हो। बन्दे की इज़्ज़त इससे बढ़कर और कुछ नहीं हो सकती कि वह नीचे-से-नीचा काम करके भी ख़ुदा की ख़ुशनूदी हासिल कर सके।

इसके बाद इस सिलसिले की आख़िरी बात मैं यह कहना चाहता हूँ कि यह समय देश के लिए, मुसलमानों के लिए और आपकी जमाअत के लिए बहुत नाज़ुक समय है। इनमें से हर एक के सामने तरह-तरह की परेशानियाँ और कठिनाइयाँ हैं और उनमें से हर एक के बारे में आप पर भारी ज़िम्मेदारी डाली गई है जिसको पूरा करना हर हाल में ज़रूरी है लेकिन यह ज़ाहिर बात है कि इन ज़िम्मेदारियों को पूरी तरह अंजाम देने के लिए आप के पास दिखाई देने वाला कोई सहारा नहीं है। आपको पूरे तौर पर ख़ुदा पर भरोसा करना होगा। इसलिए ज़रूरी है कि आप हर मौक़े पर और ख़ास तौर से इजतिमा के इस मौक़े पर ज़्यादा-से-ज़्यादा अपना लगाव अल्लाह से क़ायम करें और उस से इस बारे में हिदायत और तौफ़ीक़ के लिए बराबर दुआ करते रहें।

यह तीन बातें जो मैंने कही हैं यूँ तो ये ख़ास तौर से जमाअत के रुफ़क़ा के लिए हैं लेकिन ये बातें हमारी जमाअत से हमदर्दी रखनेवालों के लिए भी हैं। उन्होंने अपने ख़याल के मुताबिक़ अपने को हमदर्दों के ख़ाने में रखकर जमाअत की ज़िम्मेदारियों से बचने का कैसा ही आसान रास्ता क्यों न निकाल लिया हो लेकिन वे आम लोगों की नज़र में उन ज़िम्मेदारियों से अलग नहीं हैं। हर व्यक्ति के पास रजिस्टर नहीं होता है कि वह देखकर यह फ़ैसला कर ले कि कौन जमाअत का रुक्न (सदस्य) है और कौन जमाअत का हमदर्द (सहमत सदस्य)। और न इस जाँच-पड़ताल के लिए किसी के पास वक़्त और फ़ुर्सत ही है, इसलिए हर वह व्यक्ति जमाअत का रुक्न समझ लिया जाता है जो जमाअत का नाम लेता हो या उसकी कोई न कोई ख़िदमत कर रहा हो, इसलिए अगर उनसे किसी भी मामले में कोई भूल-चूक और कोताही होती है तो वह पूरी जमाअत से जोड़ दी जाती है। अतः बहुत सी जगहों पर सिर्फ़ हमदर्दों की कोताहियों की वजह से जमाअत और उसके काम को बड़ा नुक़सान पहुँचा है। इसलिए मैं हमदर्दों से गुज़ारिश करता हूँ कि उन्हें भी इन हिदायतों पर पूरा-पूरा अमल करना चाहिए जो बातें जमाअत के अरकान (सदस्यों) के बारे में कही गई हैं। मुझे मालूम है कि हमदर्दों में बहुत से ऐसे लोग हैं जो बहुत से अरकान से भी ज़्यादा जमाअत का काम कर रहे हैं। ऐसे लोगों की जमाअत के साथ हमदर्दी एक खुली हुई बात है। हर तरह के शक व शुब्हे (संदेह व शंकाओं) से ऊपर है लेकिन मैं

कमतर दर्जे के किसी हमदर्द के बारे में भी यह नहीं सोच सकता कि वह जान बूझ कर जमाअत को कोई नुक़सान पहुँचाना चाहेगा। इसलिए मुझे यही उम्मीद है कि इस मौक़े पर ख़ास तौर से वे लोग इस का ध्यान रखेंगे कि उनकी कोई बात और अमल जाने-अनजाने में जमाअत की बदनामी का कारण न बने, आख़िर में कुछ बातें उन लोगों से कहना चाहता हूँ जो सिर्फ़ इसलिए तकलीफ़ें उठाकर यहाँ तक पहुँचे हैं कि वे हमारी बातें सुनें और हमें क़रीब से समझने की कोशिश करें। अगर मैं रस्मी (औपचारिक) बातों को पसन्द करता होता तो मैं ऐसे लोगों का शुक्रिया अदा करना ज़रूरी समझता। लेकिन एक तरफ़ तो मैं रस्मी चीज़ से बचना भी चाहता हूँ और दूसरी तरफ़ मुझे यह भी एहसास है कि जो लोग इस मक़सद के लिए यहाँ आए हैं और अपना फ़र्ज़ समझकर आए हैं इसलिए यक़ीनन उन्हें रस्मी शुक्रिये की परवाह न होगी। इन वजहों से मैं ऐसे लोगों का कोई रस्मी शुक्रिया तो अदा नहीं करना चाहता लेकिन इस बात पर मैं अपनी ख़ुशी ज़ाहिर किए बिना नहीं रह सकता कि सिर्फ़ जानकारी की ख़ातिर उन्होंने यहाँ आने की तकलीफ़ बर्दाश्त की है। इस ज़माने में आम तौर पर लोगों का रुझान बहुत बदला हुआ है। ऊँचे मक़ासिद (उद्देश्यों) से वे बहुत क़म लगाव रखते हैं। इस लिए यक़ीनन ऐसे लोग बहुत ज़्यादा क़द्र के लायक़ हैं जो सिर्फ़ यह मालूम करने के लिए यहाँ हाज़िर हुए हैं कि इस वक़्त आम तौर पर पूरी इनसानियत के लिए और इसके बाद ख़ास तौर से इस देश के लिए जिसमें हम रहते हैं और इस क़ौम के लिए जिसके हम एक फ़र्द (अंग) हैं क्या ज़रूरतें और समस्याएँ हैं और जमाअते-इस्लामी उनके बारे में क्या हल पेश करती है। ख़ास तौर से ग़ैर-मुस्लिम भाइयों के यहाँ आने पर मुझे ख़ास तौर से ख़ुशी हो रही है, हालाँकि इस इजतिमा में उनके चेहरे कम नज़र आते हैं जो मेरे लिए कोई हैरत की बात नहीं है क्योंकि मैं समझता हूँ कि पिछले कुछ दिनों में हिन्दुस्तान के जो आम हालात रहे हैं उनका यह क़ुदरती नतीजा है लेकिन जितनी तादाद भी है वह हमारे लिए बहुत है। मैं ऐसे तमाम लोगों को ख़ुशआमदीद (स्वागतम) कहता हूँ। अलबत्ता अपने संसाधनों (वसाइल) और मजबूरियों का अन्दाज़ा करते हुए मैं माफ़ी चाहते हुए यह अर्ज़ कर देना मुनासिब समझता हूँ कि हो सकता है कि हम उनका उस तरह की ख़ातिरदारी न कर सकें जिस प्रकार हमें करनी चाहिए। लेकिन वे इसे हमारे एहसास की क़मी या कोताही न समझें बल्कि इसको हमारे वसाइल (ससांधनों)

की कमी या इजतिमा की ग़ैर-मामूली मसरूफ़ियतों का नतीजा समझें।

जहाँ तक हक़ की तलाश और जानकारी हासिल करने के उनके जज़्बे का ताल्लुक़ है उस के बारे में मुझे दो बातों का इज़हार कर देना ज़रूरी मालूम होता है।

पहली बात यह है कि जमाअते-इस्लामी किसी जुज़्वी काम या जुज़्वी इस्लाह (मामूली सुधार) के लिए नहीं बनाई गई है बल्कि यह एक आम सुधार की दावत है और इस दावत का मैदान बहुत फैला हुआ है। इस लिए हमारी बातों को पूरे सब्र व ध्यान और लगन के साथ सुनने की ज़रूरत है। इसके बिना अस्ल बात को जानने का मक़सद पूरा नहीं हो सकेगा और दूसरी बात यह है कि हमारे इजतिमा की कार्रवाइयाँ एक ख़ास नज़्म व तरतीब के साथ होंगी जिनके बीच में आपसी तालमेल व ताल्लुक़ होगा। इसलिए अगर किसी शुरू के मरहले में आपको कोई ख़ास शक या एतिराज़ हो तो उसे उसी वक़्त हल करने की कोशिश न करें बल्कि सब्र के साथ हमारी आगे की सारी कार्रवाइयों के ख़त्म होने का इन्तिज़ार करें। मुझे उम्मीद है कि बाद के मरहलों में वे शक (संदेह-आपत्तियाँ) आप-से-आप दूर हो जाएँगी। लेकिन अगर वे इसके बाद भी बाक़ी रह जाएँ तो उन को दूर करने के लिए इनशाअल्लाह आप हमें ख़िदमत के लिए मौजूद पाएँगे।

अब मैं आप का और वक़्त नहीं लेना चाहता। इसके बाद जनाब मुहम्मद युसुफ़ साहब क़य्यिमे-जमाअत आपके सामने जमाअते-इस्लामी हिन्द की कुल हिन्द रिपोर्ट पेश करेंगे। उसे आप हज़रात ध्यान से सुनें। इससे आपको अंदाज़ा करने का मौक़ा मिलेगा कि जमाअत ने अब तक क्या-क्या काम किए हैं और क्या-क्या काम बाक़ी रह गए हैं।

व आख़िरू दअवाना अनिल-हम्दु लिल्लाहि रब्बिल-आलमीन

(और हमारी आख़िरी दुआ और पुकार यही है कि शुक्र और तारीफ़ सारे जहानों के रब अल्लाह के लिए है।)

रिपोर्ट

अल्लाह के नाम से जो बड़ा मेहरबान और रहम करनेवाला है।

मुहतरम अमीरे-जमाअत, साथियो क़ाबिले-एहतिराम भाइयों और बहनों। दुनिया आज जिस मुश्किल दौर से गुज़र रही है उसमें अपनी इस्लाह की कोशिश करना और दूसरों को सुधार की तरफ़ मोड़ना कोई आसान बात नहीं है। अगर ज़िन्दगी के किसी एक विभाग की इस्लाह करना मक़सद हो तो काम करनेवालों की राह में अधिक रुकावटें खड़ी नहीं होतीं। लेकिन जब इनसानी ज़िन्दगी की कोई कल भी सीधी न हो और पूरी-की-पूरी ज़िन्दगी को ठीक (OVERHAUL) करने की ज़रूरत हो और पूरे-के-पूरे समाज को नए ढंग से बनाने की ज़रूरत हो, जहाँ रहने-सहने के तौर तरीक़े व सामाजिक ढर्रे को एकदम बदलना हो, जब कारोबार, तिजारत, खेती, उधोग-धंधे और अर्थव्यवस्था के तमाम मैदानों में इंक़िलाबी सुधार लाना मक़सद हो, जहाँ हुकूमत व सियासत और अन्तर्राष्ट्रीय मामलों को सही बुनियादों पर क़ायम करने की ज़रूरत हो, क़ानून बनाने के नज़रियों को पूरे तौर पर बदल देना मक़सद हो, जब तालीम व तरबियत के निज़ाम में बुनियादी फेर-बदल करना पेशे-नज़र हो, जहाँ अख़लाक़ (नैतिकता) व रूहानियत की मौजूदा क़द्रों के बजाए नई क़द्रें तैयार करनी हों, मतलब यह है कि जब ज़िन्दगी के हर और हर विभाग में चाहे वह इनसान की निजी ज़िन्दगी से ताल्लुक़ रखता हो या इजतिमाई ज़िन्दगी से, एक व्यापक क्रान्ति लाना मक़सद हो और फिर इस इंक़िलाब का नक़्शा भी मौजूदा दौर ख़ूनी इंक़िलाबों से अलग बल्कि उसके बिलकुल उलट हो, जिस के द्वारा बुराई को पूरे तौर पर मिटाना और भलाई को क़ायम करना मक़सद हो और इसके अलावा यह कि इस बड़े इंक़िलाब को लाने के लिए जिद्दोजुहद वे लोग कर रहे हों जिनका ताल्लुक़ उसी गरोह से हो जिसके ग़ैर-इस्लामी रवैये ने अपनों को पतन व जड़ता में और ग़ैरों को शक व सन्देहों में ग्रस्त कर दिया हो तो आप समझ सकते हैं कि ऐसे शान्तिपूर्ण (Blood Less) और इतने शानदार इंक़िलाब (Glorious

Revolution) का हमारे अपने सीमित संसाधनों के साथ क़ायम हो जाना सिर्फ़ अल्लाह तआला की तौफ़ीक़ ही पर निर्भर है। अलबत्ता अपनी जैसी कोशिश करना हमारा अपना काम है।

जमाअते-इस्लामी हिन्द की तशकील (गठन) किस तरह हुई

हम जानते हैं कि यह इंक़िलाब और ज़िन्दगी के हर क्षेत्र में बदलाव लाना जो हमारे पेशे-नज़र है इसकी ओर दावत देनेवाले लोग अपने-अपने ज़माने और अपने-अपने देश में नबियों और उनके बाद उन लोगों के ख़ास पैरवी करनेवाले रहे हैं। आज से लगभग चौदह सौ साल पहले इस दीनी और अख़लाक़ी इंक़िलाब की दावत अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ने अरब में दी थी और पैग़म्बरे-इस्लाम हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की दावत ने जो इंक़िलाब अपने माननेवालों की ज़हनियत और उनकी पूरी ज़िन्दगी में भर दिया था वह दुनिया के इतिहास में अपनी कोई दूसरी मिसाल नहीं रखता। इसी दावत को हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) के बाद ख़ुलफ़ाए-राशिदीन (रज़ि०) ने और उन हज़रात के बाद मुस्लिम उम्मत के कुछ दूसरे हज़रात ने अपानाया। ख़ुद हिन्दुस्तान में कुछ बुज़ुर्गाने-दीन की पूरी-की-पूरी ज़िन्दगियों का मक़सद यही इंक़िलाब लाना रहा है। लेकिन हिन्दुस्तान पर चूँकि एक लम्बे वक़्त तक मुस्लिम बादशाहों का क़ब्ज़ा रहा जिन्होंने, कुछ को छोड़कर, इस्लाम का नमूना पेश करने के बजाए बादशाहत को ही अपना मक़सद बना रखा था इसलिए यहाँ सही इस्लामी माहौल पैदा न हो सका और अल्लाह के नबियों के ज़रिए लाए हुए दीन की वह व्यापकता और फैलाव जो उन हज़रात के पेशे-नज़र था यहाँ आम तौर से लोगों के ज़हनों में जगह न पा सका। फिर यहाँ अंग्रेज़ों के डेढ़ सौ साल के क़ब्ज़े की वजह से मुसलमानों की ज़ेहनियतों पर ग़ैर-इस्लामी विचारों का ऐसा रौब छा गया कि यहाँ जिन लोगों को एक निहायत शानदार अख़लाकी इंक़िलाब की दावत देनी चाहिए थी वे ख़ुद औद्योगिक क्रान्ति (INDUSTRIAL REVOLUTION) फ़्रांसीसी क्रान्ति (FRENCH REVOLUTION) और रूस के ख़ूनी इंक़िलाब जैसी चीज़ों से न सिर्फ़ मुतास्सिर हुए बल्कि उसका रौब उनके दिलों में बैठ

गया। ग़रीब जनता की तो बात ही अलग है वे हज़रात जिनके इल्म और फ़ज़्ल का सिक्का अवाम पर बैठा हुआ था वे भी ऐसी तहरीकों के रसिया बन गए जो यूरोप के इंक़िलाब के नतीजे में नस्ली, वतनी, तबक़ाती और आर्थिक बुनियादों पर अंग्रेज़ी हुकूमत के ख़त्म होने से कुछ साल पहले हिन्दुस्तान में वुजूद में ओईं। इन हालात का फ़ितरी और स्वाभाविक तक़ाज़ा यह था कि देश में कोई ऐसी तहरीक उठे जिसका मक़सद, नस्बुल ऐन दावत और उसके काम का तरीक़ा नबियों के तरीक़े के मुताबिक़ हो। इसलिए उस दौर (समय) में दीन को ज़िन्दा और क़ायम करने के काम को सभाँलने के लिए कुछ बे सरो-सामान इनसानों ने क़दम आगे बढ़ाए और क्योंकि उस समय कोई भी ऐसी जमाअत मौजूद न थी जो इस फ़र्ज़ को पूरा कर रही हो इसलिए अगस्त 1941 ई. में जमाअते-इस्लामी की स्थापना अविभाजित हिन्दुस्तान में हुई, जिसके अमीर मौलाना सय्यद अबुल-आला मौदूदी साहब चुने गए। यह जमाअत हिन्दुस्तान के बँटवारे से पहले तक अविभाजित हिन्दुस्तान में रहनेवालों को एक मानसिक, वैचारिक और सुधारवादी इंक़िलाब की दावत देती रही और धर्म निरपेक्षता (Secularism), क़ौम-परस्ती (Nationalism) और लोकतन्त्र (Democracy) की बुनियादों पर, जो जीवन-प्रणालियाँ दुनिया में चल रही थीं उन की ख़राबियों को खोल-खोल कर बयान करने के बाद ख़ास तौर से मुसलमानों को और आम तौर पर ग़ैर-मुस्लिम भाइयों को ऐसी जीवन प्रणालियों के क़ायम करने की दावत देती रही है जिसकी बुनियाद ख़ुदा की बंदगी व फ़रमाँबरदारी, मानव एकता, अल्लाह की हाकिमियत और ख़िलाफ़ते-जमहूर (अवामी नुमाइदंगी) पर क़ायम हो, लेकिन सिवाए गिनती के कुछ लोगों के इसकी आवाज़ को आम तौर से लोगों ने सुना अन-सुना कर दिया।

आख़िरकार अगस्त 1947 ई. को देश का बँटवारा हो गया और यह बँटवारा अपने साथ बदतमीज़ी का वह तूफ़ान लाया जिसका ख़मियाज़ा हममें से हर एक को भुगतना पड़ा। उस समय जमाअते-इस्लामी के उन साथियों ने जो वाघा के इस पार रह गए थे यह महसूस किया कि अब हमारा ताल्लुक़ इस वक़्त के अमीरे-जमाअत मौलाना मौदूदी साहब से अमली तौर

से नामुमकिन है क्योंकि वे देश के उस हिस्से में रह रहे थे जो पाकिस्तान कहलाता है। वे अपने तौर पर बिखरे हुए तरीक़े से और बिना किसी केन्द्रीय व्यवस्था के जिद्दोजुहद करते रहे और जहाँ तक हालात ने इजाज़त दी देश में दंगे और बदअमनी को रोकने और लोगों में भलाई व सुधार के जज़्बे को उभारने की कोशिश में लगे रहे। लेकिन जब तक कोई बाक़ायदा व्यवस्था न बनी हो तो मुनज़्ज़म तौर पर काम करना मुश्किल हुआ करता है। इसलिए भारत के 'रुफ़क़ा' ने आपस में सलाह मशवरों के बाद यह तय किया कि हमारा जमाअती नज़्म अलग क़ायम होना चाहिए जिसका कोई मुशावरती, माली, इन्तिज़ामी, दस्तूरी या और किसी प्रकार का ताल्लुक़ किसी बाहरी शख़्सियत या जमाअत से न हो। लेकिन उस समय क्योंकि मौलाना मौदूदी साहब हमारे भी दस्तूरी तौर पर अमीर थे इसलिए उन से इजाज़त लेना शरई ज़रूरी था। लिहाज़ा मौलाना ने इस अहम ज़रूरत को महसूस किया और हमें इजाज़त दे दी और मध्य अप्रैल 1948 ई. में भारत के 'रुफ़क़ा' ने एक राय होकर मौलाना अबुल-लैस साहब नदवी इस्लाही को अपना अमीर चुन लिया। इस प्रकार जमाअते-इस्लामी हिन्द की स्थापना मध्य अप्रैल 1948 ई. में हुई।

उस समय से भारत और पाकिस्तान की जमाअतें अपनी-अपनी जगह बिलकुल अलग हैं और अपने आज़ाद और स्थाई रूप में काम कर रही हैं। वहाँ पर जमाअत की व्यवस्था अलग और यहाँ की व्यवस्था अलग है। हम अपनी समझ के मुताबिक़ यहाँ के मामलों को किताब (क़ुरआन) व सुन्नत की रौशनी में हल करना चाहते हैं और वे हज़रात अपनी समझ के मुताबिक़ वहाँ के हालात को किताब (क़ुरआन) व सुन्नत की रौशनी में सँवारने की फ़िक्र में लगे हुए हैं और चूँकि इन दोनों मुल्कों की समस्याएँ अलग-अलग हैं इसलिए हमारे और जमाअते-इस्लामी पाकिस्तान के काम के तरीक़े में भी फ़र्क़ होना ज़रूरी है। हालाँकि बुनियादी तौर से दीन को क़ायम करना और हक़ के कलिमे को बुलन्द करना उनका भी मक़सद है और हमारा भी। बस इसी उसूल (Ideology) की समानता हमारे और उनके बीच एक ऐसी समानता है जो तौहीद और इनसानी एकता की बुनियाद पर क़ायम होनेवाली

किसी देश की जमाअत से अपने आप और फ़ितरीतौर पर पैदा हो जाती है। इस नज़री और उसूली (Ideological) समानता की बुनियाद पर या हिन्दुस्तान के बँटवारे से पहले के हालात के पेशे-नज़र जबकि यह अकेली तन्ज़ीम थी, कुछ लोग ग़लती से और कुछ सिर्फ़ प्रोपैगण्डे की ख़ातिर मशहूर करते हैं कि जमाअते-इस्लामी हिन्द और जमाअते-इस्लामी पाकिस्तान दोनों एक हैं या यह कि जमाअते-इस्लामी का ताल्लुक़ मौलाना मौदूदी से है। लेकिन हक़ीक़त वह है जो ऊपर बयान की गई। बहरहाल जिस वक़्त जमाअते-इस्लामी हिन्द का गठन हुआ वह हमारे लिए एक नाज़ुक वक़्त था। एक तरफ़ तो ग़ैर-मुस्लिमों में ग़ुस्सा, इन्तिक़ाम, पक्षपात और तास्सुब के जज़्बात भड़क रहे थे और दूसरी तरफ़ मुसलमानों पर ख़ौफ़ और आतंक और बिखराव की हालत तारी थी। मुसलमान एक तरफ़ बहुसख्यकों से और दूसरी तरफ़ नई शासन-व्यवस्था से डरे और सहमे थे। साथ ही उनके ऊपर रौब तारी था । दिन-रात सांप्रदायिकता से बेज़ारी, खुद राजनीती से बेज़ारी और कहीं-कहीं तो अल्लाह माफ़ करे इस्लाम से बेज़ारी, मुसलमानों का और उनकी संस्थाओं का आम दस्तूर बना हुआ था। ऐसे हालात में मुस्लिम क़ौम के कुछ लोगों का मिलकर देश और क़ौम की समस्याओं पर ग़ौर व फ़िक्र करना और हालात की इस्लाह व सुधार का कोई काम करना एक बड़ा मुश्किल और सब्र-आज़मा मामला था। हालाँकि ये हालात ऐसे न थे जिनको दूरन्देश निगाहों ने इन घटनाओं के होने से पहले भाँप न लिया हो। यहाँ तक कि इस नाज़ुक दौर में जो कुछ पेश आने वाला था उसके सियाह पहलू से जमाअते-इस्लामी हिन्द के 'रुफ़क़ा' पहले ही से वाक़िफ़ थे और ख़ुदा की दी हुई समझ-बूझ से काम लेते हुए उस दौर में आनेवाली मुश्किलों के पेशे-नज़र अपनी कोशिशों और दौड़-धूप के तरीक़े को हिन्दुस्तान के बँटवारे से लगभग चार माह पहले ही तय कर चुके थे। और उन्हीं बातों को एक पम्फ़लेट की शक्ल में जिस का नाम "हिन्दुस्तान में तहरीके-इस्लामी का आइंदा लाइहे-अमल" है, प्रकाशित भी कर दिया गया था ताकि क़ौमपरस्ती का नशा उतर जाने के बाद जो लोग होश में आते जाएँ वे उस दौर की आनेवाली मुश्किलों से वाक़िफ़ होकर फ़िक्रो-अमल के इस्लामी

अंदाज़ को मालूम कर सकें और ग़लत तथा बिगाड़ पैदा करनेवाली जीवन व्यवस्थाओं से बचकर इनसानी ज़िन्दगी की तामीर उन बुनियादों पर शुरू कर दें जिन को इनसानों के पैदा करनेवाले मालिक, हाकिम और रोज़ी देने वाले ख़ुदा ने सुनिश्चित किया है।

लेकिन इस रिपोर्ट में उन बुनियादों की तफ़सील में जाने का कोई मौक़ा नहीं है। इसके लिए तो आप को इस इजतिमा की कार्रवाई से कुछ इशारे मिल जाएँगे और हमारी दावत और उसके प्रोग्राम से सम्बन्धित तफ़सीली जानकारी के लिए जमाअत के लिट्रेचर (साहित्य) का अध्ययन करना पड़ेगा। अलबत्ता हमारी इस रिपोर्ट को समझने के लिए इस फ़र्क़ को सामने रखना ज़रूरी है कि जिस जीवन व्यवस्था की तरफ़ हम बुलाते हैं वह प्रचलित जीवन व्यवस्थाओं से कितनी अलग है और कितनी बेहतर, बुलन्द और अफ़ज़ल भी है।

ज़ालिमाना पूँजीवाद और तानाशाही साम्यवाद की बुनियादों पर जो जीवन-व्यवस्थाएँ इनसानों ने बनाई हैं उन में इनसान सिर्फ़ एक उच्च स्तरीय जीवन (High Standard of Living) हासिल करने के लिए बेचैन रहता है। लेकिन इस्लामी जीवन-व्यवस्था में आदमी को न केवल एक उच्च स्तरीय जीवन बल्कि इसी के साथ-साथ एक उच्च स्तरीय नैतिकता (High Standard of Moarality) और एक आला दर्जे की परहेज़गारी और ख़ुदा-परस्ती (High standard of righteousness) भी हासिल होती है। इस्लामी जीवन-व्यवस्था में ख़ुदा का उसकी सारी ख़ूबियों, हुक़ूक़ व अधिकारों के साथ यक़ीन, उसको राज़ी व खुश करने की चाह और आख़िरत की जवाबदेही का यक़ीन ही वे बुनियादी चीज़ें हैं जिन की वजह से लोगों के दिलों में सूदी (ब्याज पर आधारित) कारोबार और लोगों की मजबूरियों से फ़ायदा उठानेवाले तमाम तरीक़ों को हराम ठहराना, ज़कात की अहमियत और विरासत के क़ानून की इज़्ज़त पैदा हो जाया करती है और आदमी दौलत का मालिक होने के बजाए अपने आप को उसका अमानतदार समझने लगता है और सारे इनसानों को एक पैदा करनेवाले की मख़लूक़

और एक आदम की औलाद समझते हुए उनके अन्दर गिरोही झगड़ों व ख़ून-ख़राबों के बजाए एकता और परस्पर दोस्ती पैदा करने की कोशिश करता है। इस तरह इस्लामी व्यवस्था, पूँजीवाद लोकतन्त्र और तानाशाही साम्यवाद, तथा अन्य जीवन-व्यवस्थाओं के गिने-चुने कुछ अप्रत्याशित गुणों के साथ ऐसी ख़ूबियाँ भी रखती है जो हरगिज़ किसी दूसरी व्यवस्था में नहीं मिल सकतीं। लेकिन यह हमारी बदक़िस्मती है कि इस समय किसी देश में व्यावहारिक रूप से इस्लामी व्यवस्था स्थापित नहीं है जिसको देखकर लोग उसकी तरफ़ आकर्षित हो सकें। बल्कि लोग आम तौर से पूँजीवाद या साम्यवादी जीवन-व्यवस्थाओं की ही ओर आकर्षित हैं। हमारी दावत यह है कि लोग उन सच्चे सिद्धांतों की ओर ध्यान देने लगें जो किसी ख़ास क़ौम की जागीर नहीं हैं बल्कि तमाम इनसानों के लिए आम हैं, जिनको इस कायनात के बनानेवाले ने दुनिया की शुरुआत से ही इनसानों की हिदायत व मार्गदर्शन के लिए नेक व बुज़ुर्ग इनसानों ही के ज़रिए दुनिया की मुख़्तलिफ़ क़ौमों को उनकी अपनी ज़बानों में प्रदान किया था फिर उन्हीं उसूलों को अपने आख़िरी पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) के ज़रिए सही और प्रमाणित रूप में दुनियावालों के सामने पेश किया गया जिन के मुताबिक़ हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ने दुनिया में एक नेक और साफ़-सुथरा समाज क़ायम किया था। यह दावत हम मुस्लिम और ग़ैर-मुस्लिम लोगों तथा मुस्लिम और ग़ैर-मुस्लिम संगठनों, यहाँ तक कि मुस्लिम और ग़ैर-मुस्लिम हुकूमतों को भी देते हैं कि आओ, हम तुम सब मिलकर एक ऐसा निज़ाम क़ायम करें जिसमें एक अल्लाह, जिसका कोई साझी नहीं, की सत्ता व स्वामित्व तथा उसके सारे गुणों को और आख़िरत की पूछ-गछ को नींव के पत्थर की हैसियत हासिल हो। सिर्फ़ इसी सूरत में एक ऐसी नई अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था (New World order) क़ायम हो सकती है और एक ऐसी आलमी हुकूमत (World State) वुजूद में आ सकती है कि जिससे लोगों को हक़ीक़ी अम्न-चैन की ज़िन्दगी नसीब हो, जिसमें दुनिया और आख़िरत की सारी ख़ूबियों, भलाइयों और कामयाबी व ख़ुशनसीबी का ख़ुशगवार मिश्रण मौजूद हो और जिस में तमाम इनसान दूसरों की ग़ुलामी से आज़ाद अपने आपको सिर्फ़ एक ख़ुदा-

ए-वाहिद के फ़रमाँबरदार और वफ़ादार बन्दे और दूसरे इनसानों को अपना भाई समझ सकें। इस तरह वह इनसानी बिरादरी बन सकेगी जिसमें ऊँच-नीच न होगी, न ज़ात-पात के भेद भाव होंगे, बल्कि आला और हक़्क़ी, रूहानी और अख़लाक़ी क़द्रें होंगी। सच्चा और निष्पक्ष इजतिमाई इनसाफ़ होगा और अपनी अस्ल शक्ल में तमद्दुनी (सांस्कृतिक) और राजनीतिक लोकतन्त्र भी मौजूद होगा जो आज कल के लोकतन्त्र से बिलकुल भिन्न होगा। जिसमें सारी सत्ता का मालिक वही इज़्ज़त व जलाल वाला ख़ुदा समझा जाएगा जो हक़ीक़त में सारी सत्ता का मालिक है और जिसने अपने रहम व करम से इनसान को वह सीधा राजमार्ग दिखा दिया है जिस पर चलकर इनसान अपनी ज़िन्दगी का मक़सद हासिल कर सकता है। यह सीधी राह भारत के बँटवारे से पहले बँटवारे के वक़्त और बँटवारे के बाद भी न सिर्फ़ मुसलमानों ही के लिए राहे-नजात (मुक्ति-मार्ग) थी और है, बल्कि हमारे इल्म व यक़ीन के मुताबिक़ पूरे देश और देशवासियों की सारी मुश्किलों का एक मात्र समाधान भी इसी मार्ग पर चलने से हो सकता है इसलिए इसी मार्ग को हम ख़ुद अपनाना चाहते हैं और इसी की ज़बानी व अमली तबलीग़ हमारा मक़सद है। यह राह बेशक मुश्किलों से भरी हुई है लेकिन सही राह को सिर्फ़ मुश्किलों की वजह से छोड़ देना कोई अक़्लमन्दी का काम नहीं हो सकता। इस लिए जिस वक़्त जमाअते-इस्लामी हिन्द की तश्कील (गठन) हुई उस वक़्त काम के फैलाव और रास्ते की मुश्किलों को देखते हुए यह यक़ीन करना बड़ा मुश्किल था कि हमारी जमाअत देश के बदले हुए हालात में कुछ कर भी सकेगी लेकिन इन मुश्किलों के बावजूद जो कुछ हम कर सके हैं इसकी सही स्थिति आप पर इस रिपोर्ट से वाज़ेह हो जाएगी।

जमाअत का चार निकाती (सूत्रीय) प्रोग्रामः- प्रोग्राम के मुताबिक़ हमारे सामने चार निकात थे जिन पर हमें अपना ध्यान पाँच साल तक लगाए रखना था। इन चार निकात में से पहली चीज़ तो यह थी कि इस क़ौमी कशमकश को ख़त्म किया जाए जो हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच फैली थी और ग़ैर-मुस्लिमों के साथ मुसलमानों के सम्बन्ध क़ौमी भेदभाव की

बुनियादों पर क़ायम होने के बजाए इस्लामी बुनियादों पर क़ायम हों क्योंकि जब तक यह कशमकश ख़त्म न हो जाए और ग़ैर-मुस्लिमों के साथ सही बुनियादों पर मधुर सम्बन्ध क़ायम न हों, ग़ैर-मुस्लिमों का इस्लाम की दावत की तरफ ध्यान देना किसी दर्जे में मुमकिन नहीं है।

दूसरी ज़रूरी बात यह थी कि ख़ुद मुसलमानों का सामाजिक सुधार इस्लामी उसूलों के मुताबिक़ किया जाए, उनमें दीन का इल्म बड़े पैमाने पर फैलाया जाए और उस इल्मे-इलाही के मुताबिक़ वे अपनी निजी और सामाजिक ज़िन्दगी के सारे ही शोबों को सँवारें तथा इस इल्म को दूसरों तक पहुँचाएँ और इस तरह भारत में दीन की ज़बानी व अमली तबलीग़ एक बड़े पैमाने पर की जाए ताकि मुसलमानों की दीन व दुनिया दोनों संभल जाएँ और उनका समाज एक मिसाली समाज बन सके।

तीसरी चीज़ यह थी कि मुसलमानों के ज़हीन तबक़े (बुद्धिजीवी वर्ग) की सलाहियतों से बाक़ायदा तौर पर काम लिया जाए और उनकी कोशिशों को उन तहरीरी और तक़रीरी कामों में लगाया जाए जो इस्लामी निज़ाम के लिए फायदेमंद हों। इसके अलावा इसी बुद्धिजीवी वर्ग को आम लोगों की सही रहनुमाई के लिए भी तैयार किया जाए क्योंकि अवामी काम को सही तौर पर सँभालना उस वक़्त तक मुमकिन नहीं है जब तक कि तजरिबेकार और तालीम याफ़्ता , ईमानदार व दयानतदार रहनुमा मयस्सर न हों।

चौथा ज़रूरी काम हमारे सामने यह था कि वे सब लोग जो हमारी जमाअत से किसी तरह का भी ताल्लुक़ रखते हों वे इस बात की कोशिश करें कि हिन्दी भाषा तथा दूसरी क्षेत्रीय भाषाओं में उनकी लिखने व तक़रीर करने की सलाहियत इतनी बढ़ जाए कि ग़ैर-मुस्लिमों के सामने उनकी अपनी भाषाओं में तथा देश की सरकारी भाषाओं में दावत को पेश किया जा सके।

हज़रात। यह था हिन्दुस्तान के बँटवारे के वक़्त हमारा मंसूबा जिस के बारे में मुख़्तसर तौर पर आप जमाअते-इस्लामी हिन्द के प्रकाशित दस्तूर (संविधान) में भी पढ़ सकते हैं।

आज इस रिपोर्ट में यह बताना हमारा मक़सद है कि मध्य अप्रैल 1948 ई. से लेकर यानी तीन पौने तीन साल के बीच के समय में हम इस प्रोग्राम पर किस हद तक अमल कर सके हैं। क्या हमारी मुश्किलें रही हैं। कितना हम करना चाहते थे और कितना नहीं कर सके और आनेवाले समय के लिए हमारे काम का क्या नक़्शा हमारे सामने है।

क़ौमी कशमकश को ख़त्म करने के लिए हमारी कोशिशें

सबसे से पहले हम अपने प्रोग्राम के पहले हिस्से को लेते हैं। यानी हिन्दुओं और मुसलमानों में जो कशमकश हिन्दुस्तान के बँटवारे से पहले सिर्फ़ क़ौमी बुनियादों पर चली आ रही थी उसको ख़त्म करने में हमारी कोशिशें भारत में किस हद तक कामयाब हुई हैं। इस बारे में यह बात बे मौक़ा न होगी कि क़ौमी कशमकश को दूर करने का ख़याल हमारे दिल में हिन्दुस्तान के बँटवारे के बाद मौजूदा हालात को देखकर पैदा नहीं हुआ बल्कि हिन्दुस्तान के बँटवारे से पहले भी हम इस को उसूली तौर से ग़लत समझते थे कि हिन्दुस्तान के मुसलमान "अल्लाह की रस्सी को मज़बूती से थामे रहो" उसूल के मुताबिक़ अपने आप को 'हिज़्बुल्लाह' (अल्लाह की जमाअत) बनाने के बजाए ग़ैर-इस्लामी ढंग की क़ौमी रस्सा-कशी में मसरूफ़ होकर एक नस्ली गरोह के किरदार (Characteristics) को दुनिया के सामने पेश करें और अल्लाह के दीन को क़ायम करने के बजाए ग़ैर-मुस्लिम जातिवाद के मुक़ाबले में मुस्लिम क़ौम अपने दुनियावी फ़ायदों के लिए लड़ना-झगड़ना शुरू कर दे और मौजूदा निज़ाम को चलाने में भागीदार व शामिल होने की माँग करे।

बँटवारे से पहले भी क़ौमी और ग़ैर-इस्लामी मक़सदों के लिए ग़ैर मुस्लिमों से यह कशमकश उसूली तौर पर ग़लत ही थी हालाँकि नतीजों के लिहाज़ से इतनी नुक़सानदेह न थी। लेकिन बँटवारे के बाद तो यह बुनियादी ग़लती मुसलमानों को बर्बादी की ओर ले जानेवाली थी, इसलिए मुसलमानों को हिन्दुस्तान के बँटवारे के बाद से तो हम लगातार और मुसलसल ख़बरदार करते रहे हैं कि वे चुनावों की दौड़-धूप, इलेकशन-बाज़ी,

मन्त्रिपदों और एक मुनासिब तादाद में सरकारी नौकारियाँ हासिल करने की जिद्दोजुहद और इसी तरह के ग़ैर-इस्लामी और बे-उसूली कामों से अलग हो जाएँ। हमारा यह सुझाव सिर्फ़ ज़बानी नहीं था बल्कि हमने अपने अमल से भी इसी बात को साबित किया कि हमारी जमाअत मौजूदा तर्ज़ की सियासत से किसी तरह का कोई ताल्लुक़ नहीं रखती है; इसलिए हमारे साथियों (रुफ़क़ा) ने बँटवारे से पहले और बँटवारे के बाद के किसी चुनाव में, किसी मन्त्रालय में या किसी भी ढंग के उहदे (पद) की चाह में किसी तरह का कोई हिस्सा नहीं लिया है। इसी बात का इज़हार जमाअत की तश्कील के बाद भी हमने एक इजतिमा के मौक़े पर 13 अगस्त 1948 ई. को इन शब्दों में किया था।

"जो लोग हमारी तहरीक को समझ चुके हैं वे अच्छी तरह जानते हैं कि न तो हम सरकारी नौकरियाँ चाहते हैं न पदों और सीटों के ख़ाहिशमन्द हैं और न हमें ज़िला बोर्ड और नगर पालिका की सदस्यता या अध्यक्षता की कभी कोई इच्छा रही है और न है और न हमने पश्चिमी ढंग की राजनीति में कोई हिस्सा लिया है। न हम कांग्रेस के सदस्य थे और न हैं और न हम मुस्लिम लीग के सदस्य रहे हैं, न हैं। न हमारा ताल्लुक़ समाजवादी पार्टी से है न कम्युनिस्ट पार्टी से और न देश की किसी और राजनीतिक पार्टी से।"

(हफ़्तावार 'अल-इनसाफ़' इलाहाबाद 5 सितम्बर 1948 ई.)

और फिर मौजूदा सियासत से अलग रहने की हक़ीक़त को एक सवाल के जवाब में अमीरे-जमाअत ने फ़रवरी 1949 ई. में इस तरह बयान किया था–

"हमारे नज़दीक जैसा कि आप को मालूम है कि किसी ग़ैर-इलाही निज़ाम (व्यवस्था) में ज़िम्मेदाराना तौर से हिस्सा लेना, चाहे इसके चलाने वाले मुसलमान ही क्यों न हों, ईमान और ख़ुदा परस्ती के बिलकुल ख़िलाफ़ बात है। और यह बिलकुल खुली हुई बात है कि ये पंचायतें जो क़ायम हो रही हैं वे अपनी हदों में कितनी ही आज़ाद क्यों न हों बहरहाल वे ग़ैर-इलाही शासन

व्यवस्था का ही एक विभाग हैं, जिसकी बुनियाद अल्लाह के बनाए हुए क़ानून के बजाए, इनसानों के अपने बनाए हुए क़ानूनों पर टिकी है और इन पंचायतों में जो फ़ैसले होंगे वे भी पंचायत के सदस्यों के निजी और आज़ाद रायों से हुआ करेंगे या वे अपने ही जैसे दूसरे इनसानों की रायों (सुझावों) के तहत होंगे और ये दोनों बातें ग़लत और नतीजे के एतबार से ख़तरनाक हैं। इनसान सब कुछ हो सकता है लेकिन ख़ुदा की हिदायत के बग़ैर क़ानून बनाना और हुकूमत करना उसकी हैसियत और इख़तियार से बहुत ऊँची बात है और यह इसी हक़ीक़त को नज़र-अंदाज़ कर देने का नतीजा है कि आज दुनिया तबाही और परेशानी का शिकार है।''

(सेहरोज़ा 'अल इनसाफ़' 25 फ़रवरी 1949 ई.)

''हमें अख़लाक़ी और दुनिया की भलाई के कामों से कोई इख़्तिलाफ़ नहीं है। वे काम अगर हो सकें तो बहुत अच्छे और बहुत पसंदीदा काम हैं और हम इन कामों को अपने तौर पर करने और उनमें दूसरों की मदद करने के लिए भी तैयार हैं लेकिन किसी ऐसे निज़ाम के तहत जो पूरे तौर से हमारे इख़्तियार में न हों और अपने आप में वह निज़ाम भी ऐसा हो जिसे हम ईमानदारी के साथ ग़लत समझते हों, हम राज़ी-ख़ुशी से इन कामों में हिस्सा नहीं ले सकते।''

हज़रात! हिन्दुस्तान की सियासी कशमकश से हमारी बेज़ारी व बे परवाही का अंदाज़ा आपको इन लेखों के अलावा इस बात से भी हो जाएगा कि मार्च 1950 ई. में ज़हीरुल-हसन साहब लारी की अध्यक्षता में मुसलमानों की जो कांफ्रेंस (सम्मेलन) लखनऊ में हुई थी, उसने जब अपने प्रस्ताव के ज़रिए देश की तमाम मुस्लिम जमाअतों के साथ जमाअते-इस्लामी हिन्द से भी अपील की थी कि मुस्लिम क़ौम के लिए सब मिलकर असरदार ढंग से काम करें तो जमाअते-इस्लामी के अमीर मौलाना अबुल-लैस इस्लाही नदवी साहब ने जमाअत की हैसियत को इन शब्दों में बयान किया था —

"इस वक़्त ख़ास तौर से जो मसाइल मुसलमानों के साथ पेश आ रहे हैं हम उनको हल करने के लिए दूसरी मुस्लिम जमाअतों के साथ मिलकर ग़ौर करने के लिए तैयार हैं इस शर्त के साथ कि इस्लाम का जो बुनियादी दृष्टिकोण है उसको ग़ौर व फ़िक्र की बुनियाद बनाया जाए।

हमें नहीं मालूम कि उत्तर प्रदेश के जिन लीडरों ने जमाअत को सहयोग की दावत दी है वे इस दृष्टिकोण के कहाँ तक समर्थक हैं लेकिन इस इजतिमा की जो कार्रवाई आमतौर से समाचार पत्रों में प्रकाशित हुई है उससे तो ऐसा ज़ाहिर होता है कि शायद अभी उनके सोचने का पुराना ढंग कुछ ज़्यादा बदला हुआ नहीं है। अगर हमारा यह अन्देशा सही है तब तो हमें अफ़सोस के साथ कहना पड़ता है कि हम उनके साथ किसी तरह का सहयोग और भागीदारी करने से अपने को मजबूर पाते हैं। अलबत्ता अगर उन हज़रात ने हालात की ज़रूरतों का सही अंदाज़ा कर लिया है और अब वे इस्लाम को ही बुनियाद बना कर मुसलमानों की ख़ास समस्याओं को हल करने के लिए तैयार हैं तो फिर कोई वजह नहीं है कि हम इस तरह की कोशिशों से अपने को अलग रख सकें।"

(सहरोज़ा 'अल इनसाफ़' इलाहबाद 5 अप्रैल 1950 ई.)

हज़रात!

हम इस बात से नावाक़िफ़ नहीं हैं कि भारत के मौजूदा संविधान के लिहाज़ से हर पार्टी मौजूदा सियासत में भाग ले सकती है, लेकिन हमारे अपने उसूल ही इसकी इजाज़त नहीं देते कि हम उस ग़लत ढंग की सियासत में हिस्सा लें, जिसमें ख़ुदा की सत्ता और उसकी हिदायत को नकारा गया हो। इसके साथ ही इस मरहले में राजनीति व शासन-व्यवस्था के बारे में अपने ख़यालात का इज़हार करना भी हमारे लिए कोई अहमियत नहीं रखता। क्योंकि हक़ीक़त में हमें तो एक ऐसे समाज को बनाने की फ़िक्र है जो पूरे-के-पूरे दीन पर अमल करने के लिए तैयार हो जाए। इसी लिए हमारा

असली काम वह है जिसकी चर्चा आगे चलकर की जाएगी, लेकिन यहाँ यह कहना बे मौक़ा न होगा कि हमारे इन ख़यालात (विचारों) और काम के तरीक़ों के बावजूद हमारे बारे में ग़लत तरह की ख़बरें (बातें) फैलाई जाती हैं चुनाँचे आपको यह जानकर हैरत होगी कि मार्च 1951 ई. के आख़िर में लखनऊ के एक अंग्रेज़ी और एक उर्दू दैनिक ने यह ख़बर फैला दी कि अपने इस "कुल हिन्द इजतिमा" में हम इस बात पर ग़ौर करेंगे कि मुसलमान किस पार्टी का साथ दें कि आनेवाले चुनाव में उन्हें अधिक-से-अधिक सीटें प्राप्त हो सकें इन्नालिल्लाहि व इन्ना इलैहि राजिऊन–

हमारा तो सारा ज़ोर ही इस बात पर लग रहा है कि मुसलमान अपने दीनी फ़र्ज इक़ामते-दीन (दीन को क़ायम करने) को पूरा करने की कोशिश करें और चुनाव आदि के बेकार और बेमक़सद कामों से बचें। इसी लिए अमीर जमाअते-इस्लामी हिन्द का एक ताज़ा लेख जो मासिक 'ज़िन्दगी' (उर्दू) रामपुर में पिछले कई अंको से क़िस्तवार प्रकाशित हो रहा है, इसका खुला सुबूत है। लेकिन जमाअत के मक़सद और काम के तरीक़े के बारे में लोग बराबर ग़लत फ़हमियाँ फैलाते चले जाते हैं। इस तरह के झूठे आरोपों ने हमें बेहद नुक़सान पहुँचाया है। एक तो देश के बँटवारे के बाद मुसलमान बेचारा अपने होश व हवास ही में न था कि हमारी बात को सुनता और दूसरे हमारे बारे में इस तरह के ग़लत प्रोपैगण्डे ने इसको हमारे क़रीब आने से और भी रोक लिया। लेकिन चूँकि बँटवारे के बाद भारत में मुसलमान डरा हुआ था और सियासी हालात के बदलने और नए संविधान के गठन ने क़ौमी कशमकश और क़ौमी माँगों को बेमानी बना दिया था। इसलिए हमारे प्रोग्राम के इस हिस्से को कि भारत में इस तकलीफ़देह कशमकश को ख़त्म किया जाए, आम तौर पर इज़्ज़त व क़द्र की निगाह से देखा जाने लगा। फिर भी मौजूदा सियासत की जो चाट मुसलमान को लगी हुई थी वह लखनऊ मुस्लिम कान्फ्रेंस और जौनपुर मुस्लिम कनवेन्शन वग़ैरा जैसे जलसों से ज़ाहिर हो रही थी। लखनऊ मुस्लिम कान्फ्रेंस के इरादों के मुक़ाबले में जमाअत की निश्चित नीति अभी आपके सामने रखी जा चुकी है। जौनपुर मुस्लिम कनवेन्शन के मौक़े पर भी हमने यही निश्चित नीति अपनाई थी। उस

मौक़े पर अमीर जमाअते-इस्लामी हिन्द ने अपने एक साथी को देखने के लिए कनवेन्शन में शामिल होने के लिए भेजा था। जिन्होंने इस मौक़े पर यह बताया कि मुसलमानों के रहनुमा (नेता) और दूसरे कामों में तो किताब (क़ुरआन) व सुन्नत को किसी-न-किसी हद तक सामने रखते हैं लेकिन जब राजनीति का प्रश्न आता है तो यूरोप व अमरीका वग़ैरा की नक़्ल करते हैं जो हद दर्जे ग़लत और नुक़सानदेह है। हमारे साथी ने इस कनवेन्शन में इस बात पर ज़ोर दिया था कि हिन्दुस्तान के मुसलमानों के लिए जो प्रोग्राम बनाया जाए इसमें पश्चिमी विचारधारा के बदले किताब (क़ुरआन) व सुन्नत को कसौटी बनाया जाए लेकिन अफ़सोस कि इस सुझाव को मुस्लिम कनवेन्शन ने ठुकरा दिया और पुराने तरीक़े के मुताबिक़ काम करने का फ़ैसला किया। इस तरह एक तरफ़ जहाँ क़ौमी क़शमकश को ज़िंदा रखने की नाकाम कोशिशें कुछ इदारे और मुस्लिम नेता कर रहे थे वहीं दूसरी तरफ़ मुसलमानों में एक जमाअत ऐसी भी थी जिसके लीडरों की रायें इस सिलसिले में अलग और मुख़्तलिफ़ थीं। उनमें से एक गरोह मुसलमानों के अधिकारों की सुरक्षा का दीवाना था और इसके लिए हिन्दुस्तान के संविधान की धर्मनिर्पेक्षता का सहारा लिए हुए था। इस गरोह की नीति (Policy) की आलोचना करते हुए हज़रत अमीरे-जमाअत ने एक इजतिमा में कहा था–

> "अव्वल तो यह बात हमारी समझ में नहीं आती कि संयुक्त राष्ट्रवाद के उपदेशों-नसीहतों के साथ इस तरह के साम्प्रदायिक नारों का क्या जोड़ है। दूसरे हम नहीं समझ सकते कि इसके लिए ये हज़रात ऐसा कौन-सा तरीक़ा अपनाना चाहते हैं जिससे मुसलमानों के अधिकारों की हिफ़ाज़त हो सके। हमारा तो ख़याल यह है कि ये हज़रात जब तक सुरक्षा का नाम लेते रहें और इस सिलसिले में कोई काम न करें उस समय तक उनके लिए भी ख़ैर है और मुसलमानों के लिए भी, वरना अधिकारों की हिफ़ाज़त के लिए की जानेवाली इस जिद्दोजुहद की शुरुआत होते ही फिर वही क़ौमी कशमकश शुरू हो जाएगी जो इस वक़्त बहुत मेहनत और

क़ीमत चुकाने के बाद दब सकी है और इस कशमकश का शुरू हो जाना न मुल्क के लिए फ़ायदेमन्द है और न मुसलमानों के लिए और सबसे आख़िर में न इस्लाम के लिए। क्योंकि इसी कशमकश का यह नतीजा है और इसके लिए हम मुस्लिम लीग को बहुत ज़्यादा क़ुसूरवार समझते हैं कि ग़ैर-मुस्लिमों को इस्लाम से नफ़रत हो गई, जिसे ग़लती से वे मुसलमानों का, जिनसे उन्हें नफ़रत है, ख़ास मज़हब समझने लगे हैं, हालाँकि यह सारे इनसानों का सबसे पुराना मज़हब है और मुसलमान नाम की क़ौम के वुजूद में आने से बहुत पहले दुनिया में मौजूद रहा है। हमारे नज़दीक मुसलमानों का यह काम नहीं है कि एक ग़ैर इस्लामी निज़ाम में उनके अधिकारों को सुनिश्चित कराने के लिए किसी प्रकार की जिद्दोजुहद की जाए जिस से क़ौमी कशमकश भी बे-वजह जन्म लेगी और मुसलमान कुछ हासिल करने के बदले और रहे-सहे अधिकार भी खो बैठेंगे बल्कि उनकी असली ख़िदमत तो यह है कि उनको और उन के साथ सारे देशवासियों को सच्ची ख़ुदा-परस्ती की दावत दी जाए और उनको दीन को पूरे-के-पूरे तौर पर अपना लेने की नसीहत की जाए। इसी से देश में वास्तविक सुखशान्ति का माहौल पैदा होगा। इसी से देश तरक़्क़ी, पायदारी और स्थिरता की ओर बढ़ेगा और इसी से मुसलमानों के अधिकार सुरक्षित रह सकेंगे । ख़ुदा-परस्ती से सच्ची ख़ुशनसीबी हासिल हो सकती है और दीन व दुनिया की कामयाबी इसी पर निर्भर करती है। यह बात बिलकुल खुली हुई है लेकिन उलमा (धार्मिक विद्वानों) को समझाने की हिम्मत कौन कर सकता है, वे ख़ुद भी तक़रीरों में कहते यही हैं यह और बात है कि वे अमली तौर पर इस को पेश न करें।''

(सहरोज़ा 'अल इनसाफ़' 28 मार्च 1949 ई.)

लेकिन इसी जमाअत के कुछ हज़रात ऐसे भी थे जिन्होंने इस राय का

भी ऐलान किया था कि मौजूदा हालात में मुसलमानों के लिए अमन व शान्ति का रास्ता यही है कि वे इस तरह की सियासत से अलग रहें। हालाँकि इन हज़रात ने यह सुझाव सिर्फ़ ज़माने के हालात को देखकर दिया था और हम ख़ालिस दीनी बुनियादों पर मुसलमानों से यह मुतालबा करते रहे हैं कि इस फ़ासिद (भ्रष्ट) और ग़लत ढंग की सियासत से अलग रहो इसी लिए नतीजे के तौर पर हमारे और दूसरे मुसलमान लीडरों के सुझावों में बड़ा फ़र्क़ है। मुसलमान लीडरों का तो कहना यह है कि जब सही मानी में धर्म-निर्पेक्षता और लोकतन्त्र की ज़रूरतों को देशवासी पूरा करने लगें तब उस समय मुसलमानों को इस सियासत में भाग लेना चाहिए, और हम यह कहते हैं कि न अब और न किसी समय ऐसी सियासत में भाग लेना जाइज़ है जिसकी बुनियाद उन के तस्लीम शुदा एतिक़ादों (धारणाओं) के ख़िलाफ़ उठाई गई हो। चाहे ऐसी सियासत की बागडोर ख़ुद मुसलमानों के अपने ही हाथों में क्यों न हो। फिर हमारा सुझाव सिर्फ़ नकारात्मक हैसियत नहीं रखता बल्कि हम एक रौशन और उज्ज्वल सकरात्मक पहलू भी मुसलमानों के सामने पेश करते रहे हैं और उन से यह कहते हैं कि तुम अपनी कोशिशों के रुख़ को दीन की तरफ़ फेर दो और जिस सरगर्मी, लगन और त्याग के साथ तुम अभी तक ग़लत क़ौमी कामों में लगे हुए थे इससे ज़्यादा होशमंदी और ईमान के जज़्बे के साथ अब दीन को क़ायम करने के फ़र्ज़ को पूरा करने में लग जाओ और सिर्फ़ अपनी क़ौम के लिए जीने और मरने के बजाए आम इनसानियत की कामयाबी व भलाई और रब्बुल-आलमीन के आदेशों के पालन के लिए जीने-मरने लगो ताकि तुम्हारी ज़बान इस बात की गवाही देने लगे –

> ''मेरी नमाज़ और मेरी क़ुरबानी और मेरा जीना और मेरा मरना सब अल्लाह के लिए है जो सारे संसार का रब है।''
>
> (क़ुरआन, सूरा-6 अनआम, आयत-162)

क़ुरआन की इसी आयत के मुताबिक़ तुम्हारे सारे आमाल हो जाएँ और तुम्हारी पूरी ज़िन्दगी और ज़िन्दगी का हर क्षेत्र और हर पहलू दीन की सीमाओं के अन्दर हो न कि उसके बाहर ताकि तुम अपनी ज़िन्दगी से इस

बात का सुबूत दे सको कि ख़ुदा का दीन केवल इबादतों व अख़लाक़ ही का मजमूआ (संग्रह) नहीं है बल्कि इसमें संस्कृति, सामाजिकता और राजनीति सब ही कुछ मौजूद है। और अल्लाह के क़ानून के मुताबिक़ हक़ीक़ी और फ़ितरी सियासत वही है जिसमें सारी सत्ता उसी सारी दुनिया के मालिक की स्वीकार की जाए जिसने इनसान को इस दुनिया में अपना ख़लीफ़ा (प्रतिनिधि) बनाकर भेजा है ताकि वह दुनिया में उसके क़ानूनों का पालन करे न कि मौजूदा ढंग की राजनीति की तरह इनसान ख़ुद क़ानून बनानेवाला बन जाए और ख़ुदा की सत्ता व अधिकार के बजाए, ख़ुद अपनी सत्ता और अधिकार का ढिंढोरा पीटने लगे।

हज़रात! यह है सियासत और मौजूदा सियासत के बारे में हमारे ख़यालात। विभिन्न स्थानों पर किस हद तक और किस तादाद में लोग हमारे इन विचारों से प्रभावित हुए हैं इसका तफ़सीली जवाब तो आपको विभिन्न हल्क़ों के 'क़य्यिमीन' की रिपोर्टों से मालूम होगा जो केन्द्रीय रिपोर्ट के बाद पेश की जाएँगी लेकिन हमारा अन्दाज़ा है कि मुसलमानों की अच्छी ख़ासी तादाद इस आवाज़ से ज़रूर प्रभावित हुई है। इस सिलसिले में काम करने का जो तरीक़ा मक़ामी जमाअतों ने अपनाया वह इस तरह है -

मुसलमानों से व्यक्तिगत रूप से सम्बन्ध बढ़ाए गए ताकि वे हमारी बात सुन सकें। फिर लिट्रेचर (साहित्य) और बातचीत के ज़रिए साम्प्रदायिकता के वैचारिक और अमली नुक़सानात ख़ूब अच्छी तरह खोल कर बताए गए। इजतिमाई तौर पर ख़िताबे-आम और स्थानीय समाचार पत्रों में तर्क संगत बयानात और लेखों के ज़रिए साम्प्रदायिकता की कड़ी आलोचना की गई और उन पर स्पष्ट किया गया कि उम्मते-वस्त और बेहतरीन उम्मत होने की हैसियत से उन के ईमान के बुनियादी तक़ाज़े क्या हैं, और उनसे किस तरह के अमल की उम्मीद करते हैं। जहाँ मौक़ा मिल सका मुसलमानों के अमन-पसन्द लोगों और जमाअतों के ज़रिए साम्प्रदायिक तनाव को दंगे की हद तक बढ़ने से रोका गया और तनाव के वक़्त में किताबें (पुस्तिकाएँ), विज्ञापन आदि प्रकाशित किए गए तथा अमन कमेटियाँ बनाने और उनमें

हिस्सा लेने की कोशिश की गई। कुछ जगह बाक़ायदा सूचियाँ बनाकर असरदार लोगों से विचार-विमर्श का ख़ास एहतिमाम किया गया। एक तरीक़ा यह भी रहा कि बेघर हो गए मुसलमानों को नए सिरे से बसाकर उनके जोश और दिलचस्पी को अच्छे कामों की तरफ़ मोड़ दिया गया।

मुसलमानों के दिलों में दंगे के नतीजे में जो डर और घबराहट की हालत पैदा हो गई थी उस को अल्लाह तआला के रब होने की सिफ़ात, रहम व इनसाफ़ और उसकी शाने-हिफ़ाज़त की याद को ताज़ा करके उनके ईमानी जोश और दिल के हौसलों के ख़त्म होने से जहाँ तक हो सका, रोका गया। इसी तरह जब मुसलमानों का कोई दहशत ज़दा (डरा हुआ) गरोह किसी ऐसे स्थान पर पहुँचा जहाँ हमारे साथी उनकी कुछ मदद कर सकते थे तो हमने ऐसे डरे-सहमे लोगों में दिली सुकून, अल्लाह से तआल्लुक़ बढ़ाने और उसी पर पूरा भरोसा पैदा करने की कोशिश की और अपनी बिसात भर उनकी माली मदद भी की। इन तरीक़ों का अल्लाह का शुक्र है मुसलमानों पर काफ़ी असर हुआ

ग़ैर-मुस्लिमों पर दावत का असर

हज़रात! यहाँ तक तो हमने क़ौमी कशमकश को ख़त्म करने के सिलसिले में उन कोशिशों का ज़िक्र किया है जो मुसलमानों में की गई। लेकिन चूँकि हमारी जिद्दोजुहद का ताल्लुक़ ग़ैर-मुस्लिमों से भी उतना ही है जितना कि मुसलमानों से है इसलिए कि हम अल्लाह के पैग़ाम को ग़ैर-मुस्लिमों तक पहुँचाना और एक ऐसी मिसाली आदर्श ज़िन्दगी के बारे में बताना कि जिस से ग़लत तरह के भेद-भाव मिटकर इनसानी एकता और तौहीद का अक़ीदा क़ायम हो सके अपना अहम फ़र्ज समझते हैं, इसलिए ग़ैर-मुस्लिम हज़रात के बारे में जो कोशिशें हमने की हैं उनसे भी हम आपको बाख़बर करना चाहते हैं ताकि ग़ैर-मुस्लिमों में जो कोशिशें की गई हैं उनकी नौइयत का आपको सही अन्दाज़ा हो सके और यह भी मालूम हो सके कि ग़ैर-मुस्लिमों से हमारे ताल्लुक़ात की सही नौइयत क्या होनी चाहिए और वह इन ताल्लुक़ात से कितनी अलग है जिनकी नुमाइन्दगी देश की वे पार्टियाँ

करती चली आई हैं जिनका ताल्लुक़ मौजूदा सियासत से रहा है।

इस बारे में सबसे पहले तो हमें यह ग़लतफ़हमी दूर करना है कि जमाअते-इस्लामी हिन्द 'शुद्धि' जैसी किसी तहरीक (आन्दोलन) का रद्दे-अमल है जिसका मक़सद भारत में मुसलमानों की तादाद बढ़ाना है ताकि वे देश की सियासत में अपनी तादाद की ज़्यादती की वजह से ज़्यादा नुमाइन्दगी हासिल कर सकें।

इस ग़लतफ़हमी को दूर करने के लिए तो सिर्फ़ इतना कह देना बहुत है कि मौजूदा सियासत के बारे में जो ख़यालात इससे पहले ज़ाहिर किए जा चुके हैं इससे आप ख़ुद अन्दाज़ा लगा सकते हैं कि जमाअते-इस्लामी की पॉलिसी क्या है। यह सही है कि पिछले दिनों इस तरह के काम इस्लाम की तबलीग़ व इशाअत (प्रचार व प्रसार) के नाम से बड़े ज़ोर-शोर के साथ किए जाते रहे हैं। जिनकी वजह से यह ग़लतफ़हमी अगर कुछ ग़ैर-मुस्लिमों के दिलों में पैदा हो भी जाए तो कोई हैरत की बात नहीं है। लेकिन अगर आपको हमारी दावत क़ा मुकम्मल तौर पर इल्म हो तो फिर इस ग़लतफ़हमी के होने की सिरे से कोई गुंजाइश ही नहीं रहती। हमारी दावत इसके सिवा क्या है कि सारे इनसान चाहे वे किसी भी क़ौम या देश से ताल्लुक़ रखते हों हज़रत आदम (अलै.) की औलाद और अल्लाह के बन्दे हैं और इस लिए एक दूसरे के भाई हैं। इनसानों के इस रिश्ते को मज़बूत बनाने और बन्दे और रब के ताल्लुक़ात को सही और हक़ीक़ी (फ़ितरी) बुनियादों पर क़ायम करने के लिए अल्लाह तआला ने विभिन्न देशों और विभिन्न कालों में अपने ऐसे नेक व परहेज़गार बन्दों को भेजा था, जिन्हें हम नबी और रसूल कहते हैं। उन सारे नबियों और रसूलों की बुनियादी और एक समान तालीम (शिक्षा) यह थी कि एक ख़ुदा ही तमाम इक़्तिदार व अधिकारों का मालिक है, उसी की हिदायत इनसानों की ज़िन्दगी का क़ानून है और चूँकि यह हिदायत रसूलों और नबियों के ज़रिए आम इनसानों तक पहुँचती है इसलिए नबियों और रसूलों की बताई हुई सारी बातों पर इनसान को अमल करना चाहिए ताकि दुनिया की ज़िन्दगी भी अमन-चैन से गुज़रे और मरने के बाद जब दोबारा

ज़िन्दगी पाकर इनसान अपने ख़ुदा के समाने हाज़िर हो तो वहाँ उसे कामयाबी व ख़ुशनसीबी हासिल हो। यही तालीम अरब व अरब के बाहर के सारे नबियों और रसूलों ने दी। इसी तालीम को यक़ीनन भारत में पैदा होने वाले रसूलों और नबियों ने भी यहाँ फैलाया होगा। इसलिए भारत के ग़ैर-मुस्लिमों से हमारी गुज़ारिश यह है कि वे भी अपने नबियों और रसूलों की शिक्षाओं को तलाश करें और अगर उन्हें अपने रसूलों और पैग़म्बरों की शिक्षाएँ मिल जाएँ तो उन पर अमल करना शुरू कर दें। लेकिन अगर उनके यहाँ इस बारे में तफ़सीली हिदायतें न मिलें तो इसका मतलब यह नहीं है कि वह चीज़ ख़ुदा ने उनके यहाँ नहीं भेजी थी बल्कि उसका मतलब सिर्फ़ यह है कि हालात के उलट-पलट होने के कारण ख़ुदा की भेजी हुई तालीम का बड़ा हिस्सा वे खो बैठे हैं, ख़ुदा की भेजी हुई वही चीज़ हम उनके सामने पेश करते हैं। यह उन्हीं की खोई हुई चीज़ है जो एक दूसरे ज़रिए से उनके पास पहुँच रही है अतः इसको जाँचने, परखने और पहचानने की ज़रूरत है।

हक़ीक़त यह है कि जिन उसूलों में मुसलमानों की, देशवासियों की और पूरी दुनिया की कामयाबी और तरक़्क़ी छिपी है, वे अल्लाह तआला की बन्दगी, उसकी हिदायत की पैरवी और आख़िरत में होनेवाली पूछगछ के उसूल हैं। यह 'उसूल' जैसा कि अमीर जमाअते-इस्लामी हिन्द ने हिन्दुओं और मुसलमानों के एक साझे इजतिमा में कहा था, कुछ नए नहीं हैं, कायनात के पैदा करनेवाले और मालिक ने हर क़ौम को अपने रसूलों के ज़रिए इन उसूलों से वाक़िफ़ कराया। यह दूसरी बात है कि उन्होंने बड़ी हद तक उन्हें भुला दिया, फिर भी उन उसूलों (सिद्धान्तों) के असर आज भी नेकी और अख़लाक़ (अच्छे व्यवहार) की शक्ल में क़ौमों की ज़िन्दगी में मौजूद हैं।

> "हमारे पास इन उसूलों की बुनियाद पर एक मुकम्मल तरतीब दिया हुआ और अमली निज़ाम भी मौजूद है जो कम-से-कम इस वक़्त दूसरी क़ौमों के पास मौजूद नहीं है और हम चाहते हैं कि दुनिया के सारे इनसान इस पर ग़ौर करें और अगर वह उनके लिए

क़ाबिले-क़बूल हो तो उसे क़बूल कर लें लेकिन मौजूदा हालात में अपने ग़ैर-मुस्लिम भाइयों से हमें इसकी उम्मीद नहीं है लेकिन उन से इतनी दरख़ास्त ज़रूर है कि वे उन ही उसूलों को अपनाएँ और उनकी बुनियाद पर जो निज़ामे-ज़िन्दगी उनके यहाँ मौजूद हो उसे देश में लागू करें। हम उसे यूरोप की अधर्मी-व्यवस्था पर तरजीह देंगे। इस निज़ाम में हम जैसे मुसलमानों के लिए क़त्ल की सज़ा हो तो हम उसके लिए भी राज़ी हैं और एक ऐसे निज़ाम को रोकने के लिए जिसकी नीव धर्म की बुनियाद पर न हो यह बलिदान दे सकते हैं। लेकिन हमें उम्मीद नहीं कि किसी धर्म में, जो ख़ुदा की तालीमात से कुछ भी ताल्लुक़ रखता हो, इस तरह के क़ानून मौजूद होंगे।" (अल इनसाफ़-1 फ़रवरी 1950)

हज़रात! इस सिलसिले में आपको यह शक नहीं होना चाहिए कि हम ग़ैर-मुस्लिमों को इस तरह के निज़ाम को क़ायम करने की दावत दे रहे हैं जो 'हिन्दू महासभा' या 'राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ' के लीडरों के पेशे-नज़र है। उन हज़रात का यह नज़रिया तो जहाँ तक हमारे इल्म का ताल्लुक़ है सिर्फ़ जातिवाद (क़ौम-परस्ती) का नज़रिया है जो इस उसूली नज़रिए से किसी भी तरह मेल नहीं खाता जिसकी तरफ़ ग़ैर मुस्लिमों को हम दावत देते रहे हैं अगर इस नज़रिए की झलक आप देखना चाहते हैं तो जमाअते-इस्लामी के साहित्य (लिट्रेचर) को पढें और हर तरह के पक्षपात से ऊपर उठकर किसी नतीजे पर पहुँचने की कोशिश कीजिए। लेकिन बदक़िस्मती से तास्सुब का शिकार ख़ुद मुसलमानों की ग़लतियों की वजह से आम तौर पर इस ज़माने में हमारे ग़ैर-मुस्लिम भाई रहे हैं। तथा इस मुश्किल काम को करने के लिए जिन अहम ख़ूबियों की ज़रूरत है वे हमारे अधिकतर साथियों में पूरी तरह नहीं पाई जाती। इसलिए ग़ैर-मुस्लिमों में हमारे काम की रफ़तार धीमी रही है। यही वजह है कि हिन्दी पत्रिका 'उजाला' जो ग़ैर-मुस्लिमों तक दावत पहुँचाने का एक अच्छा ज़रिआ हो सकती थी और जिसको घाटे के बावजूद हमने काफ़ी समय तक जारी रखा ग़ैर-मुस्लिमों में लोकप्रिय न हो सकी और

मजबूरन उसको बन्द करना पड़ा[1]। अब उसके बदले छोटी हिन्दी पुस्तिकाओं के प्रकाशन के सुझाव पर ग़ौर किया जा रहा है। फिर भी इसका यह मतलब नहीं है कि ग़ैर-मुस्लिमों में हमारा कोई काम नहीं हो रहा है। ख़ुदा के फ़ज़्ल से हम अपनी दावत की जानकारी रखनेवालों में भारत की अहम हस्तियों को गिना सकते हैं। गाँधी जी तो हमारे काम से भारत के बँटवारे से पहले ही वाक़िफ़ थे लेकिन बँटवारे के बाद हमने डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, पं. जवाहर लाल नेहरू, डॉ. पट्टा भाई सीता रमैया पंडित गोविन्द बल्लभ पंत, श्री राज गोपाल आचार्य, सरदार बलदेव सिंह, सर महाराज सिंह आदि लोगों तक अपनी दावत पहुँचाने की कोशिश की। इस तरह बँटवारे के बाद से अब तक ढाई हज़ार के लगभग गंभीर, सोच-विचार रखनेवाले ग़ैर-मुस्लिम हज़रात को जमाअत की दावत से परिचित कराने की कोशिश की गई है।

1949 ई. में जयपुर कांग्रेस अधिवेशन के मौक़े पर जमाअते-इस्लामी हिन्द की तब्लीग़ी सरगर्मियों की रिपोर्ट जिन हज़रात की नज़र से गुज़री होगी वे इस हक़ीक़त को अच्छी तरह जानते होंगे कि ग़ैर-मुस्लिमों के संजीदा और अच्छी राय रखनेवाले वर्ग में कितने अच्छे तरीक़े से हमारी दावत को समझने की कोशिश की गई। इस मौक़े पर ग़ैर मुस्लिम हज़रात की एक अच्छी ख़ासी तादाद ने क़ुरआन के हिन्दी तर्जमा के अध्ययन की इच्छा ज़ाहिर की जिसकी बुनियाद पर जमाअते-इस्लामी हिन्द ने यह फ़ैसला लिया कि हिन्दी ज़बान में क़ुरआन मजीद के तर्जमा की व्यवस्था की जाए इसलिए मौलाना सदरुद्दीन साहब इस्लाही की सेवाओं से फ़ायदा उठाते हुए क़ुरआन मजीद के ढाई पारों का तर्जमा एक तफ़सीली दीबाचो के साथ, जो लगभग 100 पृष्ठों पर मुश्तमिल होगा, इस समय तक लगभग तैयार हो चुका है। यह अनुवाद और उसके फुटनोट इस तरह संकलित किए गए हैं कि ग़ैर-मुस्लिमों को इस्लाम के बारे में जो उलझनें हों वे दूर होती चली जाएँ और वे इस्लामी शिक्षाओं को उनके अस्ली रूप में और उनके मूल स्रोत (अर्थात क़ुरआन) से सीधे तौर पर समझ सकें। यह तर्जमा तफ़सीर (व्याख्या) के साथ मासिक 'ज़िन्दगी'

1. हिन्दी में कान्ति साप्ताहिक और कान्ति मासिक फिर शुरू किया है जो शिक्षितवर्ग में काफ़ी लोक प्रिय हो रहा है।

रामपुर में 'तय-सिरुल-क़ुरआन' के नाम से हर माह प्रकाशित हो रहा है और यह तय किया गया है कि पहले कम-से-कम प्राक्कथन और सूरा बक़रा के तर्जमे के प्रकाशित करने की व्यवस्था की जाएगी। फ़िलहाल हिन्दी में तर्जमा और संशोधन के काम पर ध्यान दिया जा रहा है। लेकिन क्योंकि छपाई वग़ैरा के कामों में बहुत ज़्यादा रक़म ख़र्च होगी इस लिए फ़ौरी तौर पर इस काम में कुछ देरी ही होगी। इसी सिलसिले में यह इन्तिज़ाम भी हमारे पेशे-नज़र है कि अगर मुमकिन हो तो दो एक साथियों को ख़ास तौर से हिन्दी ज़बान में महारत (दक्षता) पैदा करने और ग़ैर-मुस्लिम हज़रात के अपने लिट्रेचर (साहित्य) से सीधे तौर पर जानकारी हासिल करने पर मुक़र्रर किया जाए ताकि आइन्दा ये साथी ख़ास-तौर से ग़ैर-मुस्लिमों के लिए जमाअत का लिट्रेचर तैयार करने में मुफ़ीद साबित हो सकें। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि जब तक ऐसा लिट्रेचर काफ़ी तादाद में तैयार न हो जाए हम ग़ैर-मुस्लिमों में अपने काम की रफ़्तार को धीमा कर देंगे। बल्कि जो कुछ लिट्रेचर हिन्दी, अंग्रेज़ी या और दूसरी ज़बानों में हमारे पास मौजूद है इस से काम लेना चाहिए और हमारे साथियों को जो हिन्दी ज़बान में कुछ भी महारत रखते हैं लिट्रेचर की तैयारी में मरकज़ (केन्द्र) की हर मुमकिन मदद करनी चाहिए। लेकिन इन सबसे अहम और ज़रूरी बात यह है कि हमारे रुफ़क़ा को ग़ैर-मुस्लिमों के सामने हर आन अपने रवैये से इस चीज़ का अमली नमूना पेश करते रहना चाहिए जिसको वे दुनियावालों के लिए भलाई और ख़ुशनसीबी की ज़मानत (Guaranty) देने वाला समझते हैं। हक़ीक़ी तबलीग़ यही है और इसी से वह साफ़ फ़र्क़ ग़ैर-मुस्लिमों की समझ में आ सकता है जो जमाअते-इस्लामी हिन्द के 'रुफ़क़ा' के रवैये और दूसरी जमाअतों से जुड़े लोगों के रवैये में पाया जाता है। अल्लाह का शुक्र है कि हमारे कुछ साथियों के बारे में ग़ैर-मुस्लिम न सिर्फ़ एक अच्छा गुमान रखते हैं बल्कि उनपर पूरा भरोसा रखते हैं। ग़ैर-मुस्लिमों में हमारा असली काम यही है कि उन्हें ख़ुदा-तरस और ख़ुदा परस्त (ईश-परायण और ईश-भक्त) बनने की दावत दें। इस दावत के सिलसिले में अगर मुश्किलें भी सामने आती हैं तो हम उन्हें बर्दाश्त करने के लिए तैयार रहें। जो मुश्किलें हमें आए दिन सी.

आई.डी., गुप्तचर विभाग आदि की पूछ-ताछ और जाँच के सिलसिले में पेश आती रहती हैं उनसे घबराने के बजाए उनको काम का एक हिस्सा ही समझना चाहिए। कभी-कभी तो इस तरह की मुश्किलें इस लिए भी सामने आती हैं कि मक़ामी तौर पर हमारे रुफ़क़ा (साथियों) की सही पोज़ीशन मक़ामी अफ़सरों वग़ैरा के सामने वाज़ेह नहीं होती और वे हमारी कोशिशों के बारे में तरह-तरह की ग़लतफ़हमियों का शिकार होते हैं। लेकिन मुनासिब तरीक़ों से अगर उन ग़लतफ़हमियों को दूर करने की कोशिश की जाए तो हमारी जानकारी के मुताबिक़ कुछ जगहों पर ख़ुद ग़ैर-मुस्लिम अफ़सरों और अधिकारियों ने हमारे साथियों की कुछ कोशिशों को जो उन्होंने दंगों के दौरान में की, बड़ी क़द्र और अहमियत की निगाहों से देखा है। ख़ुद रामपुर शहर में एक नाज़ुक मौक़े पर यहाँ की मुख़्तलिफ़ जमाअतों के संजीदा लोगों ने अमीरे-जमाअत को इस काम को करने के लिए सदारत की ज़िम्मेदारी सौंप दीं और जिस उदारता, इनसाफ़ और आपसी भरोसा से इस मौक़े पर सब लोगों ने मिल कर काम किया वह इस बात का जीता-जागता सुबूत है कि बे-लौस (निःस्वार्थ) ख़िदमते-ख़ल्क़ का जज़्बा अगर लोगों के दिलो-दिमाग़ में मौजूद हो या पैदा कर दिया जाए तो बड़े दायरे में इनसानियत की सेवा कितने अच्छे ढंग से की जा सकती है।

दंगों के बारे में जमाअत का नज़रिया

हज़रात! हमारे गुज़रे हुए इतिहास में उस ख़ूनी दौर की अहमियत को भुलाया नहीं जा सकता जिसके उठाए हुए हँगामों से आज तक हमारे देश की यह ज़मीन काँप रही है और जिसे हिन्दुस्तान का सबसे ज़्यादा बदतरीन दौर कहा जाएगा। मेरा इशारा उन दंगों की तरफ़ है जिनका आरम्भ साल 1946 ई. के शुरू में हुआ, 1947 ई. में अपनी इन्तिहा को पहुँचा और जिसके भयानक इतिहास को हम सब जानते हैं। आज जबकि भारत बंटवारे के बाद पहली बार जमाअते-इस्लामी हिन्द का कुल हिन्द इजतिमा हो रहा है, ज़रूरत महसूस होती है कि जमाअत के उन ख़यालात और कामों को भी मुख़्तसर तौर पर बयान कर दिया जाए जो उस दौर में जमाअत ने फैलाए थे।

दंगों का सिलसिला वैसे तो 13 अप्रैल 1946 ई. को उत्तर प्रदेश के दंगे से ही शुरू हो गया था लेकिन अगस्त 1946 ई. से तो यह देश में इस तरह फैलने लगा जैसे सूखे जंगल को किसी ने आग लगा दी हो। सैकड़ों मील के इलाक़ों में जंगों के रूप में दंगे हुए और वहाँ पर अल्पसंख्यकों को जड़ से मिटा देने के अभियान चलाए गए। यह देखकर हमें बेहद दुख हुआ कि देश के एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक दोनों क़ौमों के लीडरों और अख़बारों ने आग लगाने में तो पूरा हिस्सा लिया लेकिन कुछ एक लोग ऐसे थे जिन्होंने हक़ीक़त में नेक नीयती के साथ यह कोशिश की हो कि ये दंगे न हों और दोनों क़ौमों के ताल्लुक़ात नफ़रत व दुश्मनी के बदले प्रेम व मेल-मिलाप पर क़ायम हों। बहरहाल शरीफ़ लोगों का फ़र्ज़ यही है कि वे जहाँ जितनी ताक़त रखते हों ख़ुदा की ज़मीन पर अमन और इनसाफ़ क़ायम करने की कोशिश में लगाएँ।

जमाअते-इस्लामी ने दंगों की आग भड़कने से पहले ही उस का अनदाज़ा कर लिया था बल्कि वह कई सालों से हिन्दुस्तान के लोगों को यह बताने की कोशिश कर रही थी की जिस रास्ते पर तुम जा रहे हो उसका

अंजाम आपसी जंग और सबकी बरबादी के सिवा और कुछ नहीं है। सितम्बर 1946 ई. में जब इस बरबादी के आसार साफ़ दिखाई देने लगे तो जमाअत ने आनेवाले दंगों के बारे में अपना नज़रिया और काम का तरीक़ा साफ़ तौर से तय करके जमाअत के सभी अरकान (सदस्यों) के नाम ये हिदायतें भेजी थीं —

"सवाल किया जा रहा है कि अगर कहीं दंगे हों तो हम क्या रवैया अपनाएँ? इस सिलसिले में आम हिदायतें इससे पहले 'तर्जमानुल-क़ुरआन' में दी जा चुकी हैं। अब मजलिसे-शूरा काफ़ी सोच-विचार के बाद ये हिदायतें देती है —

(1) आम दंगों की हालत में जमाअत के अरकान के लिए अपनी हिफ़ाज़त का सबसे बड़ा ज़रिआ उनका अपना अख़लाक़ी रवैया और उनका क़ौमी व नस्ली पक्षपात से ऊपर उठकर भलाई व सुधार की अमली तौर से दावत देना है। इस मामले में जमाअत के अरकान जितने ज़्यादा सच्चाई पर चलने वाले और बुराई से बचनेवाले होंगे और जितने ज़्यादा भलाई करने और भलाई की तरफ़ बुलाने में सरगर्म होंगे उतने ही ज़्यादा आम फ़ितनों की आग से उनका महफ़ूज़ रहना मुमकिन है और जितने ज़्यादा बे अमल रहेंगे उतने ही ज़्यादा ख़तरे में रहेंगे।

(2) अगर दंगों की हालत में कोई जमाअत का रुक्न (सदस्य) घिर जाए और उस पर हमला किया जाए तो जहाँ तक हो सके हमला करनेवालों को समझाना चाहिए और अगर इसका मौक़ा न हो तो अपनी हिफ़ाज़त के लिए हाथ उठा सकता है। इस हाल में अगर उसके हाथ से कोई मारा जाए तो मक़तूल (मरनेवाले) के ख़ून की ज़िम्मेदारी शरीअत के मुताबिक़ ख़ुद मरनेवाले पर ही होगी। अपना बचाव करने में हाथ उठानेवाला अल्लाह की तरफ़ से बरी होगा और अगर ख़ुद को बचाने में मारा जाए तो वह इनशाअल्लाह शहीद होगा।

(3) अगर किसी रुक्ने-जमाअत के सामने हिन्दुओं या मुसलमानों का कोई गरोह किसी मज़लूम पर हाथ उठा रहा हो तो उसको रोकने और मज़लूम

को बचाने की हर मुमकिन कोशिश करनी चाहिए यहाँ तक कि इस सिलसिले में ख़ुद अपनी जान भी ख़तरे में पड़ जाए तो उस ख़तरे की भी परवाह न की जाए।

(4) दंगों की हालत में अगर कोई व्यक्ति या ख़ानदान ख़तरे में फंसा हो चाहे वह मुस्लिम हो या ग़ैर-मुस्लिम और चाहे वह ख़ुद पनाह माँगे या न माँगे अपनी तरफ़ से कोशिश करके उसे अपनी पनाह में ले लिया जाए और अपने आपको ख़तरे में डालकर भी उसकी हिफ़ाज़त की जाए।

(5) दंगों के ज़माने में जब कभी और जहाँ कहीं मौक़ा मिले तमाम इनसानों को और अगर मुमकिन हो तो दंगा भड़कानेवाले (लीडरों) को समझाने की कोशिश की जाए, उनको ख़ुदा से डराया जाए। अगर मुसलमान हों तो उनको दीन का हक़ीक़ी मक़सद और उस को हासिल करने का सही तरीक़ा बताया जाए और उनपर यह बात खोल दी जाए कि क़ौमी कशमकश और उसके लिए ये दंगे किसी दर्जे में भी अल्लाह के यहाँ पसन्द नहीं किए जाएँगे और अगर ग़ैर-मुस्लिम हों तो उन पर जातिवाद के बुरे परिणामों को स्पष्ट कर दिया जाए।" (तर्जमानुल-क़ुरआन अंक 29 पृ. 278)

दंगों के दौरान हमारा रवैया

इन हिदायतों पर हमारे रुफ़क़ा (साथियों) ने किस तरह अमल किया उसे भी सुन लीजिए।

हमें यह बताते हुए बहुत ख़ुशी हो रही है कि हमारे रुफ़क़ा (साथियों) और हमदर्दों और हमारी दावत से प्रभावित लोगों तक ने ज़्यादातर जगहों पर बहुत अच्छा काम किया और अपने चरित्र और न्याय व इनसाफ़ पर आधारित आचरण से हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों की सही ख़िदमत की। लेकिन ज़ाहिर है कि अरकान की तादाद देश में उस समय आटे में नमक से भी कम थी इसलिए जमाअत के इस तर्ज़े-अमल का असर आम तौर पर ज़ाहिर न हो सका। फिर भी अमृतसर, रावलपिंडी, झेलम, ज़िला केम्बल पुर, रोडी, ज़िला हिसार और बाबा पुर ज़िला निज़ामाबाद में हमारे अरकान

और हमदर्दों ने जो काम किया है उसकी तफ़सीली रिपार्टें जमाअत की रूदाद भाग पाँच में देखी जा सकती हैं, जिन से हमारे सोचने और काम करने का अंदाज़ा अच्छी तरह लगाया जा सकता है।

हिन्दुस्तान के बँटवारे के बाद दंगों के मौक़े पर जमाअते-इस्लामी हिन्द के रुफ़क़ा (साथियों) ने जो कोशिशें की हैं उनमें ख़ास तौर पर सहार ज़िला मथुरा, बरेली, जालना स्थित हैदराबाद दक्षिण, फैज़ाबाद और डालटन गंज स्थित बिहार के साथियों की कोशिशों का सरसरी ज़िक्र भी फ़ायदे से ख़ाली न होगा।

क़स्बा डालटन गंज (बिहार) में जो घटना घटी उसके बारे में हमारे रफ़ीक़ (साथी) इस तरह लिखते हैं —

> "एक बार हमारे ज़िला स्कूल और एक दूसरे हाई स्कूल के लड़कों के बीच फ़ुटबॉल मैच के सिलसिले में झगड़ा हो गया। दोनों तरफ़ से पथराव और हाथा-पाई हो रही थी। दोनों तरफ़ के सैकड़ों लड़कों का जमघट था, पत्थर और ईंटों की बारिश के बीच मैं दोनों तरफ़ की भीड़ के बीच में कूद पड़ा। और अल्लाह का शुक्र है कि मेरी कोशिशों से उत्तेजित पार्टियाँ तितर-बितर हो गईं। मेरे स्कूल के लड़कों से दूसरे स्कूल का एक लड़का ज़ख़्मी हो गया था। उसे लेकर मैं अस्पताल गया और डॉ. के पास जाकर मरहम पट्टी कराई। इस तरह की दो एक और मिसालें हैं जिनमें मेरी मामूली कोशिशों से दंगा रुक गया।"

फैज़ाबाद, जालना और क़स्बा सहार ज़िला मथुरा में हमारी जमाअत के रुफ़क़ा (साथियों) ने जैसा कि उनकी रिपोर्टों से पता चलता है कि उन्होंने किसी जाति-धर्म का भेदभाव किए बिना मुसीबत के मारों की मदद के लिए जन-सेवा का अपना फर्ज़ पूरा किया। चुनांचे घायलों की सेवा और देख-भाल और तीमारदारी की गई जिससे उनके किरदार के अच्छे असरात सामने आए हैं। फ़ैज़ाबाद में हैसियत के मुताबिक़ मज़लूमों की माली सहायता भी की गई। बरेली के हमारे एक रफ़ीक़ (साथी) सूचना देते हैं —

"दंगों के वक़्त में सिर्फ़ मुसलमानों तक ही अपनी सेवा का काम सीमित नहीं रहा। व्यक्तिगत रूप से अमली तौर पर इनसानी हमदर्दी की गई मिसाल के तौर पर ग़ैर-मुस्लिमों की तीमारदारी वग़ैरा की गई।"

जालना में भी बिना किसी धर्म व जाति के भेदभाव के घायलों की देख-रेख और मरहम पट्टी का काम किया गया। दंगा क्योंकि अचानक फूट पड़ा इस लिए रोक-थाम में कोई विशेष कार्य न हो सका। हमारे एक रफ़ीक़ लिखते हैं—

"जनवरी 1951 ई. में यहाँ अचानक साम्प्रदायिक दंगा फूट पड़ा। मक़ामी जमाअत के अरकान दंगे के बाद अस्पतालों में जाकर घायलों की देखभाल और सेवा करते रहे। दंगा चूँकि अचानक और अप्रत्याशित रूप में हुआ था इसलिए समय रहते उसको टालने का कोई मौक़ा न मिल सका।"

दंगे के दौरान जहाँ-जहाँ मुसलमान आबादियों में ख़ौफ़ और घबराहट फैलने का ख़तरा था वहाँ हमारे रुफ़क़ा ने बिना किसी डर व ख़ौफ़ के पहुँचकर मुसलमानों को भागने और अपने घर-बार छोड़कर चले जाने के नुक़सानात समझाकर उनमें सब्र व सुकून पैदा करने की कोशिश की है, जिस से दंगे के फैलने की सम्भावनाएँ भी कम होती चली गईं। इस मौक़े पर यह भी अर्ज़ कर देना बे मौक़ा न होगा कि जहाँ हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष में अधिक खिंचाव पैदा हो कर दंगे का ख़तरा पैदा हो जाता है वहाँ पर अरकान का क्या अमल रहता है।

बनारस में हमारे एक रफ़ीक़ (साथी) जिन का घर ख़ालिस हिन्दू मोहल्ले में है दंगे के दौरान में कभी अपने मकान को छोड़कर नहीं गए। इसलिए इसका अच्छा-ख़ासा असर मुहल्लेवालों पर पड़ा जिन्होंने हमारे साथी की बहादुरी और खुलूस का एतिराफ़ भी किया। दंगों के सिलसिले में आम-तौर पर जो तरीक़े हमने अपनाए हैं उन में से हम कुछ को मिसाल के तौर पर यहाँ पेश करेंगे।

(1) कमेटियाँ बनाने की कोशिश करना जिसमें दोनों सम्प्रदायों के सम्मानित और शान्ति प्रिय लोगों को शामिल किया जाता है।

(2) साम्प्रदायिकता और उससे पैदा होनेवाली ज़ेहनियत की कड़ी आलोचना करके उसके नुक़सानों को दोनों सम्प्रदायों को बताना। इसके लिए पुस्तिकाएँ और पम्फ़ेलेट प्रकाशित करना, ख़िताबे-आम (जन सम्बोधन) के अवसर पैदा करना और अलग-अलग लोगों से मुलाक़ात और बातचीत में दोनों सम्प्रदायों के लोगों के जज़बात को ठंडा करना। उनको अख़लाक़ और इनसानियत के बुलन्द उसूलों की तरफ़ ध्यान दिलाकर मेल-मिलाप और अम्न की ओर बुलाने का काम पूरी लगन के साथ किया जाता है जिसके अच्छे नतीजे भी निकले हैं। चुनांचे भोपाल और टोंक में यह काम कामयाबी के साथ किया जा चुका है। अन्य बहुत-सी जगहों पर अम्न-पसन्द लोगों को समझाने-बुझाने से दंगों की रोक-थाम हो सकी है। उदाहरण के रूप में औरंगाबाद, ज़िला बनारस, सराये-मीर, महवारह कलाँ (ज़िला आज़मगढ़, सफ़ी पुर ज़िला उन्नाव) इत्यादि।

इस बारे में विभिन्न अवसरों पर अमीर जमाअते-इस्लामी हिन्द जो बयानात व हिदायतें देते रहे हैं उनका अच्छा-ख़ासा असर हुआ है। "पयामे-अमन" के नाम से रामपुर के अख़बारों में एक अपील मार्च 1950 ई. में प्रकाशित हुई, जबकि शाहजहाँपुर और पीलीभीत के इलाक़ों में दंगों की आग फैल रही थी और ख़तरा था कि शायद रामपुर इस की चपेट में न आ जाए। अमीरे-जमाअत ने अपने बयान में कहा—

> "दूसरी बात जो इस मौक़े पर ज़रूरी है यह है कि इस समय हर व्यक्ति को पूरी-पूरी एहतियात करनी चाहिए कि उससे कोई ऐसी बात या हरकत न हो जो किसी वर्ग के लिए किसी भी रूप में उत्तेजना का कारण साबित हो सके। और अगर किसी एक आदमी या कुछ लोंगों की तरफ़ से इस तरह की कोई बात हो भी जाए तो उसका मुक़ाबला बहुत ही सब्र व धैर्य से किया जाए और उसको क़ौमी रूप देने के बजाए उसको सिर्फ़ उस की ज़ात तक

> महदूद रखा जाए और अगर वह अपनी क़ौम का आदमी है तो उस की तरफ़दारी व हिम्मत-अफ़ज़ाई करने के बजाए उस ग़लत काम पर उसकी निन्दा की जाए। इस तरह उम्मीद की जा सकती है कि अमन व शान्ति के वर्तमान वातावरण को क़ायम रखने में हम कामयाब हो सकेंगे। मैं इस के लिए बहुत ही ख़ुलूस के साथ दोनों सम्प्रदायों से अपील करता हूँ।"
>
> (अल इनसाफ़-25 मार्च 1950 ई.)

ज़ात और मज़हब के भेदभाव के बिना लोगों की ख़िदमत

हज़रात! दंगों के अलावा अकाल (क़हत), सैलाब (बाढ़), आगज़नी या ऐसे ही दूसरे मौक़ों पर भी जमाअते-इस्लामी हिन्द अपने सीमित संसाधनों की हद तक ज़ात व मज़हब का भेदभाव किए बिना देशवासियों की सेवा करती रही है। 1948 ई. में हिन्दुस्तान के कई प्रदेशों और ख़ास तौर पर उत्तर प्रदेश में बारिश की ज़्यादती और नदियों में बाढ़ आ जाने की वजह से देश में बड़ी तबाही फैल गई। उत्तर प्रदेश के मुख्य मन्त्री पंडित पंथ की सूचना के अनुसार उ.प्र. के बीस लाख आदमी गंगा के सैलाब की वजह से बेघर हो गए। ऐसे मौक़े पर अमीर जमाअते-इस्लामी हिन्द ने रुफ़क़ा (साथियों) को उनकी ज़िम्मेदारियों की तरफ़ ध्यान दिलाया। आप ने रुफ़क़ा को एक एलान के ज़रिए इस तरफ़ ध्यान दिलाते हुए कहा था कि "हम में से जो व्यक्ति जिस तरह की भी मदद परेशान हाल लोगों को पहुँचा सकता है उसको बिना किसी धर्म व सम्प्रदाय के भेदभाव के पहुँचानी चाहिए क्योंकि यह हमारा एक दीनी फ़र्ज़ ही नहीं बल्कि यह हमारी अमली तरबियत का एक बेहतरीन ज़रिआ भी है।" आप ने फ़रमाया –

> "इस वक़्त सबसे पहला काम रुपयों से मदद करना है। इस काम के लिए जिससे रुपयों-पैसों की जो भी मदद बन पड़े उसे बेझिझक करनी चाहिए और इस काम के लिए आप दूसरों को भी मदद करने की तरफ़ तवज्जोह दिला सकते हैं।"

इस सिलसिले में हल्क़ा बनारस, कानपुर और इलाहाबाद के क़य्यिमों

(सेक्रेट्रियों) के पास रक़में जमा हुई थीं जिन्हें ज़रूरतमंदों को दिया गया तथा हमारे रुफ़क़ा ने ख़ास तौर से बलिया, ग़ाज़ीपुर और बनारस के कुछ ऐसे देहातों का दौरा करके इमदादी काम किया जहाँ सैलाब की वजह से तबाही आ गई थी।

इसी तरह बिहार में ग़ल्ले की कमी की वजह से जो नाज़ुक सूरते-हाल पैदा हो गई है इस सिलसिले में रुफ़क़ा (साथियों) को नीचे लिखे मशवरे दिए गए हैं।

(अ) पहली बात यह कि ग़ल्ले के बारे में मुख़्तलिफ़ गाँवों की सही सूरते-हाल से हुकूमत के ज़िम्मेदार लोगों को बाख़बर किया जाए और गाँवों में कन्ट्रोल रेट पर ग़ल्ला मुहैया कराने की कोशिश और मुनासिब तरीक़े पर उस के वितरण (तक़सीम) की व्यवस्था की जाए। चुनांचे इस सिलसिले में लोगों की कोशिशों से कई जगह कामयाबी हुई है।

(ब) जमाअत से ताल्लुक़ रखनेवाले लोगों को तवज्जोह दिलाई गई है कि वे भूखों की मदद का ख़ास ख़याल रखें, जिन को अपनी ज़रूरत से ज़्यादा मिल रहा हो अगर उनसे हो सके तो अपने खाने का पाँचवाँ हिस्सा बचा कर भूखों की मदद करें। जिन से हो सके वे हफ़्ते में एक दिन रोज़ा रखें और दिन का खाना बचाकर फ़ाक़ा ज़दों (भूखों) की मदद करें।

ख़ुदा का शुक्र है कि इन सुझावों पर बहुत से लोग अमल कर रहे हैं। कुछ ख़ानदानों में तो इजतिमाई अमल हो रहा है, यानी पूरे ख़ानदान के खाने का पाँचवाँ हिस्सा बचाया जाता है और ख़ानदान के सारे बालिग़ और सेहतमंद आदमी हफ़्ते में एक दिन (जुमेरात) का रोज़ा रखते हैं और इस से जो कुछ खाने पीने की चीज़ें बचती हैं उनके ज़रिए हर धर्म व सम्प्रदाय के भूखों की मदद की जाती है। कुछ समय पहले बिहार राज्य में मलमल नाम का पूरा का पूरा देहात आग की चपेट में आ गया जिसकी वजह से हिन्दू-मुसलमान दोनों परेशान हो गए। उनके मकानात जलकर राख हो गए। ग़ल्ला जल गया, पहनने-ओढ़ने के कपड़े बरबाद हो गए और हर तरह से लोग तबाही के शिकार हो गए। ऐसे मौक़े पर जमाअत के कुछ लोगों ने

किसी धर्म व सम्प्रदाय का भेदभाव किए बिना वहाँ के लोगों की सेवा की और उनके लिए खाना उपलब्ध कराया, कपड़ा उपलब्ध कराया। हमारी बहुत-सी मक़ामी जमाअतों ने उनकी रुपये-पैसे से मदद की। यहाँ तक कि कुछ साथियों ने तबाह हुए मकानों के नव-निर्माण में जहाँ तक हो सकता था अपने हाथ-पैरों से भी मदद की। इसी तरह हैदराबाद में पुलिस कार्रवाई के बाद ग़ुन्डों की वजह से जो मर्द, औरतें और बच्चे परेशान हाल हो गए थे उनकी मदद और बहाली के लिए जमाअत की तरफ़ से एक योजना तैयार की गई थी जिससे परेशान हाल लोगों की मदद के लिए, चाहे वह किसी क़ौम से सम्बन्ध रखते हों, रास्ता निकाला गया था। अमीर जमाअते-इस्लामी हिन्द ने इस योजना की तरफ़ अपने रुफ़क़ा और दीगर ऐसे लोगों को जो दूसरों की मदद कर सकते थे उन्हें तवज्जोह दिलाते हुए कहा था कि "हैदराबाद में जो अफ़सोसनाक हालात पैदा हुए हैं उनका कुछ कम या ज़्यादा इल्म हर आदमी को होगा। ऐसे हालात में हर दर्दमन्द इनसान पर चाहे वह किसी क़ौम व नस्ल से सम्बन्ध रखता हो, जो ज़िम्मेदारियाँ उस पर आती हैं वे बिलकुल ज़ाहिर हैं। इसी लिए हमने यह तय किया है कि हम अपने सीमित संसाधनों के साथ इस बारे में जो कुछ कर सकते हैं उसमें कमी न करेंगे।" लिहाज़ा इस अपील का काफ़ी कुछ असर हुआ और हल्क़ा हैदराबाद की जमाअतों के ज़रीए से मदद व राहत का काफ़ी काम हुआ। गुलबरगा और हैदराबाद में तो यह काम सीमित स्तर पर हुआ लेकिन बीदर में ऐसे मौक़े मिल गए जहाँ एक रिलीफ़ कैम्प खोला गया। यह कैम्प 7 अकतूबर 1948 ई. को शुरू किया गया जहाँ मज़लूमों के खाने-पीने की व्यवस्था की गई थी और कपड़ों से भी मदद की जाती थी। रोज़ाना कैम्प से फ़ायदा उठानेवालों की तादाद 250 रहती थी। ग़ल्ला और कपड़े से बीदर के लोगों ने मदद की और कुछ कपड़ा हैदराबाद से मँगवाकर भेजा गया। मक़ामी आबादी ने माली मदद में भाग लिया और कुछ रक़म हैदराबाद से जमा करके भेजी गई । यह कैम्प तीन माह तक अच्छे पैमाने पर चलता रहा। यहाँ तक कि हालात कुछ सामान्य हुए और जब लोग अपने देहातों या हैदराबाद को वापस जाने लगे तो यह कैम्प जनवरी 1949 ई. को बन्द कर दिया गया,

लेकिन व्यक्तिगत रूप से मदद का काम चलता रहा। कुछ लोगों को सहायता देकर कारोबार या मज़दूरी पर लगाया गया। इस कैम्प पर 141 मन ग़ल्ला 1573 रुपये 2 आने 8 पाई ख़र्च हुए। मक़ामी आबादी ने पाँच सौ रुपये का ग़ल्ला और 973 रुपये नक़द रक़म से मदद की और हैदराबाद से पाँच सौ रुपये नक़द तथा लगभग एक सौ (100/) रुपये के कपड़े और कम्बल भेजे गए। कैम्प ख़त्म होने के बाद व्यक्तिगत सहायता की जाती रही। अब चूँकि देहातों में ज़्यादातर बूढ़ी औरतें और छोटे बच्चे रह गए हैं, नौजवान मर्द और औरतें शहर में चले गए हैं इसलिए इस योजना के लागू करने के विचार को छोड़ देना पड़ा। राहत कोश (Releaf Fund) में रक़म 3437 रुपये 14 आने तीन सिक्का उसमानिया और 3698 रुपये आठ आने हिन्दुस्तानी सिक्के में प्राप्त हुए थे। इस बीच बीदर में मदद का काम चलता रहा। 1950 ई. में दो सौ बेवाओं को रिलीफ़ कमेटी हैदराबाद की भेजी हुई दो हज़ार साड़ियाँ देहातों का दौरा करके ज़रूरतमन्दों में बाँट दी गईं। दो सौ बेवाओं को दो साल के लिए सहायता राशी के रूप में वज़ीफ़े दिलवाए गए। अप्रैल 1950 ई. में बेवाओं की सहायता के लिए सरकार की तरफ़ से एक औद्योगिक केन्द्र खोला गया, जहाँ लगभग 16 बेवाएँ जिनके पति दंगे में मारे गए थे काम कर रही थीं। इस केन्द्र को जमाअत की निगरानी में दे दिया गया था। अब तक पचास-साठ लोगों को छोटे कारोबर पर लगाया गया। लगभग सौ-सवा सौ लोगों की वक़्ती मदद की गई। बीस-बाईस लोगों को अपने-अपने घरों को जाने का रेल किराया दिया गया। लगभग सौ लोगों में कम्बल और कपड़े बाँटे गए। गरज़ यह है कि हर सम्भव तरीक़े से हैदराबाद के बहुत से बेघर हुए लोगों की मदद की गई।

इसी तरह एक और मौक़े पर जब काफ़ी तादाद में परेशान शरणार्थी लोगों का एक क़ाफ़िला पाकिस्तान से टोंक पहुँचा तो हमारे मक़ामी अमीरे-जमाअत के माध्यम से उनको बसाने की व्यवस्था बहुत ही अच्छे ढंग से की गई और हर मुमकिन मदद जो हमारी जमाअत कर सकती थी उससे बचा नहीं गया। इसलिए हमारे साथियों की इन कोशिशों का असर हिन्दू-मुस्लिम अच्छे सम्बन्धों की शक्ल में सामने आ रहा है।

ग़ैर-मुस्लिमों के विचार

हज़रात !

अब आपको इस बात का अच्छी तरह से अंदाज़ा हो गया होगा कि क़ौमी कशमकश को ख़त्म करने, देशवासियों में एक दूसरे के साथ सहयोग व साझेदारी की भावनाओं को उभारने और उनमें सही उसूलों के तहत एक दूसरे से सुलूक करने के सिलसिले में हमने अब तक क्या कोशिशें की हैं। हक़ीक़त में कुछ गिने-चुने लोगों की कोशिशें कोई ख़ास अहमियत नहीं रखतीं। फिर भी हमारी उन कोशिशों के जो नतीजे निकल रहे हैं वे हमें इस बात के लिए तैयार करते हैं कि हम अपनी कोशिशों को न केवल बराबर जारी रखें बल्कि उनको और बढ़ाएँ। नमूने के तौर पर हम इस बारे में ग़ैर-मुस्लिम हज़रात के कुछ विचार बयान करना चाहते हैं ताकि यह मालूम हो सके कि हमारी कोशिशों को इस हल्क़े में किस निगाह से देखा जाता है और हमारे साथियों (रुफ़क़ा) के बारे में क्या विचार पाए जाते हैं। ग़ैर-मुस्लिमों में से एक अच्छी ख़ासी तादाद हमारे बारे में एक अच्छी राय रखती है। कांग्रेस के पूर्व अध्यक्ष पट्टा भाई सीता रमैया ने अपने विचार इस प्रकार प्रकट किए हैं –

> Such books are bound to Popularise Islam. Its Political and Social Structures are more or less a sealed book to Hindus.
>
> यानी "इस तरह की किताबें इस्लाम को ज़रूर सर्वप्रिय बनाएँगी। इस्लामी हुकूमत की व्यवस्था और इसका सामाजिक ढाँचा हिन्दुओं के लिए लगभग एक सील बन्द किताब है।"

इसी प्रकार बरवाडीह (बिहार) में विचार प्रकट करते हुए कहा गया कि यह चीज़ तो हक़ (सत्य) है लेकिन अत्यन्त खेद है कि मुसलमान तो इस पर अमल नहीं करते और हमारी नज़र से यह ओझल है।

मुम्बई के गवर्नर सर महराज सिंह ने अपने क़लम से शुक्रिए का ख़त

लिखा और यह लिखा कि इन किताबों को मैं दिलचस्पी के साथ पढ़ूँगा।

(1) फ़िरोज़पुर में कुछ ग़ैर-मुस्लिमों ने भरे मजमे में कहा कि ये ऐसी सच्ची और क़ीमती बातें हैं कि इससे अधिक सच्ची और क़ीमती कोई बात हो ही नहीं सकती।

(2) अकोला बरार में कुछ ग़ैर-मुस्लिमों ने कहा कि जमाअते-इस्लामी जो उसूल पेश कर रही है उन से दुनिया की समस्याओं का समाधान हो सकता है।

(3) सीधा सुल्तानपुर ज़िला आज़मगढ़ में ग़ैर-मुस्लिमों ने स्वीकार करते हुए कहा कि यह दावत ठीक है। अगर इन उसूलों पर काम किया जाए तो दुनिया में शान्ति स्थापित हो सकती है।

(4) मेरठ के कुछ ग़ैर-मुस्लिम दोस्त न केवल दावत और उसके काम करने के तरीक़े से सहमत हैं बल्कि जमाअत के लोगों से लगाव रखते हैं, उनकी इज़्ज़त करते हैं और अपने व्यवहार में सुधार की कोशिश करते हैं।

(5) मुम्बई में ग़ैर-मुस्लिमों ने कहा कि अगर पहले से यहाँ इस व्यवस्था को पेश किया गया होता तो न हिन्दू-मुस्लिम क़शमकश होती और न ही यह ग़रीबी बाक़ी रहती।

(6) पटना में जिन लोगों ने इस्लामी साहित्य को देखा सभी ने उसकी तारीफ़ की और कुछ ने अपने सह-धर्मियों तथा पत्नियों को भी पढ़वाया।

(7) आज़मगढ़ में कुछ ग़ैर-मुस्लिमों ने कहा कि इस्लाम अगर यही है तो हम उसके समर्थक हैं।

(8) मुज़फ़्फ़रपुर बिहार के ग़ैर-मुस्लिम शौक़ से हमारी किताबों का अध्ययन करने हैं और कहते हैं कि अगर इस्लाम यही है तो इसका कोई न्याय प्रिय व्यक्ति विरोध नहीं कर सकता।

(9) करीम नगर में कुछ ग़ैर-मुस्लिमों में इस्लाम के बारे में अच्छे विचारों के साथ सोचने व समझने का रुझान पैदा हो गया है।

(10) मद्रास (चैन्नई) के एक ग़ैर-मुस्लिम डॉक्टर ने दावत को सुनकर कहा : "ये पैग़म्बरों के शब्द मालूम हो रहे हैं। बुद्ध और ईसा मसीह जैसे लोगों की तबलीग़ मालूम हो रही है और मेरा दिल गवाही दे रहा है कि जो कुछ सुनाया जा रहा है बिलकुल सच है। अत: इस दावत को प्रत्येक नगर में तमाम इनसानों तक पहुँचाने में किसी भी प्रकार की कोई लापरवाही नहीं होनी चाहिए। हर ज़माने में इस प्रकार की दावत देनेवालों को पहले ही क़दम पर तकलीफ़ों का सामना करना पड़ा है। मैं भी इस पर विचार करूँगा और ज़रूर कोशिश करूँगा।"

(11) एक और ग़ैर-मुस्लिम डॉक्टर ने दावत के उसूलों से सहमति प्रकट करते हुए कहा, "यह तो बहुत ही अच्छी चीज़ है।"

(12) लार में हमारी किताबों का अध्ययन करने के बाद कुछ ग़ैर-मुस्लिमों ने इसकी बहुत तारीफ़ की और कुछ ने ख़ुद पढ़ने के बाद दूसरों को भी पढ़ने के लिए दिया। एक साहब ने अध्ययन के बाद कहा कि बात तो बहुत उचित है मगर आज-कल इस रास्ते पर चलता कौन है? आज-कल के युग में इस रास्ते पर चलना कठिन है।

(13) फैज़ाबाद में कुछ ग़ैर-मुस्लिमों से सम्पर्क और बातचीत के ज़रिए से मालूम होता है कि वे हमारी दावत और हमारी कोशिशों को अच्छी निगाहों से देखते हैं और मुसलमानों की सारी जमाअतों में से सिर्फ़ हमारी जमाअत से हमदर्दी रखते हैं।

(14) मैसूर में एक ग़ैर-मुस्लिाम ने हमारी किताबों का अध्ययन करने के बाद इस काम को सराहा और कहा कि अगर अमली रूप में ये चीज़ें अपना लीएँ जाए तो दिलों में सफ़ाई और ज़िन्दगी में ख़ुशवारी पैदा होगी।

(15) बरसिया में कुछ ग़ैर-मुस्लिमों का कहना है कि अगर इन सिद्धान्तों पर सोसायटी (समाज) की बुनियाद रख दी जाए तो दुनिया में शान्ति स्थापित हो सकती है।

(16) जयपुर में कहा गया कि "यह अपना लेने की चीज़ है। इनसानियत

को अपनी ताक़त इसी के प्रचार-प्रसार में लगा देनी चाहिए। जयपुर में एक स्थान पर जातिवाद के कारण आरम्भ में कुछ विरोध हुआ लेकिन रुफ़क़ा की बातों और उनके अमल में समानता होने की वजह से विरोध जल्दी ख़त्म हो गया।

(17) सवाई माधोपुर में ग़ैर-मुस्लिमों ने दावत को हक़ बताया और कहा कि इनसानी दुखों का यही इलाज है।

हज़रात! हमारी कोशिशों के बारे में ग़ैर-मुस्लिमों के ये ख़यालात इस बात का तो पता देते हैं कि हमारी दावत को उनके बुद्धिजीवी वर्ग में पसन्द किया जा रहा है। लेकिन जब तक ग़ैर-मुस्लिमों के एक बड़े वर्ग की ग़लतफ़हमियाँ ख़ुद मुसलमानों और इस्लाम के बारे में दूर न हो जाएँ और उनके सामने इस्लामी ज़िन्दगी का नमूना पेश करनेवाले लोगों की एक बड़ी तादाद चलते-फिरते दिखाई न देने लगे, तब तक लोगों की समझ में यह बात आनी मुश्किल है कि ख़ुदा की बन्दगी और हिदायत से दुनिया की और ख़ुद हमारे देश की जटिल समस्याओं का किस तरह पूरे तौर पर और आसानी के साथ समाधान हो सकता है। इस्लाम को किताबों से समझाने के बजाए उसकी चलती-फिरती, जीती-जागती और ज़िन्दा तस्वीर लोगों के सामने पेश करने की ज़रूरत है और यह उसी वक़्त हो सकता है जबकि भारत में एक ऐसा आदर्श समाज स्थापित हो जाए जो अपनी अस्ल में और दूसरी बातों में इस्लाम की नुमाइंदगी करता हो। आइए अब उन कोशिशों पर भी एक नज़र डाल लीजिए जो इस्लामी ढंग का समाज क़ायम करने के सिलसिले में हमारे देश में चल रही हैं।

आदर्श समाज क़ायम करने की कोशिश

हमारे प्रोग्राम का दूसरा भाग जो हमारे काम का एक बहुत अहम हिस्सा है, यह है कि ख़ुद मुसलमानों के अन्दर इस्लाम की सही समझ पैदा की जाए और उनकी अमली ज़िन्दगी को उन अक़ीदों की बुनियाद पर सँवारा जाए जिनको उन्होंने सिर्फ़ विरासत के तौर पर और बग़ैर समझे-बूझे क़बूल कर लिया है। इस तरह जब इस्लाम की नुमाइंदगी ख़ुद मुसलमानों की एक बड़ी

तादाद करने लगेगी तो उसूल व किरदार का आकर्षण इस कोशिश को बड़ी हद तक आसान बना देगा जो हमें अपने देश में करनी है। इस बारे में हमें तीन बातों की तरफ़ ध्यान देना था।

अव्वल यह कि मुसलमानों में व्यापक स्तर पर इस्लाम की तबलीग़ (प्रचार-प्रसार) किया जाए।

दूसरे उनमें दीन की ज़बानी व अमली तबलीग़ का जज़्बा पैदा किया जाए।

तीसरे मुसलमानों का अख़लाक़ी, तहज़ीबी (सांस्कृतिक) और समाजी सुधार किया जाए।

इन तीनों बातों को एक बेहतर समाज के क़ायम करने में जो बुनियादी अहमियत हासिल है सब उसे अच्छी तरह जानते हैं। लेकिन उनको काम में लाने के लिए जिस सुकून व शान्ति-पूर्ण माहौल की ज़रूरत है वह हिन्दुस्तान के बँटवारे के बाद से भारत में न तो इस तहरीक की दावत देनेवालों को नसीब हो सका और न उन्हीं लोगों को मिल सका जिनके सामने इस प्रोग्राम को पेश करना था। यह तो सब ही जानते हैं कि ग़ैर-मुस्लिमों का संजीदा व समझदार वर्ग इस बात को मानता है कि बँटवारे के बाद भारत में मुसलमान न केवल बेगुनाह बल्कि मज़लूम भी था और यहाँ के हालात उसके लिए बहुत नाज़ुक होते चले गए। इन हालात में मुसलमानों पर डर और ख़ौफ़ छा जाना एक क़ुदरती (स्वाभाविक) बात थी। और इसका कुछ-न-कुछ असर हमारे रुफ़क़ा पर भी पड़ा। नए हालात की वजह से पैदा होने वाली समस्याओं ने बहुत ज़्यादा अहमियत हासिल कर ली थी और दंगों के एक लम्बे सिलसिले के कारण हमारे काम में बहुत-सी रुकावटें पैदा हो गईं, यहाँ तक कि इन ही हालात की वजह से पिछले साल हमें अपना सालाना कुल हिन्द इजतिमा भी स्थगित करना पड़ा। ऐसे मौक़ों पर जो काम हमें करने पड़े वे इस तरह हैं —

(1) यह कि हिजरत, एक आबादी को दूसरी जगह पहुँचाने और आबादियों की अदला-बदली करने आदि के बारे में ऐसे विचार मुसलमानों में

फैलाए जाएँ जिन से उनमें सब्र और जमाव की शान पैदा हो सके।

(2) यह कि उनकी व्याकुलता व बेचैनी को दूर किया जाए और उनके डर और घबराहट को कम करने की कोशिश की जाए।

(3) यह कि अपने रुफ़क़ा को उनका फ़र्ज़ याद दिलाकर उनमें मज़बूती और जमाव पैदा करने की कोशिश की जाए।

इन सब बातों के सिलसिले में यह मुनासिब मालूम होता है कि अमीर जमाअते-इस्लामी हिन्द के बयानात के कुछ ख़ास हिस्से सामने रखे जाएँ जिनसे आपको सही अन्दाज़ा हो सकेगा कि हमने क्या कोशिशें की हैं। एक बयान में अमीरे-जमाअत ने फ़रमाया —

''सबसे पहली बात तो मुझे यह कहनी है कि जो कुछ हो रहा है यह हक़ीक़त में जातिवाद और देश-भक्ति के उन ग़लत ख़यालात का नतीजा है जिसमें देशवासी अब तक मुब्तिला (ग्रस्त) हैं और इन हालात का वास्तविक इलाज वह हक़ की दावत ही है जो जमाअते-इस्लामी मुसलमानों और ग़ैर-मुस्लिमों के सामने पेश करती चली आ रही है। यानी ख़ालिस ख़ुदा परस्ती की बुनियादों पर लोगों को एक मत करना और इनसानी एकता को याद दिलाकर हक़ीक़ी इनसानियत पर उनको तैयार करना। और मुझे तो यक़ीन है कि अगर हमारे साथियों ने अपने नज़रियात व ख़यालात के प्रचार-प्रसार में पूरी तरह हिस्सा लिया होता तो हिन्दुस्तान के हालात बहुत हद तक इससे अलग होते और हमें ये दुखद दृश्य देखने न पड़ते। हमारे साथी जहाँ भी रहतें हों, उनका फ़र्ज़ है कि वे इस मौक़े पर अपने काम की रफ़्तार तेज़ कर दें और बिना किसी भेदभाव के प्रत्येक हिन्दु मुस्लिम के द्वार पर पहुँचें और अपना सन्देश सुनाकर उन को अम्नपसन्दी और इनसानियत पर तैयार करें और जहाँ उनकी कोशिशों के बावजूद दंगे हो जाएँ वहाँ अपने सन्देश को सुनाने के साथ-साथ पेश आनेवाली मुसीबतों में परेशान हाल लोगों की मदद करें और इस काम में जो भी ख़तरे पेश आते हों उनको हंसी-खुशी बरदाश्त करें। वास्तव में संकल्प का मार्ग यही है। हाँ अगर किसी जगह के हालात इतने संवेदनशील हो जाएँ कि वहाँ किसी प्रकार के

काम का मौक़ा ही बाक़ी न रहे तो इस हाल में अपनी जान व माल और इज़्ज़त की हिफ़ाज़त की कोई और तदबीर अपनाएँ और इस हाल में बेहतर है कि किसी महफ़ूज़ ज़गह पर चले जाएँ। किन्तु इस तरह के मौक़े पर भी उनका फ़र्ज़ है कि वे अकेले अपनी हिफ़ाज़त की चिन्ता करने के बजाए उन सब लोगों की हिफ़ाज़त का इन्तिज़ाम करें जो ख़ुद अपनी हिफ़ाज़त करने से मजबूर हों।''

फिर आपने फ़रमाया—

> ''दूसरी बात इस बारे में यह कहनी है कि इस मौक़े पर मुसलमानों में एक ख़ास तरह का डर और मायूसी छा गई है जिसके कारण लोग भाग-भाग कर पाकिस्तान जा रहे हैं या जाने की फ़िक्र में हैं। ऐसे तमाम लोगों से सीधे सम्पर्क व सम्बन्ध बनाइए और उनको अल्लाह पर भरोसा रखने की सलाह दीजिए। एक मुसलमान को हर हाल में ख़ुदा पर भरोसा रखना चाहिए और एक पल के लिए भी अपने भविष्य की तरफ़ से निराश नहीं होना चाहिए। मुसलमानों के मौजूदा डर और मायूसी का अगर कोई इलाज है तो यही है, वरना कौन कह सकता है कि हमारे लिए कोई जगह यक़ीनी तौर पर महफ़ूज़ पनाहगाह हो सकती है। वास्तविक सुरक्षा सिर्फ़ अल्लाह की है और जब तक उस पर भरोसा नहीं किया जाएगा सुरक्षा की हर तदबीर अपनाकर भी आदमी इसी डर में फंसा रहेगा। इस वक़्त हम जिन हालात से गुज़र रहे हैं उनमें अल्लाह से अपने सम्बन्ध को अधिक-से-अधिक मज़बूत बनाने और उसकी तरफ़ पलटने की ज़रूरत है। इसी से हमारे अन्दर भरोसा और सुकून पैदा हो सकता है और यही हमारे लिए हक़ीक़ी ताक़त है, ख़ुद भी इस तरफ़ ध्यान दिया जाए और दूसरे मुसलमानों को भी इसकी तरफ़ दावत दी जाए।

तीसरी बात इस बारे में यह कहनी है कि आजकल आबादियों के तबादले की जो बात हर जगह छिड़ गई है, उससे आपको असर लेने की

ज़रूरत नहीं। अव्वल तो यह बात ही यक़ीन के क़ाबिल नहीं है कि हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के लीडर इतने बदहवास हो सकते हैं कि वे मौजूदा समस्याओं को किसी और तरह हल करने के बजाए आबादियों की तब्दीली के ज़रिए हल करने की कोशिश करें। हिन्दुस्तान के लगभग चार करोड़ मुसलमानों का पाकिस्तान चले जाना और उन्हें वहाँ जगह देना और इसी तरह पाकिस्तान के ग़ैर-मुस्लिमों को, जिनकी तादाद भी बहुत ज़्यादा है, हिन्दुस्तान ले आकर बसाना कोई आसान काम नहीं है। ख़ुद शरणार्थी जो पहले से दोनों देशों में मौजूद हैं, अभी उनके लिए कोई ठिकाना मुहैया नहीं किया जा सका है और उसकी वजह से दोनों देशों को तरह-तरह की कठिनाइयाँ हो रही हैं। फिर वे नए शरणार्थियों को बुलाने की हिम्मत किस तरह कर सकते हैं। फिर भी अगर दोनों देशों की जनता ही नहीं बल्कि ख़ास लोग और बुद्धि व अक़्ल और समझ-बूझ रखनेवाले लोग भी इस समय न सही आगे चलकर इसी तरीक़ेकार को ज़्यादा मुनासिब और बेहतर समझने लगें तो भी अव्वल तो यह उम्मीद रखनी चाहिए कि अगर ख़ुदा न करे इसकी नौबत आई तो उसकी सूरत वह नहीं होगी जो ख़ुद इख़्तियारी भगदड़ जैसे मौक़ों पर होती है कि इनसान को जान सलामत ले जाना ही मुश्किल होता है, बल्कि वह किसी सुनियोजित स्कीम ही के आधार पर होगी और निस्सन्देह इसमें वे ख़तरे पेश नहीं आएँगे जिनके डर से लोग काँप रहे हैं।"

इसके बाद अमीरे-जमाअत ने बयान जारी रखते हुए फ़रमाया:-

"और दूसरी बात यह याद रखिए कि हमें आनेवाले वक़्त के बारे में इस तरह के अनुमानों और अटकलों में अपना वक़्त बरबाद करना नहीं चाहिए। आगे का हाल अल्लाह ही बेहतर जानता है। हमें तो अपनी जगह यह तय करके काम करना है कि जिस सरज़मीन (भू-भाग) में हम पैदा हुए हैं, वही हमारे काम का असली मैदान है और उसको हम अपनी ख़ुशी से सिर्फ़ उसी वक़्त छोड़ सकते हैं जब हम उसमें काम करने को वक़्त की बरबादी समझने पर मजबूर हो जाएँ या हालात ही इस पर मजबूर कर दें।

लेकिन जब तक यह हालत पेश नहीं आती है और हमें यही उम्मीद रखनी चाहिए कि अगर हम अपने काम को ठीक तरीक़े से पूरा करें तो यह स्थिति हरगिज़ पेश नहीं आएगी, उस वक़्त तक तो हमें हर लम्हा क़ीमती समझना चाहिए और पूरी लगन के साथ अपना काम करते रहना चाहिए।"

(अल इनसाफ़ - 28 मार्च 1950 ई.)

एक दूसरे बयान में आपने फ़रमाया –

"जहाँ तक हमारे रुफ़क़ा का ताल्लुक़ है उनको बताया जा चुका है कि उन्हें मौजूदा हालात से बिलकुल मुतास्सिर नहीं होना चाहिए। हमारे लिए यह तयशुदा बात है कि हम ज़मीन के जिस भाग में पैदा हुए हैं, उसे उस समय तक नहीं छोड़ सकते जब तक कि हमें अपनी कोशिशों के नतीजों से मायूसी न हो जाए, या हालात ही ऐसे न पैदा हो जाएँ कि काम करना हमारे लिए मुश्किल हो जाए। हमें एक फ़ितरी हद के अन्दर सगे सम्बन्धी भी प्यारे हैं, घर-बार से भी प्यार है, ख़ानदान और पड़ोस से भी लगाव है, वतन और देश से भी लगाव है, लेकिन हमारा असली ताल्लुक़ उस 'मक़सद' से है जिसे हमने अपनाया है यानी अल्लाह के दीन की पूरी इताअत और उसका प्रचार-प्रसार। इसलिए जब तक किसी दर्जे में भी हम इस मक़सद पर क़ायम रह सकें, हमारे जाने का कोई सवाल पैदा नहीं होता। लेकिन अगर ख़ुदा न करे इसका इमकान बाक़ी न रहे तो फिर और कोई कशिश हमें यहाँ नहीं रोक सकती, न सगे-सम्बन्धी, और न रिश्ते-नाते, न पड़ोस और ख़ानदान के लोग और न जायदाद व धन-दौलत। और उस सूरत में हमारा रवैया इनशा अल्लाह उन लोगों से भिन्न होगा जो इस समय समझते तो यह हैं कि उन के लिए यहाँ रहना सही नहीं है लेकिन फिर भी माल-दौलत की मुहब्बत उनके क़दम रोके हुए है, या उसकी मुहब्बत में इतने अधिक मस्त हैं कि उसकी

ख़ातिर वे सब कुछ करने के लिए तैयार हैं जिसका करना एक मुसलमान होने के नाते उनके लिए जाइज़ नहीं और जहाँ तक हमारे दृष्टिकोण का सम्बन्ध है हम अभी तक यह नहीं समझ सके हैं कि क्या हमारे यहाँ से जाने की वे शर्तें पूरी हो चुकीं हैं जो अल्लाह के क़ानून ने हमारे लिए तय की हैं और यह न समझिए कि हमारा यह विचार हालात को न जानने का नतीजा है। दंगे वग़ैरा हमारे सामने भी हैं और आनेवाले वक़्त की जिन सम्भावनाओं से लोग भयभीत हो रहे हैं, उन पर हमने भी ग़ौर किया है लेकिन इसके बावजूद हमारी राय यही है जो ऊपर हम बयान कर चुके हैं।"

फिर अमीरे-जमाअत ने फ़रमाया—

"इस सिलसिले में पहली बात तो यह है जो पहले भी कही जा चुकी है कि इस वक़्त जो कुछ भी हो रहा है हम नहीं समझते कि यह हमेशा ऐसी ही रहनेवाली हालत है। इनसान इस ज़माने में कितना ही क्यों न बिगड़ गया हो, हम उसके उस पैदाइशी मिज़ाज से, जिसकी रचना भलाई से की गई है, निराश नहीं हैं। हम यक़ीन रखते हैं कि यह क़त्ल व लूट-मार और दंगे बेशक रुक कर रहेंगे अगर यह मान भी लिया जाए कि जो कुछ हो रहा है वह सिर्फ़ बुरी आदतवाले और चरित्रहीन लोगों की बुरी फ़ितरत और बुरे कामों का ही नतीजा नहीं बल्कि इसके पीछे कोई बाक़ायदा मक़सद काम कर रहा है और वह किसी दर्जे में किसी बड़ी सामूहिक ख़राबी का नतीजा है तो भी हम यक़ीन रखते हैं कि जिस तरह लोगों के अन्दर बिगाड़ होता है और फिर वह अपने ज़मीर (अन्तरात्मा) को मलामत करने और कोसने से दोबार संभल जाते हैं। इसी प्रकार समाज और समूह में भी ख़राबियाँ दिखाई देती हैं और फिर पूरे जन-समूह का नफ़्से-लव्वामा (अन्तरात्मा) उसको सीधे रास्ते पर ले आता है। इसलिए क़ौमों

क़ी तारीख़ में इसकी मिसालें और सुबूत मौजूद हैं। इसलिए हमें यक़ीन रखना चाहिए कि यह जो कुछ हो रहा है यह एक हंगामी हालत है और यह किसी-न-किसी दिन ख़त्म हो कर रहेगी। हो सकता है कि अभी इसी तरह के हंगामी दौर आगे और भी पेश आएँ और आसार बता रहे हैं कि शायद अभी हिन्दुस्तान मुद्दतों इस तरह के अस्थाई हंगामी की हालत में फँसा रहेगा। लेकिन फिर भी यह हालत इनसानी फ़ितरत व स्वभाव से मेल नहीं खाती है इसलिए वह यक़ीनन ख़त्म होकर रहेगी।''

(अल इनसाफ़ - 13 अप्रैल 1950 ई.)

हज़रात! इन बयानों से यह वाज़ेह हो गया होगा कि इस नाज़ुक दौर में मुसलमानों को हम किस तरह के रवैये की दावत दे रहे थे और किस तरह बहुसंख्यकों के 'हौवे' के मुक़ाबले में उन में अल्लाह पर एतमाद और भरोसे की शान पैदा करना चाहते थे। लेकिन मुसलमान के लिए बहुसंख्यकों का सुलूक ही परेशानी का सबब नहीं था बल्कि शासन व्यवस्था के बदलाव के साथ वह हुकूमत से भी संदिग्ध और भयभीत हो रहा था। इस की वजह कुछ तो यह थी कि हुकूमत के बहुत से अधिकारी व कर्मचारी जो बहरहाल इसी समाज का एक भाग हैं, जिस की मुसलमान से क़ौमी जंग छिड़ी हुई थी इस दौर में ख़ुद उच्च-अधिकारी और मन्त्रियों वग़ैरा के बरख़िलाफ़ हुकूमत की पॉलिसी (Policy) पर सही तौर पर अमल नहीं कर रहे थे और मुसलमानों को बेवजह परेशान कर रहे थे। फिर भी ये भयभीत मुसलमान हुकूमत के ख़िलाफ़ कुछ बेबुनियाद शक व सन्देह भी रखते थे और हुकूमत की तरफ़ से कुछ बदगुमानियों के शिकार थे। अगर उन बदगुमानियों को और हवा दी जाती या उन्हें ज्यों-का-त्यों बढ़ने और फलने-फूलने का मौक़ा दिया जाता तो ख़तरा था कि मुसलमानों की दिमाग़ी परेशानियाँ और बढ़ जातीं, जिस का असर हमारे दावती काम पर भी पड़ता। इसलिए ज़रूरी था कि हम उन बदगुमानियों की हक़ीक़त को साफ़ बयान कर देते। चुनाँचे उन सुझावों के सिवा जो समय समय पर लोगों को इस बारे में दिए जाते रहे जमाअत के

साथियों को ख़िताब करते हुए अमीरे-जमाअत ने एक बयान में फ़रमाया–

"हमें मौजूदा सरकार की तरफ़ से भी, जो वास्तव में सामाजिक हालत को ज़ाहिर करती है, कोई बात ऐसी नहीं मालूम हो सकी है जिससे यह बदगुमानी की जा सके कि इस फ़ितने व फ़साद के फैलने में ख़ुद उसकी कोई भूमिका (Role) है या उसको वह बाक़ी रखना चाहती है, बल्कि उसके विपरीत कुछ दिन पहले की घटनाओं और सुधार व बनाव की कोशिशें यह ज़ाहिर करती हैं कि इन हालात को ख़त्म करने की चाहत उसके ज़िम्मेदार लोगों में मौजूद है। वर्तमान शासक अगर आपके लिए नहीं तो ख़ुद अपने भले के लिए इस तरह के हालात न जान-बूझकर पैदा होने दे सकते हैं और न उनको बाक़ी रखने के ख़ाहिशमंद हो सकते हैं। यह और बात है कि उनके बरख़िलाफ़ ऐसे हालात पैदा हो जाएँ जो उनके क़ाबू से बाहर हों, लेकिन अगर वे ऐसी ही अक़्ल व समझ रखते हैं कि लोगों की जान-माल सुरक्षित न रख सकें तो आप विश्वास रखिए कि वे आपकी नहीं ख़ुद अपनी हलाकत का सामान कर रहे हैं। इस तरह की हालत पैदा होने के जो नतीजे हो सकते हैं उनकी भरपाई आसान काम नहीं है और बातों को छोड़कर आप को इस कायनात के पैदा करनेवाले के इनसाफ़ पर भरोसा करना चाहिए जो उसके रसूल की ज़बान में आम मख़लूक़ को अपनी "अयाल" (कुटुम्ब, परिवार) कहता है, अगर आप वास्तव में मुसलमान हैं तो आप उसकी "हिज़्ब" (जमाअत) और वह आप का "वली" (सरपरस्त) है। दुनिया का हक़ीक़ी कारसाज़ अल्लाह तआला ही है और वह अन्धा बहरा नहीं है, उसमें सुनने तथा जानने के गुण हैं और क़ौमों के उत्थान-पतन की पिछली घटनाएँ इस की गवाह हैं और ख़ुदा न करे इनसान के मिज़ाज (स्वभाव) और मौजूदा शासकों के सम्बन्ध में मैं जो कुछ कह रहा हूँ यह सिर्फ़ ख़ुशगुमानी है और बात वही सही है जो इस वक़्त लोगों के दिमाग़ों पर नाउम्मीदी के छा जाने की वजह से

हावी हो गई है' यानी यह कि भविष्य मुसलमानों के लिए अन्धकारमय है, तो भी मैं अपने साथियों से यही ख़ाहिश रखता हूँ कि इस हालत के सुधार की जो ज़िम्मेदारी उन पर आती है उसको पूरा करने से पहले निराश न हो जाएँ।''

(अल इनसाफ़ - 14 अप्रैल 1950 ई.)

फिर इसी तरह एक सवाल के जवाब में अमीरे-जमाअत ने फ़रमाया—

''हमारी निगाह में हिन्दुस्तान के मुसलमानों के लिए इस वक़्त जो सही निज़ामे-अमल हो सकता है वह यही है जो ऊपर मुख़्तसर तौर पर बता दिया गया है। अगर आप उसको सही समझते हों तो उसके मुताबिक़ अपनी हद तक आपको काम शुरू कर देना चाहिए। रही यह बात कि सरकार इस वक़्त मुसलमानों से बदगुमान है और वे जो कुछ भी करेंगे शक की नज़र से देखा जाएगा और उसकी वजह से वे बाग़ी (देश-द्रोही) समझ लिए जाएँगे, तो अव्वल तो मैं सरकार के बारे में इतनी बदगुमानी को ठीक नहीं समझता कि वह आप के कामों की कैफ़ियत को बिलकुल नज़र अन्दाज़ करके सिर्फ़ मुसलमान होने ही की वजह से आप को ''बाग़ी'' (देश-द्रोही) घोषित कर दे। जिस तरह के काम का आप को सुझाव दिया जा रहा है वह काम तो ऐसा है कि अगर सरकार समझबूझ से काम ले तो उसे इस तरह के काम करनेवालों का स्वागत करना चाहिए, वरना कम-से-कम इस में रुकावट डालने से तो हर हाल में उसे बचना चाहिए और हमें उम्मीद भी रखनी चाहिए कि वह ऐसा ही करेगी। ज़ाहिर है कि आप शासन में कोई बिगाड़ पैदा नहीं कर रहे हैं और न साम्प्रदायिक या जातिवाद की जंग का कोई प्रोपैगंडा करना चाहते हैं। आप तो जो कुछ चाहते हैं उसका ख़ुलासा सिर्फ़ यह है कि आप ख़ुद भी इस्लाम की जीवन-व्यवस्था के दृष्टिकोण के मुताबिक़ ज़िन्दगी गुज़ारने की इच्छा रखते हैं और ख़ुदा की दूसरी मख़लूक़ को भी ख़ुदा की दी हुई इस नेमत में शरीक करना चाहते

हैं। फिर सरकार ने अपनी राय और विचार की आज़ादी दी है और उसके मुताबिक़ अपने विचार प्रकट करने के अधिकार को उसूली तौर पर क़बूल कर लिया है और इसी के मुताबिक़ ऐसी जमाअतों को भी यह अधिकार दे रखा है, जिनके सिद्धान्त व दृष्टिकोण झगड़ों व दंगों का कारण बन सकते हैं तो वह इस अधिकार से हम को ही क्यों वंचित रखेगी। बहरहाल हमें सरकार के बारे में बेवजह बदगुमान होने का कोई हक़ नहीं है। लेकिन अगर ख़ुदा न करे यह बदगुमानी सही हो या हक़ीक़त में वही कुछ होने लगे जिसकी आशंका जताई जाती है तो सवाल यह है कि क्या फिर ऐसी सूरत में इस्लाम का नाम लेना छोड़ देना चाहिए? मैं नहीं समझता कि कोई मुसलमान जो मुसलमान बनकर ज़िन्दा रहना चाहता है और इस्लाम पर ही अपना ख़ातिमा पसन्द करता है वह इस सवाल का जवाब 'हाँ' में दे सकता है।''

(अल इनसाफ़ - 20 दिसम्बर 1948 ई.)

अल्लाह का शुक्र है कि इस ढंग से ख़यालात पेश करने से न सिर्फ़ हमारी जमाअत के रुफ़क़ा में इस्तिक़ामत (दृढ़ता) पैदा हो गई बल्कि हमारे रुफ़क़ा ने दूसरे मुसलमानों को भी इन विचारों से प्रभावित किया। अलग-अलग और इजतिमाई मुलाक़ातों और ख़िताबे-आम के ज़रिए तथा पोस्टर और किताबचों (पुस्तिकाओं) के द्वारा जो बड़ी संख्या में क़ीमत पर और मुफ़्त प्रकाशित किए गए। मुसलमानों के डर व मायूसी को दूर करने, अल्लाह पर भरोसा करने और अपने अमल व अक़ीदे में सुधार करके अपनी-अपनी जगह पर जमे रहने का सुझाव दिया गया और अल्लाह का शुक्र है कि उसके अच्छे नतीजे रहे। हल्क़ा बिहार के क़य्यिमे-जमाअत लिखते हैं –

''इस कोशिश के इस हल्क़े में नुमायाँ असरात महसूस किए गए। बिहार के अरकान और हमदर्दों और जमाअते-इस्लामी हिन्द से प्रभावित लोगों के बारे में तो यक़ीन के साथ कहा जा सकता है कि इस ज़माने में आम तौर पर वे पूरे इत्मीनान व यक़ीन के साथ

अपने-अपने मक़ामात पर जमे रहे और अपनी दावत को पेश करते रहे, और उन्होंने अपने असर से बहुत-से ख़ानदानों को परेशान होने और बदहवासी में अपने माल व जायदादों को छोड़ कर भागने और बरबाद होने से बचाए रखा।"

लगभग इसी तरह के असरात दूसरी जगहों पर भी देखने को मिले जहाँ हमारे रुफ़क़ा में एक तरफ़ तो मुसलमानों के ख़ौफ़ व मायूसी को अल्लाह पर तवक्कुल करने और उसी पर भरोसा करने के गुणों से बदलने की कोशिश की और दूसरी तरफ़ उन्हें दावत दी कि वे अपने समाज को सही इस्लामी उसूलों पर क़ायम करने की कोशिश करें। एक नेक और अच्छे समाज की स्थापना चूँकि हमारे प्रोग्राम का एक अहम हिस्सा है इसलिए इस बारे में जो कुछ हम करना चाहते हैं उसको अपनी ख़ाहिश के मुताबिक़ अंजाम देने के लिए ज़रूरी है कि हम मुस्लिम-समाज का पूरे तरीक़े से जाइज़ा लें और चूँकि शहरी और देहाती आबादी में इल्मी सलाहियत, आम-मालूमात, आपसी मेल-मिलाप और हालात की जानकारी तथा दूसरी व्यस्तताओं व दिलचस्पियों की दृष्टि से फ़र्क़ होता है। इसलिए इस लिहाज़ से दोनों के सोचने के अन्दाज़ भी एक दूसरे से अलग होते हैं। ज़ाहिर बात है कि दोनों को एक ही तरीक़े से दावत देना फ़ायदेमन्द नहीं हो सकता। इस लिए हमें दोनों (शहरी एवं देहाती) आबादियों को ध्यान में रखना होता है लेकिन इस बात को कुछ जमाअती हल्क़ों में पूरे तौर पर ध्यान में नहीं रखा जाता। ज़रूरत इस बात की है कि हमारे साथी उसूली तौर पर काम करने की ज़्यादा-से-ज़्यादा कोशिश करें ताकि एक तरफ़ ख़ुद उनकी अपनी तरबियत हो, दूसरी तरफ़ हर पहलू से काम पायदार होता हुआ नज़र आए। बहरहाल इस सिलसिले में अब तक जो काम जिस तरह हो सका है मुख़्तसर तौर पर यहाँ पेश किया जाता है।

शहरी मुसलमानों में दावत व इस्लाह के तरीक़े

शहरी आबादी के शैक्षणिक (तालीमी), सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक, और राजनीतिक हालत का विभिन्न वर्गों के मुताबिक़ तफ़सीली जाइज़ा लिया जाता है।

लोगों को व्यक्तिगत रूप से दावत देना

पढ़े-लिखे गम्भीर और सुलझे हुए लोगों की सूची तैयार करके उन से सम्पर्क करने की कोशिश की जाती है और बातचीत के ज़रिए उनकी अमली सलाहियत, रुझानात, आम दिलचस्पियों और अध्ययन के शौक़ आदि का जाइज़ा लिया जाता है और एक हद तक दावत का परिचय कराने के बाद लिट्रेचर (साहित्य) को पढ़ने के लिए प्रेरित किया जाता है। अध्ययन के बीच हमारे कुछ साथी विचारों के आदान-प्रदान की कोशिश करते हैं ताकि यह मालूम हो सके कि अध्ययन करनेवाले ने हमारे दृष्टिकोण को कहाँ तक समझा है, लेकिन कुछ रुफ़क़ा इस तरफ़ पूरा-पूरा ध्यान नहीं दे पाते हैं जिसका नतीजा मुख़्तलिफ़ शक्लों में ज़ाहिर होता है। कुछ लोग अध्ययन के बाद हमारी किताबों की बहुत तारीफ़ करते हैं लेकिन उनके रवैये से कुछ ऐसा महसूस होता है कि उन्होंने लिट्रेचर को समझकर नहीं पढ़ा है। कुछ की तरफ़ से ऐसे सन्देह और आपत्तियाँ आती हैं जिनका बहुत कुछ जवाब उन्ही किताबों में मौजूद होता है जो उनके अध्ययन में रही हैं। कुछ लोग आधे-अधूरे अध्ययन के बाद ही जोश में आ जाते हैं और दो एक माह तक ग़लत-सलत कार्य करने के बाद ठंडे पड़ने लगते हैं, कुछ लोगों में लिट्रेचर के पूरे अध्ययन के बाद भी कोई हलचल पैदा नहीं होती। ये सारी बातें इसी लिए पैदा होती हैं कि हमारे कुछ रुफ़क़ा अध्ययन के बीच इस बात का जाइज़ा लेने की कम ही कोशिश करते हैं कि अध्ययन करनेवालों ने हक़ीक़त में किस हद तक अध्ययन किया और वे हमारे दृष्टिकोण को किस हद तक समझ चुके हैं। अगर इस बात को पूरी तरह ध्यान में रखा जाए तो हमें उम्मीद है कि इसके फ़ायदों में कई गुना बढ़ोत्तरी हो सकती है।

इजतिमाई दावत

यह तो था हमारी व्यक्तिगत दावत के काम का जाइज़ा, रही इजतिमाई दावत तो उसके असरात के सिलसिले की तफ़सीली जानकारी यह है।

इजतिमाआत

सारी मक़ामी जमाअतों, हमदर्दों के हल्क़ों और जहाँ कहीं भी हमारे मुन्फ़रिद (अकेले) अरकान हैं। उनकी देख-रेख में हफ़्तावारी आम इजतिमाआत होते हैं। इन इजतिमाआत में क़ुरआन व हदीस की तालीम और ख़िताबे-आम या लिट्रेचर के किसी ख़ास हिस्से को सुनाकर मौजूद लोगों तक दावत पहुँचाई जाती है। बड़े शहरों में जहाँ हमारे कारकुनों की तादाद अच्छी ख़ासी है, शहर को कई हल्क़ों में बाँट दिया जाता है और इस तरह के इजतिमाआत हर हल्क़े में किए जाते हैं। इन हफ़्तावारी इजतिमाअत के अलावा आम-तौर पर हर ज़िले में माहाना (महीने में एक बार) इजतिमाआत भी होते हैं। जिनमें ज़िले भर के जमाअत के रुफ़क़ा जमा होते हैं और जिनके प्रोग्राम का एक हिस्सा ख़िताबे-आम भी होता है। कुछ हल्क़ों में पास के कई-कई ज़िलों को मिलाकर सहमाही (तिमाही) इजतिमाआत होते हैं, जिन में ख़िताबे-आम का विशेष रूप से आयोजन होता है। ऐसे इजतिमाआत के लिए अच्छे मुक़र्रिरों (वक्ताओं) से फ़ायदा उठाने की कोशिश की जाती है। हल्क़ों के छःमाही या सालाना इजतिमाआत भी होते हैं और ऐसे मौक़ों पर दावते-आम के असरदार संसाधनों को इस्तेमाल में लाकर लोगों को ख़िताब करने की कोशिश की जाती है। जमाअत की नई तशकील (पुनर्गठन) के बाद से अब तक बहुत से हल्क़ों में विभिन्न प्रकार के कई इजतिमाआत हो चुके हैं।

दर्से-क़ुरआन का प्रोग्राम इन सब ही इजतिमाआत का लाज़िमी हिस्सा रहता है, लेकिन इसकी अहमियत को देखते हुए इसके अलावा बहुत सी जगहों पर रोज़ाना या एक दिन छोड़कर किसी मस्जिद या मस्जिदों में दर्से-क़ुरआन और कुछ जगहों पर दर्से-हदीस होता है जिसके ज़रिए क़ुरआन की दावत को सीधे अवाम तक पहुँचाने की कोशिश की जाती है।

लाइब्रेरियाँ

बहुत-से शहरों में लिट्रेचर के फैलाव के लिए अवामी लाइब्रेरियाँ हमारे जमाअती रुफ़क़ा की निगरानी में क़ायम हैं, जिनमें हमारे लिट्रेचर के अलावा इस्लामी अख़बारात व पत्रिकाएँ और साफ़-सुथरा, इस्लाही व दीनी लिट्रेचर भी रखा जाता है। कुछ लाइब्रेरियों में रोज़ाना अध्ययन करनेवालों की तादाद पचास तथा उससे ज़्यादा होती है।

कुछ जगहों पर लाइब्रेरियों में आम अख़बारात ज़्यादा होते हैं और ज़्यादातर आनेवाले अपनी रुचि उन्हीं समाचार पत्रों तक सीमित रखते हैं। इस अनुभव से लाभ उठाना ज़रूरी है।

लाइब्रेरियों से सम्बन्धित रिकार्ड और रजिस्टरों के रखने पर भी कुछ जगहों पर लापरवाही और लाइब्रेरी की किताबों को पढ़ने के लिए देने के सम्बन्ध में भी रिकार्ड रखने की तरफ़ ज़्यादा ध्यान नहीं दिया गया और दूसरों पर बहुत ज़्यादा भरोसा किया गया है जिसके नतीजे में काम का नुक़सान हुआ है। हालाँकि इन सारी बातों का ख़याल रखा जाता है फिर भी यह बात ज़्यादा ध्यान देने लायक़ है कि लाइब्रेरियों के इंचार्ज रुफ़क़ा को आनेवालों और अध्ययन करनेवालों का जाइज़ा लेकर और उन से बात-चीत के ज़रिए सही राय बनाकर उन्हें तरतीब से अध्ययन कराना चाहिए। लाइब्रेरियों से फ़ायदा उठानेवालों की औसत माहाना तादाद दो हज़ार के क़रीब है।

ख़ास मौक़ों पर बुकस्टाल

उन शहरों में जहाँ हमारे कारकुन अच्छी तादाद में मौजूद हैं, बड़े-बड़े इजतिमाआत, नुमाइशों, मेलों और दूसरे मौक़ों पर स्टाल लगाए जाते हैं। दावत को मुख़्तसर तौर पर पेश करने के लिए कतबे (छोटे पोस्टर) और बोर्ड लगाए जाते हैं। आम तौर पर बुक स्टाल के साथ लाइब्रेरी भी क़ायम की जाती है और हमारे जमाअती साथी विचारों के आदान-प्रदान के मौक़ों की तलाश में भी रहते हैं। इस तरह की कोशिशें नतीजे के लिहाज़ से अहम साबित होती हैं। ऐसे मौक़े पर बिलकुल नए लोग हमारी दावत और लिट्रेचर

से परिचित हुए हैं। हमारे साथियों ने उनके पते हासिल किए और उनसे ताल्लुक़ बढ़ाए और काम आगे चल पड़ा। हैदराबाद, दिल्ली, मेरठ, अलीगढ़, रामपुर, लखनऊ, रुदौली, ज़िला गोण्डा, गोरखपुर और कुछ दूसरी जगहों पर ऐसे कई-कई स्टाल लगाए जा चुके हैं।

स्टडी सर्किल और मुज़ाकराती हल्क़े

कुछ मक़ामात पर हमारे साथी हफ़्तावार या हफ़्ते में दो बार इजतिमाई तौर पर अध्ययन करने और मुज़ाकरे (विचारों) के आदान-प्रदान के लिए ख़ास निशस्तें (बैठकें) करते हैं। इन निशस्तों से अपने दृष्टिकोण को सही तरीक़े से समझाने और उसके तमाम पहलुओं पर पढ़नेवालों को हावी करने का काम लिया जाता है। ज़ाहिर है कि इस काम के बिना हमारा वह काम अधूरा और नामुकम्मल रह जाता जो इजतिमाआत और लाइब्रेरियों के ज़रिए होता है। लिहाज़ा इसकी तरफ़ रुफ़क़ा को ज़्यादा तवज्जोह करने की ज़रूरत है।

तालीमी इदारे

कॉलिजों और यूनिवर्सिटियों में काम की तरफ़ ख़ासी तवज्जोह दी जाती है। हॉस्टल वग़ैरा में जो रुफ़क़ा हैं उनकी अख़लाक़ी और ज़ेहनी तरबियत के लिए इजतिमाई मुताला (सामूहिक अध्ययन) आदि के साधनों को काम में लाया जाता है। इन कारकुनों के ज़रिए हॉस्टलों के छात्रों में व्यक्तिगत सम्पर्क, लिट्रेचर और जमाअती अख़बारों व पत्रिकाओं के प्रसार के अलावा जहाँ मुमकिन होता है हॉस्टल में हफ़्तावारी इजतिमा करने की भी कोशिश की जाती है। इस तरह जो छात्र प्रभावित होते हैं, उनको फिर एक स्थान पर एकत्र करने और उनका मिला-जुला इजतिमा करने का ख़ास इन्तिज़ाम किया जाता है। ख़ासकर साहित्य में रुचि रखनेवाले छात्रों में और आम छात्रों में आम तौर पर इस्लामी साहित्य और इससे सम्बन्धित लिट्रेचर, पत्रिकाओं और इजतिमाआत से भी पूरा-पूरा काम लिया जाता है, कोशिश की जाती है कि बाहर से अच्छे कारकुन ऐसी जगहों पर यदा-कदा पहुँचते

रहा करें। अलीगढ़, दिल्ली, इलाहाबाद, मेरठ, राँची, पटना और हैदराबाद के अहम तालीमी इदारों में इसी तरह काम करने की कोशिशें काफ़ी फ़ायदेमंद साबित हुई हैं। आधुनिक ज्ञान की पाठशालाओं के अलावा दीनी इदारों में भी काम करने की पूरी कोशिश की जा रही है। 'अल-इस्लाह' और 'नदवतुल–उलमा' के अलावा हिन्दुस्तान के दूसरे अहम इदारों में काम की शक्लें पैदा हो रही हैं। हालाँकि रुकावटें और मुश्किलें कुछ ग़लतफ़हमियों और दूसरे कारणों से काफ़ी हैं, लेकिन अब हमें इन इदारों में भी कारकुन मिलने लगे हैं और आगे भी काफ़ी उम्मीद है।

दूसरे शहरों में भी दीनी इदारों में दावत को आम करने की कोशिश बराबर जारी है और वहाँ छात्रों और अध्यापकों में हम से सहमति रखने और अमली सहयोग के लिए आगे बढ़नेवालों की तादाद में बढ़ोत्तरी हो रही है।

मदरसे और छोटे तालीमी इदारे

इस सिलसिले में हमारे सामने यह चीज़ अहमियत के साथ रही है कि मुसलमान बच्चों की दीनी इब्तिदाई तालीम ख़ास-तौर पर और मुसलमान लड़कों की दीनी तालीम आम-तौर पर पूरे समाज में रिवाज पा जाए। इस मक़सद के लिए हमारी अपनी क़ायम की हुई दर्सगाहें और मकातिब तो बहुत कम हैं लेकिन नीचे लिखी सूरतों से इसी मक़सद को हासिल करने की कोशिश की जा रही है।

(अ) मदरसों के नाज़िमों (प्रबन्धकों) और ज़िम्मेदारों से सम्पर्क करके उनको अपने तालीमी दृष्टिकोण से अवगत कराने की कोशिश की जाती है। इस सिलसिले में आमने-सामने की जानेवाली बातचीत और ख़तो-किताबत दोनों तरीक़ों से काम लिया जाता है।

(ब) अध्यापकों से सम्पर्क करके उनको भी अपने तालीमी दृष्टिकोण से अवगत और प्रभावित करने की कोशिश की जाती है।

(स) इसी तरह अपने तालीमी निसाब (पाठ्यक्रम) और पाठय पुस्तकों को जारी कराने की कोशिश की जाती है। हालाँकि सही ढंग से हमने थोड़े ही समय से इस तरफ़ ध्यान दिया है। लेकिन फिर भी हर हल्क़े में ऐसे

मदरसों की तादाद में दिन-प्रतिदिन बढ़ोतरी हो रही है। हमारी इन कोशिशों से कुछ मदरसों का पूरा-पूरा निज़ाम हमारे हवाले कर दिया गया है। कुछ मदरसों के प्रबन्धक और अध्यापक हमारे साथी और हमदर्द हज़रात हैं जो हमारी तालीमी पॉलिसी (Policy) को अपने मदरसों में लागू करने की कोशिश कर रहे हैं। कुछ मकतबों ने हमसे एतिमाद के क़ाबिल और तरबियत पाए हुए अध्यापकों की फ़रमाइश की है जो हमारे तालीमी दृष्टिकोण के मानने वाले हों। अब तक कुल 40 नए मदरसों की शुरुआत हो चुकी है। और 32 पुराने मदरसों से सहयोग किया जा रहा है।

तालीमे-बालिग़ान (प्रौढ़-शिक्षा)

हालाँकि शहरों में हमारे पास काफ़ी कारकुन होते हैं और मज़दूरों और अनपढ़ वर्ग में काम करने का दूर तक पहुँचनेवाला और असरदार तरीक़ा भी यही हो सकता है कि प्रौढ़-शिक्षा (तालीमे-बालिग़ान) का काम ज़्यादा आसानी और अच्छे ढंग से किया जाए। लेकिन हमारे साथियों का इस तरफ़ ध्यान बहुत ही कम रहा है। जिन जगहों पर काम किया गया है वहाँ अच्छे नतीजे निकले हैं। जैसे मालेरकोटला, लखनऊ, इलाहाबाद, हैदराबाद और कोयम्बटूर प्रौढ़-शिक्षा केन्द्रों से लाभ पानेवालों की कुल तादाद पाँच सौ के लगभग है।

औरतें

हमारे रुफ़क़ा व्यक्तिगत रूप में अपनी औरतों की तालीम व तरबियत की तरफ़ तवज्जोह देते हैं और पढ़ी-लिखी औरतें आसान लिट्रेचर और 'अल-हसनात' व 'फ़िरदौस' आदि पत्रिकाओं से भी काम लेती हैं। बहुत-सी जगहों पर औरतों के इजतिमाआत भी किए जाते हैं। कुछ जगहों पर ये इजतिमाआत हफ़्तावार और कुछ जगहों पर महीने में दो बार और कुछ जगह महीने में एक बार होते हैं – इन इजतिमाआत में क़ुरआन का दर्स और लिट्रेचर आदि के ज़रिए से काम लिया जाता है। आम दावत के अलावा उन्हें

ख़ास तौर पर समाजी कामों के बारे में इस्लामी तौर-तरीक़े सिखाए जाते हैं और इतिहास और पैग़म्बरों व सहाबा (रज़ि.) की ज़िन्दगियों से ऐसे नमूने और किरदार भी पेश किए जाते रहते हैं जो उनके लिए मार्गदर्शक बन सकें।

ज़रूरत है औरतों कि तालीम व तरबियत के इन्तिज़ामात जहाँ कहीं भी हो सकें किए जाएँ और उनके प्रोग्राम में उनकी ज़िन्दगी से सम्बन्ध रखनेवाले काम जैसे घरेलू काम, बच्चों की परवरिश आदि में उनकी तरबियत का ख़ास ध्यान रखा जाए। रामपुर, भोपाल, दिल्ली, हैदराबाद, इलाहाबाद, दरभांगा, चित्रपुर (बिहार) में दूसरी जगहों के मुक़ाबले ज़्यादा कोशिशें की गई हैं।

मेहनत-मज़दूरी करनेवाले लोग और उनकी यूनियनें

आम मेहनत-पेशा लोग और उनकी यूनियनों में काम करने की अहमियत बहुत ज़्यादा है। बहुत-सी जगहों पर जहाँ इस तरह के मौक़े हासिल थे और हमारे कारकुन (कार्यकर्ता) मौजूद थे उन्होंने इस सिलसिले में कोशिश की है। कारखाने में आना-जाना शुरू करके सबसे पहले कुछ मज़दूरों और क्लर्कों से सम्बन्ध बनाए गए और वे धीरे-धीरे प्रभावित होते गए, फिर वे ख़ुद काम करने लगे और काम आगे बढ़ने लगा। पहले मज़दूरों पर पूरे का पूरा कम्यूनिज़्म या सोशलिज़्म (समाजवाद) का असर हुआ था। अब जहाँ हमारी दावत पहुँच रही है, उन का ज़ेहन साफ़ हो रहा है और अच्छी ख़ासी तादाद हमारी दावत का असर ले रही है। जिन जगहों पर मज़दूरों में तालीमे-बालिग़ान (प्रौढ़-शिक्षा) का काम किया गया है वहाँ के नतीजे और भी अच्छे रहे हैं। आम तौर पर इस वर्ग में लिट्रेचर के मुक़ाबले बातचीत और तक़रीरों से ज़्यादा काम लिया जाता है।

रज़ा टैक्स्टाइल रामपुर में कुछ काम शुरू किया गया था। जिसके नतीजे में छः लोग जमाअत के क़रीब आ गए, जिनमें से अब तीन लोग जमाअत के रुक्न (सदस्य) हैं और तीन हमदर्द। उनके अलावा कुछ प्रभावित भी हैं। भोपाल में भी मज़दूरों में काम की शुरुआत कर दी गई है। नतीजे में हमारे एक कारकुन (कार्यकर्ता) बन गए हैं और तीन-चार लोग प्रभावित हैं।

पिछले एक साल से हैदराबाद में कपड़े के बड़े कारख़ाने में हमदर्दों का हल्क़ा क़ायम है। इस कारख़ाने के मैनेजर और कई मज़दूर प्रभावित हैं। हफ़्तावार, माहाना (मासिक) और छ:माही इजतिमा में शिरकत करते हैं। एक दूसरी जगह कोयलों की खान के मज़दूरों में भी दावत का काम हो रहा है। यहाँ एक व्यक्ति रुक्न बनने का उम्मीदवार और तीन हमदर्द हैं।

इसके अलावा केरल, टोंक और जमशेदपुर में भी काम हो रहा है। लखनऊ में दस मज़दूरों को तालीमे-बालिग़ान' के ज़रिए क़रीब लाया जा रहा है। मुसलमानों की मज़हबी, तमद्दुनी (सांस्कृतिक) और सामाजिक संगठनों और संस्थाओं से सम्बन्ध बढ़ाने और उनके अन्दर अपनी दावत के फैलाव के मौक़े पैदा करने के बारे में हमारे साथियों ने ज़्यादा ध्यान नहीं दिया है। हालाँकि यह काम अहम है और इसके नतीजे बेहतर और दूर तक पहुँचनेवाले हैं।

देहाती मुसलमानों में दावत व इस्लाह के तरीक़े

देहातों में दावती काम करने से पहले वहाँ के हालात का हर तरह से जाइज़ा लिया जाता है, और फिर कारकुनों की तादाद और उनकी योग्यता के अनुसार मुनासिब लोग चुने जाते हैं। उन लोगों से सम्बन्ध बढ़ाने की कोशिश की जाती है।

देहातों में आम तौर पर बिरादरियों का निज़ाम चलता है। इसलिए देहात की मुसलमान आबादियाँ विभिन्न पेशों के अन्दर बटी होती हैं। बिरादरी के असरदार और समझ-बूझ रखनेवाले लोगों में से एक आदमी की भी इस्लाह हो जाए तो पूरी बिरादरी की इस्लाह के हालात पैदा हो जाते हैं और उन की हिमायत (सहयोग) के बिना बिरादरी के आम लोगों में दावत के क़बूल करने की उम्मीदें कम ही रहती हैं। जहाँ-जहाँ बिरादरियों की सही अहमियत को पहचान कर काम को शुरू किया गया है वहाँ काफ़ी अच्छे नतीजे सामने आने की उम्मीद है। हल्क़ा दिल्ली में ज़िला मेरठ और ज़िला मुज़फ़्फ़रनगर व सहारनपुर में इसी तरह काम शुरू किया गया है।

देहात में चूँकि तालीमी मेयार बहुत नीचा होता है और हमारे लिट्रेचर के समझने की योग्यता इन आबादियों में से बहुत कम लोगों को होती है। लिहाज़ा वहाँ काम के ज़रियों (संसाधनों) में इनफ़िरादी (व्यक्तिगत) मुलाक़ातें, बातचीत और ख़यालात का आदान-प्रदान ही ज़्यादा अहमियत रखते हैं। आसान लिट्रेचर और आसान जमाअती पत्र-पत्रिकाएँ भी पढ़ने के लिए दी जाती हैं। इन व्यक्तिगत साधनों के अलावा ख़िताबे-आम और दर्से-क़ुरआन से भी काम लिया जाता है। इसलिए जहाँ बाक़ायदा जमाअतें मौजूद हैं या फिर मुन्फ़रिद अरकान हैं या हमदर्दों के हल्क़े क़ायम हैं, वहाँ हफ़्तावार इजतिमाआत होते हैं। उन इजतिमाआत के अलावा जुमे के मौक़े पर या और मुनासिब समय में मस्जिदों में खुतबात और आसान किताबें पढ़कर सुनाई और समझाई जाती हैं।

नर्सरी स्कूलों के सिलसिले में शहरों में जिस अन्दाज़ पर कोशिशें की जा रही हैं। इसी तरह की कोशिशें देहातों में भी की जा रही हैं। हल्क़ा बिहार में कई देहातों में और टोंक, दिल्ली के हल्क़ों और कुछ दूसरी जगहों पर भी यह काम कामयाबी के साथ हो रहा है। इसके ज़रिए न सिर्फ़ हमें नई नस्लों की सही तरबियत का मौक़ा मिल रहा है, बल्कि पूरे-के-पूरे गाँव का माहौल हमारे हक़ में बनता जाता है।

देहात में औरतों में काम की तरफ़ अभी सही तरह से ध्यान नहीं दिया गया, सिर्फ़ हल्क़ा दिल्ली और बिहार में कुछ जगहों पर काम करने की कोशिश की जा रही है। देहात के अनपढ़ लोगों में सही ढंग से काम करने के लिए और उनके अन्दर से अच्छे कारकुन (कार्यकर्ता) पैदा करने के लिए हम तालीमे-बालिग़ान पर काफ़ी ज़ोर देते रहे हैं। यह तरीक़ा इस हल्क़े में काम करने के लिए सबसे मुनासिब तरीक़ा है। लेकिन इस तरफ़ बहुत कम ध्यान दिया गया है। ज़िला मेरठ और बुलन्दशहर में कुछ जगहों पर इसका तजरिबा किया गया और कुछ देहातों में इस काम के बड़े अच्छे नतीजे सामने आए हैं। अगर हम तालीमे-बालिग़ान का काम बड़े पैमाने पर करें तो हमारा यह काम बहुत फैल सकता है। इस सिलसिले में मौजूदा मजलिसे-शूरा ने फिर इसी

बात पर ज़ोर दिया है –

(1) मौजूदा हालात में ज़रूरी है कि ख़ास लोगों के साथ अवाम से भी ज़्यादा-से-ज़्यादा सम्पर्क बनाने की कोशिश की जाए ताकि दीन को क़ायम करने के लिए की जा रही कोशिशों में हिस्सा लेने के लिए उनको भी तैयार किया जा सके।

(2) अब तक जो तदबीरें, जैसे तालीमे-बालिग़ान, मदरसों की शुरुआत वग़ैरा, अपनाई जाती रही हैं इनके अलावा वुफ़ूद (प्रतिनिधिमंडलों) की शक्ल में अवाम तक पहुँचने और उनसे गहरे निजी सम्बन्ध बनाने के साधन पैदा किए जाएँ।

(3) उनसे निजी मेल-मुहब्बत पैदा की जाए और उनकी मुश्किलों में उनके साथ अमली हमदर्दी की जाए।

(4) दीन की बुनियादी बातों से उन्हें ज़बानी या आसान लिट्रेचर के ज़रिए वाक़िफ़ (परिचित) कराया जाए।

(5) इस्लाम का सही मतलब उनके सामने पेश किया जाए जिससे दीन व दुनिया के अलग-अलग होने का ख़याल ख़त्म हो सके और वे मामलात व अख़लाक़ को दीन का हिस्सा समझने लगें।

(6) दौरों के लिए सबसे पहले कोई ख़ास जगह चुनी जाए और वहाँ पर इतने दिनों तक रहा जाए या इतनी बार जाया जाए कि या तो ऊपर बयान किया गया मक़सद पूरा हो जाए या ख़ुदा न करे कि वहाँ से बिलकुल मायूसी हो जाए।

(7) दौरों में छोटी-मोटी इख़तिलाफ़ी बातों से किसी भी तरह छेड़-छाड़ न की जाए और अगर इसका मौक़ा आ ही जाए तो हिकमत व सूझ-बूझ के साथ उसे नज़र-अन्दाज़ कर दिया जाए।

हम अपने रुफ़क़ा से उम्मीद करते हैं कि वे इन हिदायतों पर पूरी तरह ध्यान देंगे।

अस्ल में हमारा मक़सद आम और ख़ास दोनों तक पहुँचने का है।

यह सही है कि हम आम तौर पर पहले ख़ास लोगों को ही दावत देते हैं, क्योंकि अव्वल तो ख़ास लोग इन बातों को आम लोगों के मुक़ाबले ज़्यादा समझने की योग्यता रखते हैं और दूसरी बात यह है कि आम लोग अकसर मामलों में ख़ास लोगों ही की पैरवी किया करते हैं, इसलिए अगर ज़हीन, समझदार और पढ़ा-लिखा वर्ग दावत को समझकर अपना ले तो न सिर्फ़ यह कि अवाम उन ख़ास लोगों को देखकर ख़ुद अपनी ज़िन्दगी के ढर्रे को बदलने के लिए तैयार हो जाएँगे बल्कि हमारे पास आम लोगों की सही रहनुमाई और दीनी तरीक़े पर तरबियत करनेवाली एक जमाअत भी तैयार हो जाएगी। इसलिए हमारे प्रोग्राम का तीसरा हिस्सा यही है कि देश की दिमाग़ी ताक़त का ज़्यादा-से-ज़्यादा हिस्सा अपनी इस दावत के लिए जुटा लें और इससे बाक़ायदगी से काम लें।

समझदार लोगों को एक जुट करने की कोशिश

इस सिलसिले में भी सबसे पहला काम अपने हल्क़ों (कार्यक्षेत्रों) का इस दृष्टि से जाइज़ा लेना और उसके बाद एक सोचे-समझे क्रम के साथ काम को आगे बढ़ाना है, जो ज़हनी ताक़त हमारे पास मौजूद है उसको दिमाग़ी योग्यताओं और ख़ूबियों के लिहाज़ से और अधिक ज़ेहनी ताक़त देने और अधिक ज़हीन और ज़्यादा योग्य लोगों को तवज्जोह दिलाने के लिए इस्तेमाल किया जाता है जिन जगहों पर इस तरह के कारकुन (कार्यकर्ता) मौजूद हों वहाँ विभिन्न विभाग और काम करने के हल्क़े बनाए जाते हैं।

लिट्रेचर

इस सिलसिले में सबसे असरदार काम वह ठोस और संजीदा लिट्रेचर है जो तहरीके इस्लामी ने तैयार किया है और जो देश की विभिन्न भाषाओं अर्थात उर्दू, हिन्दी, अंग्रेज़ी, बंगला, मलयालम, तमिल, मराठी, कन्नड़ और गुजराती वग़ैरा ज़बानों में है। जमाअत के मक्तबे से अब तक के

लिट्रेचर के प्रकाशन के अलावा नया लिट्रेचर तैयार करने की तरफ़ भी तवज्जोह की गई।

सहाफ़ती (पत्रकारिता सम्बन्धित) काम

अख़बारात व पत्रिकाओं और दूसरी पत्रकारिता सम्बन्धी गतिविधियाँ इस सिलसिले में असरदार साबित हुई हैं। ख़ुद-मर्कज़ से उर्दू पत्रिका ''ज़िन्दगी'' प्रकाशित की जाती है। इलाहाबाद से सेहरोज़ा ''अल-इनसाफ़'' प्रकाशित होता है। हैदराबाद से ''हयाते-नौ'' प्रकाशित होता है। दक्षिणी भारत से ''मन-शक्ति'' और ''इरल जूदी'' दो रिसाले (पत्रिकाएँ) निकलते थे जो प्रादेशिक भाषा में दावत पेश करते थे। अब 'मन-शक्ति' तो बन्द हो गया है लेकिन इरल-जूदी इस कमी को पूरी कर रहा है। इरल-जूदी अब लंका (सीलोन) से प्रकाशित हो रही है और अल्लाह का शुक्र है वहाँ पर काफ़ी तरक़्क़ी कर रही है। यह मासिक पत्रिका तमिल भाषा में प्रकाशित होती है। मासिक ''सन्देश'' कन्नड़ भाषा में निकलती रही लेकिन यह पत्रिका भी अब प्रकाशित नहीं हो रही है। एक मासिक पत्रिका 'प्रबोधनम' (दावत) मलयालम भाषा में निकल रही है जो काफ़ी लोकप्रिय है। कुछ समय तक एक अंग्रेज़ी पन्द्रह रोज़ा जरीदा (MESSAGE) भी प्रकाशित होता रहा लेकिन कुछ कारणों से यह कामयाब न हो सका। अँग्रेज़ी भाषा में अपने विचारों को पेश करने के लिए एक जरीदे के शुरू करने पर भी ग़ौर किया जा रहा है।

इन पत्र-पत्रिकाओं के ज़रिए न केवल यह कि विभिन्न विषयों के द्वारा दावत पेश करके बिलकुल नए-नए इस्लामी मसलों पर इस्लामी नज़रिया सामने लाकर देश के प्रतिभावान और बुद्धि जीवी वर्ग पर असर डालने की कामयाब कोशिश की जा रही है, बल्कि इससे लेखकों और विचारकों की और अधिक तरबियत भी होती रहती है (ज़िन्दगी के अलावा बाक़ी पत्रिकाओं का सम्बन्ध सीधे जमाअत से नहीं है। हमारे कारकुन (कार्यकर्ता) ख़ुद उनको निकाल रहे हैं।)

अदबी (साहित्यिक) काम

अदब (साहित्य) भी इस सिलसिले में बहुत अहमियत रखता है। जहाँ-जहाँ हमारे अधिक योग्यता रखनेवाले साथी हैं वे अदबी काम भी कर रहे हैं। खास तौर पर हल्क़ा दिल्ली, हैदराबाद, इलाहाबाद, बिहार और भोपाल में अदबी काम ज़्यादा अच्छी तरह हो रहा है। दिल्ली से एक पत्रिका "मेयार" हमारे साथियों ने हाल ही में निकालनी शुरू की है जिसके ज़रिए उम्मीद है कि देश का बुद्धिजीवी वर्ग ख़ास-तौर से शिक्षित लोग और छात्रों में से काफ़ी लोग हमारी तरफ़ आकर्षित हो जाएँगे।

जो ज़ेहनी ताक़त हम अब तक जुटा सके हैं उसकी तैयारी और तरबियत के लिए भी अदबी काम बहुत फ़ायदेमन्द साबित हो रहा है। उनकी योग्यता में तेज़ी से विकास हो रहा है।

अंग्रेज़ी में काम

कुछ जगहों पर, जैसे इलाहाबाद और किसी हद तक अलीगढ़ में काम की बुनियाद डालने के लिए अंग्रेज़ी हल्क़-ए-अदब भी क़ायम किया गया है और इस ज़रिए से भी न सिर्फ़ यह कि अँग्रेज़ी में कुछ काम शुरू हो गया है बल्कि रुफ़क़ा की इस काम के लिए तरबियत भी हो रही है। इलाहाबाद और हैदराबाद में अंग्रेज़ी और उर्दू में ख़िताब और मुज़ाकरात के लिए ख़ास बैठकें की गई हैं।

स्टडी सर्किल

अर्थशास्त्र के छात्रों में वैचारिक और मानसिक तहरीक पैदा करने और इस्लामी नज़रिए से सोचने और ग़ौर करने की शुरुआत करने के लिए एक स्टडी सर्किल क़ायम किया गया है जो अपना एक मासिक बुलेटिन प्रकाशित करता है। अब तक इस बुलेटिन के 6 अंक सामने आ चुके हैं और इसके ज़रिए से बड़ी क्लास के छात्रों में भविष्य में ज़्यादा अच्छी तरह मानसिक और वैचारिक काम की तरबियत होने और ज़्यादा छात्रों के इस तरफ़

आकर्षित होने की उम्मीद है। कुछ जगहों पर छात्रों में काम करने के लिए अलग से संगठन भी बनाए गए थे। इन संगठनों के ज़रिए छात्रों में काम के ज़्यादा मौक़े पैदा हो जाते हैं।

अध्यापक

जहाँ-जहाँ भी काम अच्छे पैमाने पर हो रहा है अच्छे शिक्षित अध्यापकों को मुतवज्जेह करने की कोशिश की गई। अलीगढ़ में इस तरफ़ ध्यान दिया गया और दो-तीन अध्यापक हमारे क़रीब आ रहे हैं। इसके अलावा और जगहों पर भी कुछ अध्यापक हमारे साथ जुड़ रहे हैं। छात्रों, आम पढ़े-लिखे लोगों और अध्यापकों के अलावा दूसरे प्रतिभाशाली वर्ग जैसे वकीलों आदि में भी काम करने की कोशिश की गई। ख़ास तौर से पत्रिकाओं के सम्पादकों से मिलकर पत्रकारिता की वर्तमान प्रवृति को बदलने की तरफ़ उभारा जाता है। हमारी इच्छा है कि भारत के लेखकगण (क़लमकार) अंग्रेज़ी, उर्दू, हिन्दी और देश की दूसरी भाषाओं में अख़बारात (पत्र-पत्रिकाएँ) शुरू करके इस्लामी विचार धारा को फैलाएँ क्योंकि इस्लामी विचारधारा के फैलाव के लिए हमें सभी भाषाओं से काम लेना है। इसलिए हमारे प्रोग्राम का चौथा हिस्सा यह है कि हमारे सब कारकुन भारत की उन मक़ामी जबानों को सीखें और उनमें लिखने और तक़रीर करने की क़ाबिलियत पैदा करें जो अब शिक्षा और साहित्य की भाषाएँ बन गई हैं।

विभिन्न भाषाओं में दावत का विस्तार

हिन्दुस्तान के विभिन्न क्षेत्रों की भाषाओं को सीखने, उनमें महारत पैदा करने और इसी तरह उन भाषाओं में दावती लिट्रेचर उपलब्ध करने का काम भी बहुत अहम है। इस सिलसिले में रुफ़क़ा को ध्यान दिलाया जाता है कि वे हिन्दी और दूसरी मक़ामी ज़बानों में जल्द-से-जल्द जानकारी पैदा करें और जो लोग ज़बान जानते हों वे महारत पैदा करें। दूसरी ज़बानों में लिट्रेचर का अनुवाद करने और दावत के फैलाव के लिए पत्रिकाएँ शुरू करने का

काम भी किसी हद तक हो सकता है। बिहार में बंगला भाषा में तर्जमा का काम शुरू किया गया था और इस्लामी जीवन-व्यवस्था, ईमान की हक़ीक़त और इस्लाम की हक़ीक़त जैसी किताबों का बंगला अनुवाद प्रकाशित हो चुका है।

रामपुर से अच्छी और मेयारी हिन्दी में एक पत्रिका "उजाला" प्रकाशित की जा रही थी बाद में उसे बंद कर दिया गया। अब बच्चों के लिए आसान हिन्दी में 'उजाला" प्रकाशित किया जा रहा है जो लोकप्रिय हो रही है।

हल्क़ा दिल्ली में रुफ़क़ा की अच्छी ख़ासी तादाद हिन्दी सीखने की तरफ़ ध्यान देने लगी है। एक रफ़ीक़ (साथी) इतनी तैयारी कर चुके हैं कि उन्होंने तर्जमे का काम भी शुरू कर दिया है और एक किताब का तर्जमा भी कर चुके हैं। इस हल्क़े में हिन्दी सीखने-सिखाने और उसके अन्दर काम के लिए एक अलग नाज़िम (प्रबन्धक) मुक़र्रर किया गया है। इसी तरह दूसरी जगहों पर हिन्दी में तर्जमा करने तथा हिन्दी भाषा को सीखने के सिलसिले में व्यक्तिगत तथा इजतिमाई तौर पर कोशिशें की गई हैं।

हैदराबाद में तेलुगु ज़बान में तीन किताबों का तर्जमा किया गया है जिनमें से एक प्रकाशित हो चुका है और पाँच का तर्जमा मराठी में हुआ है। ये किताबें अच्छी तादाद में बिक रही हैं।

मालाबार में मलयालम ज़बान में प्रकाशन का काम एक समय से हो रहा है और अब तक छः किताबों का तर्जमा हो चुका है। तमिलनाडु में तमिल भाषा का प्रकाशन क़ायम था। यह प्रकाशन पाँच किताबों का अनुवाद कर चुका है और एक किताब प्रकाशनाधीन है

हिन्दी भाषा में भी पाँच किताबों का अनुवाद प्रकाशित हो चुका है।

हज़रात! यह था एक सरसरी जाइज़ा उस काम का जो हम अपने प्रोग्राम के मुताबिक़ कर चुके हैं। हमारी कोशिशों में जो कमियाँ रह गई हैं और जिन कामों की तरफ़ ध्यान देने की ज़रूरत है उनमें से अधिकतर की तरफ़ ऊपर

भी इशारे किए गए हैं लेकिन कुछ काम रुफ़क़ा के लिए ख़ास तौर से ध्यान देने के हैं, क्योंकि वे हमारे काम को आगे बढ़ाने के लिए ज़रूरी है।

इस देश में दावते-इस्लामी की आम लोकप्रियता और तहरीके-इस्लामी की कामयाबी का दारोमदार इस पर है कि हम अपने चरित्र और किरदार से इस्लामी ज़िन्दगी का सही नमूना पेश करें। यह नमूना व्यक्तिगत भी होना चाहिए और सामाजिक रूप में भी। इसके लिए रुफ़क़ा को अपनी जाँच-पड़ताल करनी चाहिए। बार-बार इस्लामी ज़िन्दगी के सिलसिले की तफ़सीली हिदायतें ज़ेहन में ताज़ा करनी चाहिएँ और अपनी ख़ामियों को दूर करने की फ़िक्र में लग जाना चाहिए।

साथियों को अपनी तरबियत के लिए इनफ़िरादी और इजतिमाई तौर पर सोचना चाहिए। मर्कज़ की तरफ़ से तरबियत का जो इन्तिज़ाम है उसका ज़िक्र तो आगे आएगा। लेकिन मक़ामी, ज़िले और हल्क़े (प्रदेश) के स्तर पर भी इस तरह के इन्तिज़ाम करने चाहिएँ जो साथियों की तरबियत में सहायक व मददगार हो सकें।

दावत से मुसलमानों और ग़ैर-मुस्लिमों को सही तौर पर परिचित कराने के लिए इस तरफ़ ध्यान देने की ज़रूरत है कि जहाँ कहीं भी हो सके मुहल्लों, शहरों और ज़िलों में नमूने के काम किए जाएँ। इस क़िस्म के नमूने के काम की जगहों का चुनाव अच्छी तरह जाइज़ा लेने के बाद किया जाए और मुनासिब जगह और अच्छे कारकुनों की मौजूदगी आदि के लिहाज़ से जो जगह चुन ली जाए उस पर ध्यान से काम किया जाए। फिर इन नमूने की जगहों के काम और यहाँ के अनुभवों को शहर ज़िलों या हल्क़ों और देश के दूसरे साथियों की दावती और तबलीग़ी तरबियत में इस्तेमाल किया जा सकता है।

दूसरे नम्बर के बारे में यह कहना है कि शहरों में व्यक्तिगत काम और इजतिमाआत आदि के ज़रिए जो कुछ हो रहा है उसको अच्छे तरीक़े से करने के साथ ही कुछ और बातें भी ध्यान देने की हैं। शहरों में जो सामाजिक और सांस्कृतिक संस्थाएँ, इस्लाही अंजुमनें या इसी तरह की दूसरी तन्ज़ीमें होती हैं

उनके लीडरों से ताल्लुक़ात पैदा करने चाहिए। इस तरह कुछ ख़ास बिरादरी की अंजुमनें भी पाई जाती हैं। इजतिमाई सम्पर्क और फिर इनको क़रीब लाने की विभिन्न शक्लें अपनाने से काम काफ़ी आगे बढ़ सकता है।

देहातों के सिलसिले में बिरादरियों और इसी तरह की गरोही और नस्ली तन्ज़ीमों के लोगों में काम का अच्छा तरीक़ा उनके लीडरों से सम्पर्क करना और इस तरह से उनमें दावत के फैलाव के मौक़े पैदा करने की कोशिश करना है। इस तरफ़ ज़्यादा ध्यान देने की ज़रूरत है।

बैठकों और चौपालों में दोपहर और रात की बैठकों में ऐसा माहौल रहता है कि लोग कुछ बातें सुकून से सुनें और कुछ बातचीत हो सके। ऐसे मौक़ों पर आसान लिट्रेचर पढ़कर सुनाने की कोशिश की गई तो इस के नतीजे बहुत अच्छे निकले हैं। अगर हमारे कारकुन समझबूझ के साथ इन मौक़ों को दावत के प्रचार में इस्तेमाल करें तो इसके दूरगामी नतीजे निकल सकते हैं।

तालीमे-बालिग़ान (प्रौढ़-शिक्षा) के सिलसिले में भी जितनी तवज्जोह होनी चाहिए उतनी नहीं है। शहरों की अशिक्षित आबादी में आम तौर पर और गाँव-देहातों में ख़ास तौर पर काम का असरदार ज़रिआ यही हो सकता है। इस तरफ़ ज़यादा-से-ज़्यादा ध्यान देने की ज़रूरत है।

ग़ैर-मुस्लिमों में जो काम करना है वह यह है कि उनमें इस्लाम और फिर तहरीके-इस्लामी का सही परिचय कराया जाए और इस सिलसिले में उनकी ग़लतफ़हमियों और बदगुमानियों को दूर किया जाए।

दूसरा अहम काम जिस पर पहले काम का भी दारोमदार है वह ग़ैर-मुस्लिमों के सामने अच्छे सीरत व किरदार और बेहतरीन अख़लाक़ (नैतिक गुण) का नमूना पेश करना है। यह काम हमारे अपने साथियों की सही तरबियत और मुसलमानों की आम इस्लाह के ज़रिए हो सकता है। इन कामों का पहला क़दम ग़ैर-मुस्लिमों से सम्बन्ध और सम्पर्क बनाना है। विचारों के आदान-प्रदान तथा बातचीत व मुलाक़ातों के ज़रिए ही काम शुरू किया जा सकता है। लिट्रेचर और पत्रिकाओं से भी काम लिया जा सकता है।

तीसरे नम्बर के बारे में कहना है कि प्रतिभाशाली और शिक्षित वर्ग से ऐसे कारकुन और ग़ौर-फ़िक्र करनेवाले लोग मिल सकते हैं जो देश में इस्लामी तहरीक के काम को उसके मेयार के मुताबिक़ आगे बढ़ा सकें और आख़िकार कि वह ज़ेहनी इंक़िलाब आ जाए जो हम चाहते हैं।

इस सिलसिले में पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादक, वकीलों और तालीमी, फ़िक्र या अदबी मजलिसों और इदारों के ज़िम्मेदार हज़रात से ताल्लुक़ात बढ़ाने और उनके सामने दावत पेश करना इस सिलसिले का एक अहम काम है जिस की तरफ़ ज़्यादा तवज्जोह देने की ज़रूरत है।

स्कूलों, कालिजों और यूनिवर्सिटियों के छात्रों में काम की मुख़्तलिफ़ सूरतों में उन के ख़ास इजतिमाआत, अदबी काम और लिट्रेचर और हॉस्टलों में अपने कारकुनों के ज़रिए इजतिमाआत, लिट्रेचर और अख़बारात व रिसालों, आम बातचीत और एक-दूसरे के ख़यालात जानने के ज़रिए काम को तेज़ी से आगे बढ़ाने की ज़रूरत है। स्टडी सर्किलों और मुज़ाकराती (परिचर्चा सम्बन्धी) हल्क़े क़ायम करके लिट्रेचर के ज़्यादा गहरे अध्ययन बातिल अफ़कार (असत्य विचारधारा) पर खुलकर तबादला-ए-ख़यालात और इसी तरह की दूसरी बातचीत के ज़रिए छात्रों के ज़ेहन को इस्लाम के हक़ में मुत्मइन कर देने और असत्यविचारों से दूर कर देने का काम बहुत ख़ूबी के साथ किया जा सकता है।

इक़ामती दर्सगाहों, कालिजों और यूनिवर्सिटियों में लाइब्रेरियाँ ज़्यादा अच्छे नज़्म के साथ क़ायम होनी चाहिए। कोशिश करनी चाहिए कि लाइब्रेरी के साथ ऐसी जगह भी हो जहाँ छात्र अपने फ़ुर्सत के वक़्त में उठ-बैठ सकें और वहाँ तबादला-ए-ख़यालात और मुज़ाकरात की गुंजाइश निकल सकें। इस तरह जो छात्र हमारी तरफ़ आते हैं उनको एक बिलकुल अलग माहौल मुहैया करके हम उनको यूनिवर्सिटी या कालिज या हॉस्टल के आम माहौल के नुक़सानदेह असरात से बहुत हद तक बचा सकेंगे।

जो मुख़्तलिफ़ तंज़ीमें, अदबी काम, मख़सूस मज़ामीन, फ़िक्री (वैचारिक) काम और दूसरे तख़लीक़ी कामों के लिए बन रही हैं उनके तहत

हर मक़ामी जमाअत को अपने अफ़राद में से ज़हीन और ज़्यादा सलाहियत रखनेवाले लोगों को चुनकर उनकी ज़ेहनी व फ़िक्री तरबियत करनी चाहिए ताकि आगे चलकर उनसे ज़्यादा ठोस और संजीदा काम लिया जा सके। ख़तो-किताबत (पत्र-व्यवहार) और दूसरे ज़रिओं से ऐसे छात्रों का जो मुख़तलिफ़ मक़ामात पर हों एक दूसरे से गहरा ताल्लुक़ क़ायम करना चाहिए ताकि हमें जो ज़ेहनी सरमाया (पूँजी) मिल गया है उसको और बढ़ाया जा सके और उसके फैलाव और तरक़्क़ी के पूरे मौक़े मिल सकें।

नम्बर 4 के सिलसिले में यह कहना है कि मक़ामी ज़बानों को सीखने, उनमें महारत पैदा करने और उन ज़बानों में काम करने की अहमियत शायद रुफ़क़ा ने पूरी तरह महसूस नहीं की है। यहाँ सिर्फ़ इसकी तरफ़ तवज्जोह दिलानी है कि मक़ामी ज़बानों ख़ास तौर पर हिन्दी सीखने और जो लोग कुछ जानते हैं उनके अन्दर महारत पैदा करने की तरफ़ मक़ामी जमाअतें ज़्यादा ध्यान दें। जहाँ मुमकिन हो वहाँ मक़ामी तौर पर इसका इजतिमाई तौर पर इन्तिज़ाम किया जाए।

हमारे जो रुफ़क़ा इन ज़बानों में इतनी क़ाबिलीयत रखते हों कि कुछ और मेहनत और तवज्जोह से महारत पैदा करके हिन्दी में लिखने या तर्जमा करने का काम आसानी से कर सकें, उनको इस तरफ़ तवज्जोह देनी चाहिए। मक़ामी जमाअतों और फिर हल्क़ों के ज़रिए ऐसे अफ़राद के बारे में पूरी और तफ़सीली जानकारी मर्कज़ को होनी चाहिए।

हिन्दी के जाननेवालों और ख़ास कर लेखकों से जो रुफ़क़ा ताल्लुक़ात पैदा कर सकते हैं वे ऐसा ज़रूर करें और उन हज़रात को न सिर्फ़ अपनी दावत से आगाह कराएँ बल्कि उनके ज़रिए मौजूदा हिन्दी प्रेस के आम रुझानात वग़ैरा से भी बा-ख़बर होने की कोशिश करें। ऐसा ही दूसरी मक़ामी ज़बानों के सिलसिले में भी किया जाए।

बंगाल में बंगला और जुनूबी हिन्द (दक्षिण भारत) में मलयालम, तामिल, कन्नड़, मराठी और दूसरी ज़बानों का सीखना तो रुफ़क़ा के लिए ज़रूरी ही है लेकिन उनके लिए यह भी अहम है कि वे उर्दू ज़बान सीखें। ऐसा

करके ही वे इस्लाम और तहरीके-इस्लामी के बारे में अच्छे और ज़्यादा-से-ज़्यादा लिट्रेचर का मुताला कर सकते हैं और आगे इसी तरह वे उर्दू से तर्जमे का काम कर सकेंगे।

अब हम प्रोग्राम के चारों निकात (सूत्रों) के बारे में तफ़सीली बहस कर चुके हैं लेकिन हम ने अपने प्रोग्राम की हर शिक़ के बारे में अलग-अलग मालूमात मुहैया कराने की कोशिश की है। फिर भी यह बात याद रखने की है कि ये चारों चीज़ें इस तरह एक दूसरे से जुड़ी हैं और उनका आपस में एक दूसरे से इतना गहरा ताल्लुक़ है कि इस स्कीम के फ़ायदे तब ही हासिल हो सकते हैं जब कि इन चारों को एक ही समझते हुए अपनाया जाए। लेकिन अगर ऐसा न किया गया तो उन में से एक को छोड़ देना और दूसरे को अपना लेना पूरी स्कीम को बेमक़सद बना सकता है, इसलिए हमारे रुफ़क़ा को इन चीज़ों के आपसी ताल्लुक़ और उनकी हक़ीक़ी अहमियत को क़दम-क़दम पर ध्यान में रखने की ज़रूरत है। खुद मर्कज़ जमाअते-इस्लामी हिन्द के काम का तरीक़ा इस बारे में यह है कि हमें एक वक़्त में एक साथ इन सारे मक़ासिद के लिए जिद्दोजुहद करनी है।

मर्कज़ी कामों का जाइज़ा

हज़रात! यहाँ तक तो हमने उन कामों का ज़िक्र किया है जो हमारे रुफ़क़ा भारत में मुख़्तलिफ़ मक़ामात पर कर रहे हैं। उड़ीसा और असम प्रदेशों के अलावा ख़ुदा की मेहरबानी से हमारी आवाज़ भारत के बाक़ी प्रदेशों में पहुँच चुकी है। देश के बँटवारे के वक़्त हमारे अरकान (सदस्य) की तादाद 173 थी अब ख़ुदा की मेहरबानी से अरकान और हमदर्दों वग़ैरा की तादाद इस तरह है।

अरकान	उम्मीदवारे-रुकनियत	हमदर्दान	मुतास्सिरीन
389	165	1095	4000 लगभग

हमारी जमाअत को जाननेवाले ख़ुदा के फ़ज़्ल से काफ़ी तादाद में मौजूद हैं। देश भर में जमाअतों की तादाद 66 है और 58 मक़ामात पर मुन्फ़रिद[1] अरकान हैं। इन के अलावा बहुत से मक़ामात पर हमदर्दों के हल्क़े भी क़ायम हैं जो हमारे मशवरों से काम करते हैं।

आसानी के लिए हमने 19 क़य्यिम (सचिव) बनाए हैं जो अपने-अपने हल्क़े के निगराँ (प्रभारी) हैं। ये हल्क़े हस्बे-ज़ैल हैं।

(1) इलाहाबाद (2) मुम्बई (3) राजिस्थान (4) भोपाल (5) बनारस (6) बाराबंकी (7) लखनऊ (8) कानपुर (9) दिल्ली (10) रामपुर (11) शाहजहाँपुर (12) बिहार (13) कलकत्ता (कोलकाता)

(14) दकन (15) मैसूर (16) केरला (मालाबार) (17) टमिलिस्तान (तमिलनाडू) (18) अरकाट (19) मद्रास व आन्ध्रा–

आख़िरी हल्क़े को अब तोड़ दिया गया है और तमिलनाडु, अरकाट और मद्रास को एक ही हल्क़ा बनाने का ख़याल है। इन तमाम हल्क़ों की रिपोर्टें, इस मर्कज़ी रिपोर्ट के बाद पढ़ी जाएगी जिन से आपको देश के मुख़्तलिफ़

1. मुन्फ़रिद रुक्न जमाते-इस्लामी की ख़ास इस्तिलाह (विशेष परिभाषा) है। इससे मुराद वह मक़ाम है जहाँ एक ही रुक्न हो।

हिस्सों के कामों की तफ़सीलात की जानकारी हो जाएगी। अब मैं आप की ख़िदमत में मर्कज़ के मुख़्तलिफ़ शोबों के बारे में कुछ बताऊँगा!

जब तक हमारा मर्कज़ मलीहाबाद में था, उस वक़्त तक वहाँ सिर्फ़ मक्तबा और नर्सरी दर्सगाह का इन्तिज़ाम था लेकिन मर्कज़ के रामपुर मुन्तक़िल हो जाने के बाद यहाँ सानवी तालीम (जूनियर क्लासों) और तरबियतगाह के शोबों का इज़ाफ़ा हो गया है और इसके अलावा यह कि रिसाला "ज़िन्दगी" के सम्पादन व संकलन का इन्तिज़ाम भी मर्कज़ के तहत आ गया है।

मर्कज़ी मक्तबा

देश के बँटवारे के बाद जमाअते-इस्लामी हिन्द ने जब अपना अलग नज़्म क़ायम किया उस वक़्त नए सिरे से मक्तबे को मलीहाबाद ज़िला लखनऊ में शुरू किया गया। मक्तबे की आमदनी व ख़र्च का रजिस्टर 14 अगस्त 1948 ई० से माँगे हुए क़र्ज़ से शुरू होता है। तक़सीमे-हिन्द के सिलसिले में जो रक़म जमाअते-इस्लामी हिन्द के हिस्से में आई थी उससे किताबें क़िस्तों में आनी शुरु हुईं। कुछ रुकावटों और पाबन्दियों की वजह से किताबों को फ़राहम करने में काफ़ी मुश्किलों का सामना करना पड़ा और ग़ैर-मामूली ख़र्च बरदाश्त करने पड़े। मलीहाबाद में जगह की कमी, दीमक की ज़्यादती और मकान की सीलन भी काफ़ी परेशानी का सबब बनी। लेकिन अल्लाह का शुक्र है कि इन सारी मुश्किलों का सामना करते हुए मक्तबा अपनी कामयाबी की मंज़िलें तय करता रहा और ख़ुदा की मेहरबानी से तरक़्क़ी करता रहा।

अकतूबर 1949 ई. में मर्कज़ के साथ मक्तबा भी मलीहाबाद से रामपुर मुन्तक़िल होकर आ गया। पहले हम बाहर से किताबें मँगवाते थे लेकिन इसमें परेशानी भी होती थी और तिजारती पहलू से कोई फ़ायदा भी न था। अब हम किताबें ख़ुद छपवाने का इन्तिज़ाम कर रहे हैं अतः इस वक़्त तक हमने एक सौ किताबें छपवाई हैं।

जमाअत के पुराने लिट्रेचर के अलावा नए लिट्रेचर को छपवाने का भी इन्तिज़ाम हो रहा है। इस सिलसिले में कुछ किताबें ज़ेरे-तबाअत (प्रकाशनाधीन) हैं, और कुछ रुफ़क़ा कुछ ख़ास विषयों पर किताबें लिखने की तैयारी कर रहे हैं जो अल्लाह ने चाहा तो मक्तबे की तरफ़ से प्रकाशित हो सकेंगी। दरसियात की किताबों (पाठ्य-पुस्तकों) का एक सेट जिसमें छः किताबें हैं छपकर तैयार हो गया है, उनके साथ-साथ अख़लाक़ी कहानियों का चार किताबों का एक सेट भी छपा है। क़ुरआन के हिन्दी तर्जमे की तरतीब भी इंशा-अल्लाह जल्द शुरु हो जाएगी। हिन्दी में सीरत की किताबों की बड़ी ज़रूरत थी। फ़ौरी तौर पर सीरत की दो किताबों के तर्जमे दूसरे इदारों से मँगवाकर रखे गए हैं।

दूसरे मक्तबों की ऐसी किताबें जो हमारे मक़सद के लिए फ़ायदेमंद हो सकती हैं उनको और क़ुरआन पाक के नुस्ख़े (प्रतियाँ) मँगवाने का इन्तिज़ाम किया गया है। हमारी किताबों में से भोपाल में "बनाव-बिगाड़" नामी किताब को हुकूमत ने सिर्फ़ ग़लतफ़हमी की वजह से 1950 ई. के शुरू में ज़ब्त कर लिया और अभी तक उसके ऊपर से पाबन्दी हटने की नौबत नहीं आई। इसी तरह लखनऊ में "खुतबात" नामी किताब की एक हज़ार कापियों को सिर्फ़ ग़लतफ़हमी की वजह से पुलिस उठाकर ले गई और हमारे दो रफ़ीक़ों (साथियों) को क़ैद कर दिया। फिर उन्हें भारी ज़मानत पर रिहा किया और अगरचे आख़िर में उनके ऊपर से मुक़दमा उठा लिया गया, फिर भी एक साल से ज़्यादा वक़्त गुज़र चुका है लेकिन इन किताबों से पाबन्दी उठाने की नौबत अभी तक नहीं आई है। बल्कि बराबर तारीख़ें पड़ती चली जा रही हैं। इन वाक़िआत का ज़िक्र हम अपनी रिपोर्ट में इसलिए कर रहे हैं कि हमारे रुफ़क़ा को उन मामलात के बारे में सही हालात मालूम हो जाएँ।

इब्तिदाई और सानवी दर्सगाह

आज लादीनी तालीम के नुक़सानदेह असरात आम तौर से मुस्लिम और ग़ैर-मुस्लिम बच्चों में साफ़ तौर पर महसूस किए जा सकते हैं, क्योंकि जिस तालीम की बुनियाद अख़लाक़ और मज़हब की सही शक्ल पर न रखी

गई हो उससे जो ज़ेहन और फ़िक्र परवान चढ़ेगी वह ख़ुदा-परस्ती से ख़ाली और बे-दीनी और दुनिया-परस्ती के रंग में रंगी हुई होगी। इसलिए तालीम का मसला न सिर्फ़ मुसलमानों बल्कि ग़ैर-मुस्लिमों के नज़रिए से भी बड़ी अहमियत रखता है। लेकिन आम तौर से चूँकि ग़ैर-मुस्लिम इस मसले पर इस तरह ग़ौर नहीं करते जिस तरह हम करते हैं, इसलिए अपनी जिद्दोजुहद को हम सिर्फ़ मुसलमानों तक ही महदूद किए हुए हैं। मुसलमानों के बीच में इब्तिदाई तालीम का जो निसाब सरकारी स्कूलों में पढ़ाया जा रहा है वह मुसलमान बच्चों की इस्लामियत के लिए इन्तिहाई तबाहकुन है। लेकिन मुसलमानों की मज़हबी तालीम की वुसअत (व्यापकता) और उनकी ग़ैर-मुनज़्ज़म (असंगठित) और बिखराव की हालत के नतीजे में इस मसले का कोई आसान हल तलाश करना मुमकिन नहीं है। तालीमी मसले की अहमियत को देखते हुए हम हर उस जमाअत से तआवुन करने के लिए तैयार हैं, जिसका मक़सदे-तालीम और तरीक़ा-ए-तालीम बुनियादी तौर से हमारे मक़सद और तरीक़ा-ए-कार के ख़िलाफ़ न हो। चुनांचे इस मामले की नज़ाकत और अहमियत के पेशे-नज़र मौलाना अबुल-लैस साहब इस्लाही अमीर जमाअते-इस्लामी हिन्द ने मौलाना हिफ़ज़ुर्रहमान साहब नाज़िमे-आला जमईयते-उलमा-ए-हिन्द और मौलाना मुहम्मद मंज़ूर नोमानी साहब मुदीर अल फ़ुरक़ान से इस मसले पर कुछ माह पहले बातचीत की थी और तीनों हज़रात ने अपनी इनफ़िरादी हैसियतों में इस बात से इत्तिफ़ाक़ किया था कि इस मक़सद के लिए जमाअते-इस्लामी हिन्द, जमईयते-उलमा-ए-हिन्द और तबलीग़ी जमाअत के तआवुन से एक मुश्तरका (संयुक्त) बोर्ड क़ायम किया जाए लेकिन चूँकि जमईयते-उलमा-ए-हिन्द की मजलिस-ए-आमिला (कार्यकारिणी समिति) ने इस तजवीज़ से इत्तिफ़ाक़ नहीं किया इसलिए इस अहम मसले को जिस तरह हल होना चाहिए था वह मक़सद तो हासिल न हो सका लेकिन अपने तौर पर इस सिलसिले में जो कोशिशें हम कर रहे थे उनमें मज़बूती लाने और उसमें वुसअत (फैलाव) पैदा करने की तरफ़ हम क़दम बढ़ा रहे हैं।

इक़ामते-दीन की जिद्दोजुहद में जो हिस्सा आनेवाली नसलों को लेना है

उसके लिए ज़रूरी है कि बच्चों की तालीम व तरबियत इस तरह की जाए कि इल्मी, ज़ेहनी, अख़लाक़ी और जिस्मानी तमाम हैसियतों से उनमें वे ज़रूरी, इनफ़िरादी और इजतिमाई सलाहियतें, अख़लाक़ और ख़ूबियाँ पैदा हो सकें जो मज़हब और इनसानों और इक़ामते-दीन के कारकुनों के लिए लाज़िमी हैं और जिनसे जौहरे-इनसानियत के साथ जौहरे-इस्लामियत में भी बढ़ोत्तरी हो।

अपने इस मक़सद के तहत एक दर्सगाह क़ायम करने की ज़रूरत तो तक़सीमे-हिन्द से बहुत अर्से पहले ही हमें महसूस हो रही थी। मगर मुख़्तलिफ़ वजहों से इस तजवीज़ पर अमल करने के लिए कोई क़दम न उठाया जा सका था। तक़सीमे-हिन्द के बाद ऐसी दर्सगाह का बड़ी शिद्दत से एहसास किया गया और अल्लाह का शुक्र है कि पहली रबीउल-अव्वल 68 हि. को जमाअते-इस्लामी हिन्द के मर्कज़ में एक इब्तिदाई (नर्सरी) दर्सगाह क़ायम हो गई। हमारे एक रफ़ीक़ ने भारत में जमाअत के नए नज़्म क़ायम होने के वक़्त मर्कज़ की तामीर के लिए अपनी ज़मीन के एक बड़े हिस्से के साथ आम का एक बड़ा बाग़ जो तक़रीबन 27 बीघा है एक इक़ामती (बोर्डिंग) दर्सगाह के लिए वक़्फ़ कर दिया था। इसलिए मर्कज़ के तहत इक़ामती दर्सगाह, जिसमें शुरुआत में दो टीचरों की निगरानी में 21 छात्रों की तालीम व तरबियत का चौथी क्लास तक इन्तिज़ाम शुरू किया गया था। महमूद नगर में स्थित मलीहाबाद के इस बाग़ में उस वक़्त तक क़ायम रही जब तक मर्कज़ मलीहाबाद ज़िला लखनऊ में क़ायम था लेकिन चूँकि मकानात की कमी और कुछ परेशानियों की वजह से हमारा मर्कज़ अकतूबर 1949 ई. में मलीहाबाद से रामपुर चला गया। इसलिए उसी के साथ-साथ मर्कज़ी दर्सगाह भी रामपुर मुन्तक़िल कर दी गई। रामपुर में मक़ामी जमाअत के तहत मर्कज़ी दर्सगाह के नमूने पर एक ज़ैली दर्सगाह जमाअत के एक हमदर्द की इमारत में, जो उन्होंने दर्सगाह के इस्तेमाल के लिए दे रखी है, पहले ही से क़ायम थी। लिहाज़ा यहाँ की मक़ामी दर्सगाह को मर्कज़ी दर्सगाह में ही शामिल कर दिया गया। इस तरह यहाँ पाँचवीं क्लास का इज़ाफ़ा हो गया। यहाँ छात्रों की तादाद 55 और टीचर्स की तादाद

चार हो गई और तलबा की निगरानी और दूसरी ज़रूरतों के लिए 2 निगराँ मुक़र्रर किए गए। इस वक़्त भी मौजूदा तादाद यही है। अलबत्ता इस साल छठी क्लास का इज़ाफ़ा कर दिया गया है और अगले साल सातवीं क्लास भी खोल दी जाएगी और एक टीचर का इज़ाफ़ा इंशा-अल्लाह और किया जा सकेगा ताकि नए दर्जे के इज़ाफ़े के साथ कुछ नए मज़ामीन की तालीम का इन्तिज़ाम हो सके। फ़िलहाल इस्लामी उलूम यानी क़ुरआन, हदीस, फ़िक़्ह, अख़लाक़, मुआशरत (सामाजिकता), तारीख़े-इस्लाम, पैग़म्बरों, सहाबा और मुस्लिम समाज के सुधार का काम करने वाले नेक लोगों की जीवनियों के अलावा अरबी, उर्दू, हिन्दी, अंग्रेज़ी ज़बानों और दूसरे मालूमाती उलूम जैसे कि भारत का इतिहास, भूगोल, गणित, जनरल साइंस, आर्ट, क्राफ़्ट वग़ैरा की तालीम दी जाती है और इन मज़ामीन में हमारे यहाँ का मेयार सरकारी स्कूलों से बुलन्द है। हम तालीम के जदीद-तरीन तरीक़ों और खेल-कूद के ज़रिए बहुत सी बातें छात्रों के ज़ेहन में बिठा देते हैं। जिन्हें दूसरे स्कूलों में पढ़ाकर और रटाकर नन्हें से दिमाग़ में ठूँसा जाता है। तालीम के साथ-साथ बच्चों को बाग़बानी, बुक बाइंडिंग, कारपेंटिंग (बढ़ईगीरी), और सिलाई वग़ैरा कामों की भी तालीम दी जाती है। इन सारे कामों में सबसे ज़्यादा अहमियत हम छात्रों की अख़लाक़ी तरबियत को देते हैं, क्योंकि इसी के ज़रिए से अच्छे समाज का क़ियाम मुमकिन है जो हमारे पेशे-नज़र है। यही वजह है कि हमारे तैयार किए हुए तालीमी निसाब में अख़लाक़े-फ़ाज़िला (अच्छे अख़लाक) को बुनियादी अहमियत हासिल है। ख़ुदा की मेहरबानी से शुरुआती तालीम के सिलसिले में हमारा तैयार किया हुआ निसाब देश में इतना मक़बूल हुआ कि कम ही वक़्त में हमारी दरसी किताबों (पाठ्य पुस्तकों) का स्टॉक लगभग ख़त्म हो गया और हमें दोबारा पुरानी किताबों को प्रकाशित और नई किताबों की तैयारी का इन्तिज़ाम करना पड़ा। इस वक़्त अल्लाह के फ़ज़्ल से हमारे यहाँ उर्दू में "क़ायदा" और "हमारी किताब" के छः हिस्से जो छटी क्लास तक के लिए काफ़ी हैं और सरसरी मुताले के लिए अख़लाक़ी कहानियों के पाँच हिस्से तैयार हो चुके हैं और हिन्दी में "हमारी पोथी" के 3 हिस्से तैयार हो चुके हैं और

चौथा हिस्सा छपाई के मरहले में है। इसी सिलसिले में छटी क्लास तक के लिए निसाब भी मुकम्मल करके किताबी शक्ल में छाप दिया गया है।

हमारा निसाब और हमारी दरसी किताबें (पाठ्य-पुस्तकें) न सिर्फ़ मर्कज़ी दर्सगाह के लिए मुफ़ीद साबित हुई हैं बल्कि मक़ामी जमाअतों ने भी उनकी छपाई और ज़्यादा-से-ज़्यादा लोगों तक पहुँचाने में काफ़ी हिस्सा लिया जिसका ज़िक्र पहले हो चुका है। तालीम के सिलसिले में आइन्दा नीचे लिखे काम हमारे सामने हैं :

पहले तो हम मर्कज़ी दर्सगाह की इमारत को बढ़ाने और उसे मज़बूत करने की कोशिश करना चाहते हैं, फिर दूसरे मक़ामात पर भी इसी तरह की दर्सगाहें खोलना चाहते हैं और जहाँ हम खुद ऐसी दर्सगाहें न खोल सकें वहाँ आम मुसलमानों में दीनी तालीम का एहसास जगा करके उन्हें दीनी दर्सगाहें शुरू करने की तरफ़ मुतवज्जाह करना चाहते हैं, जिनमें चाहे वे हमारे निसाबे-तालीम को शुरू करें या मक़ामी ज़रूरतों और हालात के मुताबिक़ उसमें ऐसी तब्दीली कर लें जिससे तालीम के दीनी पहलू को कोई नुक़सान न पहुँचे। इन कामों में हम हर मुमकिन मदद के लिए भी तैयार हैं। यहाँ तक कि मर्कज़ी दर्सगाह में टीचर्स की तरबियत का इन्तिज़ाम भी हमारे सामने है।

सानवी तालीम (Secondary Education)

प्राईमरी तालीम के अलावा हमारी तवज्जोह सानवी तालीम की तरफ़ भी रही है। हिन्दुस्तान में जमाअत का नज़्म क़ायम होने के बाद ही अलीगढ़ यूनिवर्सिटी और दूसरे मक़ामात के कुछ नए पढ़े-लिखे छात्रों ने सानवी तालीम की अहमियत के पेशे-नज़र इस बात की ख़ाहिश ज़ाहिर की कि वे अपनी तालीम का रुख़ बदलना चाहते हैं। जब तक हमारा मर्कज़ मलीहाबाद में था वहाँ इस तरह की तालीम का नज़्म मुमकिन न था लेकिन मर्कज़ के रामपुर आ जाने के बाद रबीउल-अव्वल 68 हि. में सानवी तालीम के काम को भी ख़ुदा का नाम लेकर शुरू कर दिया गया ताकि इक़ामते-दीन की जिद्दोजुहद के सिलसिले में इस्लामी निज़ाम को पेश करने और ग़ैर-इस्लामी निज़ामों पर ठोस तनक़ीद करने के लिए कुछ रुफ़क़ा तैयार

हो जाएँ। फ़ौरी तौर पर पाँच ऐसे छात्र ज़ेरे-तालीम हैं जो एक आलिमे-दीन रुक्ने-जमाअत की ख़िदमत से फ़ायदा उठा रहे हैं। अरबी और दीनी तालीम के शोबे (विभाग) में एक और टीचर की ज़रूरत महसूस की गई है और तलाश बराबर जारी है। लेकिन अभी तक कामयाबी नहीं मिल सकी है। सानवी तालीम में अरबी का निसाब फ़िलहाल 3 साल पर मुश्तमिल (आधारित) है लेकिन जदीद उलूम के सिलसिले में सिर्फ़ मआशियात (अर्थशास्त्र), तारीख़ (इतिहास) और इमरानियात (सामाजिक विज्ञान) का अध्ययन छात्र बिना किसी उस्ताद की मदद के कर रहे हैं। उम्मीद है कि सानवी तालीम के इस ग्रुप की तैयारी से तहरीके-इस्लामी को इंशाअल्लाह अच्छे कारकुन मिलेंगे।

तरबियत गाह

जिस तरह हर काम के लिए इल्मी और अमली तैयारी की ज़रूरत होती है, उसी तरह इक़ामते-दीन के सिलसिले में भी ऐसी इल्मी और अमली तैयारी और तरबियत की ज़रूरत है जिससे तहरीक के कारकुनों को इक़ामते-दीन के मक़सद और उसे हासिल करने के सिलसिले में ज़रूरी जानकारियाँ हासिल हो सकें और ये मालूमात केवल मालूमात की ख़ातिर न की जाएँ बल्कि इस तालीम के मुताबिक़ तहरीक के कारकुन अपने अमल का जाइज़ा लेकर अपना एहतिसाब (आत्म-मंथन) करें कि अल्लाह जिस अमल को पसन्द करता है, उसके वे किस हद तक पाबन्द हैं और जिस अमल से अल्लाह नाराज़ होता है उससे कहाँ तक वे बच रहे हैं और मुख़्तलिफ़ मौक़ों पर और मुख़तलिफ़ हालात में उनका तर्ज़े-अमल क्या और कैसा होना चाहिए।

हज़रात! यह है इल्मी और अमली तरबियत के मुताल्लिक़ हमारा नज़रिया लेकिन कुछ वे लोग जो हमारे मक़सद और नस्बुलऐन और तरीक़ा-ए-कार से वाक़िफ़ नहीं हैं, इस ग़लत-फ़हमी के शिकार हो जाया करते हैं कि जमाअते-इस्लामी का तरबियती कोर्स फ़ौजी ट्रेनिंग की तरह की कोई चीज़ है, लेकिन जिन लोगों ने रिसाला "ज़िन्दगी" में अमीरे-जमाअत की

इस तक़रीर का मुताला किया है जो मौलाना मौसूफ़ ने तरबियतगाह के इफ़्तिताह (उद्घाटन) के मौक़े पर की थी, वे अच्छी तरह समझ सकते हैं कि तरबियत से हमारा मक़सद तज़किया-ए-नफ़्स (मन को पाक-साफ़ करने) तहज़ीबे-अख़लाक़ और आमाल की इस्लाह के अलावा कुछ और नहीं है।

तरबियत की ज़रूरत और अहमियत के पेशे-नज़र जमाअत की तशकील के वक़्त ही से हमारी यह ख़ाहिश थी कि इस काम को मर्कज़ की निगरानी में बाक़ायदा शुरू कर दिया जाए लेकिन जब तक हमारा मर्कज़ मलीहाबाद में रहा हम इस काम को इमारत की कमी और दूसरी परेशानियों की वजह से शुरू नहीं कर सके थे। लेकिन तरबियत की इस कमी को किसी-न-किसी तरह पूरा करने के लिए कुछ दूसरे ज़रिओं से हम मदद लेते रहे। हमने यह महसूस किया था कि क़य्यिमों के अपने हल्क़ों में बार-बार जाने और हल्क़े के अरकान व हमदर्दों से निजी ताल्लुक़ पैदा करने की बहुत ज़्यादा ज़रूरत है और इसी ज़रूरत की वजह से अरकान व हमदर्दों की तरबियत का इन्तिज़ाम भी ख़ास तौर से क़य्यिम हज़रात के अधिकार क्षेत्र में दे दिया गया था ताकि वे इस सिलसिले में मुनासिब तदबीर अपना सकें।

हमारा यह ख़याल भी था कि जिस हद तक मुमकिन हो अरकान को एक-एक, दो-दो करके कभी-कभी मर्कज़ बुलाते रहें और उनको तरबियत का मौक़ा दें। लेकिन कुछ दुशवारियों की वजह से कोई क़ाबिले-ज़िक्र काम इस सिलसिले में इस तरह भी न हो सका। मगर हैदराबाद, दिल्ली और कुछ दूसरी जगहों पर कुछ तरबियतगाहों का इन्तिज़ाम किया गया था जिनसे हमारे वहाँ के रुफ़क़ा ने कुछ फ़ायदा उठाया लेकिन चूँकि बड़े पैमाने पर इन्तिज़ाम किए बग़ैर तरबियत का वह मक़सद हासिल न हो सकता था जो हमारे पेशे-नज़र था, इसलिए ख़ुदा का नाम लेकर माह ज़ीक़ादा 1369 हि. को तरबियत के काम को मर्कज़ के मातहत रामपुर में शुरू कर दिया गया। चुनाँचे अब तक 51 रुफ़क़ा मर्कज़ी तरबियतगाह से फ़ायदा उठा सके हैं लेकिन दूर-दराज़ के रुफ़क़ा को मर्कज़ी तरबियतगाह से फ़ायदा उठाने में अमली दुशवारियाँ पेश आ रही हैं। तरबियत का अस्ल फ़ायदा तो उस वक़्त

हासिल हो सकता है जबकि तरबियतगाह मर्कज़ में हो। लेकिन जो रुफ़क़ा बावजूद मुमकिन कोशिश के मर्कज़ी तरबियतगाह से फ़ायदा नहीं उठा सकते उनकी सहूलत के लिए मक़ामी और गश्ती तरबियतगाहों के खोलने का भी फ़ैसला किया गया है ताकि रुफ़क़ा की एक हद तक तरबियत हो सके। इसी के साथ यह भी तय किया गया है कि क़य्यिम हज़रात की मख़सूस तरबियत की जाए और उन हज़रात की तरबियत को अव्वल समझा जाए जो अपने मक़ामात पर जाकर दूसरों की तरबियत कर सकें। ये तमाम काम आहिस्ता-आहिस्ता ही हो सकेंगे। लेकिन उम्मीद है कि अल्लाह ने चाहा तो इस तरह तरबियत का काम ज़्यादा बेहतर और असरदार तरीक़े पर हो सकेगा और रुफ़क़ा की बड़ी तादाद इससे फ़ायदा हासिल कर सकेगी।

मालियात

हज़रात! जो लोग अपने आपको अल्लाह की राह में पेश कर देते हैं वे अपनी दूसरी क़ुव्वतों के साथ ही अपने माल को भी उसकी राह में ख़र्च करना अपनी ख़ुशनसीबी समझते हैं। हक़ीक़त यह है कि अगर यह जज़्बा काम न कर रहा हो तो दौलत के ढेर भी किसी काम के नहीं। यही वजह है कि हमारे यहाँ न तो किसी चन्दे की अपील की गुंजाइश है और न हम उन हज़रात से कोई मदद लेते हैं जो हमारे मक़सद का शऊर नहीं रखते। क्योंकि जब तक इनफ़ाक़ फ़ी सबीलिल्लाह (अल्लाह के रास्ते में ख़र्च करने) की ज़रूरत और अहमियत का एहसास लोगों के दिलों में मौजूद न हो उस वक़्त तक माली मदद चाहे थोड़ी हो या बहुत कोई फ़ायदा नहीं पहुँचा सकती।

बैतुलमाल की आमदनी का ज़रिआ

देश के बँटवारे के नतीजे में चूँकि भारत और पाकिस्तान की जमाअतें अलग-अलग हो गईं इसलिए बँटवारे से पहले के हिन्दुस्तान की पुरानी जमाअत की तमाम जायदादें भी इन दोनों नई जमाअतों में तक़सीम हो गईं। चुनाँचे जमाअते-इस्लामी हिन्द को कुछ रक़म नक़द और कुछ किताबों की शक्ल में मिली थी। उसके बाद हमारी आमदनी का सबसे बड़ा ज़रिआ जमाअत का मक्तबा हो सकता था, लेकिन जैसा कि ऊपर बताया गया है

तरह-तरह की मजबूरियों की वजह से एक अर्से तक हम ज़रूरत के मुताबिक़ किताबों के छपवाने का इन्तिज़ाम न कर सके। इससे हमारे बैतुलमाल पर ख़ासा असर पड़ा। मगर अब ख़ुदा के फ़ज़्ल से यह रुकावट एक हद तक दूर हो गई है और मक्तबे को अपना काम करने में पहले से कुछ सहूलत हो गई है। इसके अलावा कुछ रुफ़क़ा की तरफ़ से भी सीधे तौर पर इमदाद की रक़में आती रहती हैं और हल्क़ों के बैतुलमालों से भी कुछ रक़में मुन्तक़िल होती रहती हैं। पहले तो मक़ामी बैतुलमालों की आमदनी का सिर्फ़ 25% हिस्सा हल्क़ों के बैतुलमालों में मुन्तक़िल होता था लेकिन अब हल्क़ों की मुख़्तलिफ़ ज़रूरतों के पेशे-नज़र मक़ामी बैतुलमालों की कुल आमदनी का 40% हिस्सा हर महीने हल्क़ों के बैतुलमालों में मुन्तक़िल कर दिया जाता है। इसी के साथ यह हिदायत भी कर दी गई है कि हर तिमाही पर मुक़ामी बैतुलमाल की ज़रूरत से ज़्यादा बची हुई रक़में हल्क़े के बैतुलमाल में मुन्तक़िल कर दी जाया करें, ये रक़में इआनत (इमदाद) और ज़कात पर मुश्तमिल (आधारित) होती हैं।

ज़कात एक अहम फ़र्ज़ है और इसके इजतिमाई फ़ायदे अनगिनत हैं। इस्लाम ने ज़कात के जमा करने और उसको तक़सीम करने का नज़्म भी इजतिमाई रखा है। यह अहम पहलू आज मुसलमान मुआशरे में बहुत कमज़ोर है। दर-अस्ल ज़कात के बेशुमार फ़ायदे उसके इजतिमाई तौर पर नज़्म क़ायम किए जाने पर ही हासिल हो सकते हैं। अल्लाह का शुक्र है कि हमारे तमाम अरकान और ज़्यादातर हमदर्द हज़रात अपनी ज़कात जमाअत के बैतुलमाल ही में देते हैं ये रक़में उन्हीं मदों में ख़र्च होती हैं जो इस्लाम ने तय की हैं। उन रक़मों का बड़ा हिस्सा मक़ामी तौर पर ही ख़र्च किया जाता है। कुछ हिस्सा हल्क़े और कुछ मर्कज़ी बैतुलमाल से भी तयशुदा मदों में ख़र्च किया जाता है। जमाअत की तशकील से अब तक ज़कात की मद से मुख़्तलिफ़ मक़ामात पर इमदाद पानेवालों की तादाद सोलह सौ या सतरह सौ के क़रीब है। मर्कज़ी बैतुलमाल की ज़कात की मद से फ़साद और सैलाब से मुतास्सिर इलाक़ों के कुछ मुस्तहिक़ीन की भी मदद की गई है।

ख़र्चों की मदें

मर्कज़ी बैतुलमाल की आमदनी मक्तबा, प्राइमरी व सानवी दर्सगाहें, तरबियतगाह, शोबा-ए-तहक़ीक़ व तसनीफ़ और मर्कज़ी दफ़्तरों की मदों में ख़र्च होती है। इसके अलावा अमीरे-जमाअत और क़य्यिमे-जमाअत (महासचिव) वग़ैरा के दौरों पर भी ख़र्च होती है, फिर इजतिमाआत और ज़रूरतमन्द हल्क़ों की मदद वग़ैरा पर भी ख़र्च होती है।

जमाअत की माली हालत रुफ़क़ा की आम माली मजबूरियों और परेशानियों की वजह से अच्छी नहीं है। हमारे बहुत से इरादे और मनसूबे जिनपर काम की तरक़्क़ी का बहुत कुछ दारोमदार है अभी तक सिर्फ़ इसी लिए अमल में नहीं लाए जा सके कि हमारी माली हालत उनके बोझ को सहन नहीं कर सकती। जैसे कि हमें इसकी ज़रूरत शिद्दत से पेश आ रही है कि बहुत से हल्क़ों और ज़िलों में काम को बाक़ायदा नज़्म के साथ करने और उसकी रफ़्तार को आगे बढ़ाने के लिए रुफ़क़ा की ज़रूरत है, जो इस तरह के कामों के लिए अपना पूरा वक़्त दे सकें। यह ज़रूरत भी माली दुशवारियों की वजह से अब तक टलती चली जा रही है, फिर प्राइमरी दर्सगाह, सानवी दर्सगाह, तरबियतगाह, लिट्रेचर की इशाअत, क़ुरआन का हिन्दी तर्जुमा और इसी तरह के बहुत से छोटे-बड़े इन्तिज़ामात के लिए बहरहाल रक़म की ज़रूरत है। इसका एहसास पिछली मजलिसे-शूरा के मौक़े पर तमाम अरकाने-शूरा को हुआ था, लेकिन बावजूद शदीद ज़रूरतों के जैसा कि अमीरे-जमाअत ने फ़रमाया था हम खुद रुफ़क़ा से भी अपील करना मुनासिब नहीं समझते, हम अल्लाह का शुक्र अदा करते हैं कि उसने हर हाल में हमारी मदद की है हमने जिन कामों का इरादा किया है अल्लाह ने अपने फ़ज़्ल व करम से हमारी राहें खोल दी हैं, और हमें यक़ीन है कि अगर हमारे आमाल और नीयतें अल्लाह के फ़ज़्ल व रहमत की हक़दार हैं तो उसी तरह आगे भी राहें खुलती जाएँगी और हमें वह सब कुछ हासिल हो जाएगा जिसका वादा अल्लाह तआला ने अपने मक़बूल बन्दों की ज़बान से किया है।

"ऐ हमारे रब! हमको वह कुछ अता कर जिसका वादा तूने अपने रसूलों से हमारे लिए किया है, हमें क़ियामत के दिन रुसवा न करना। बेशक तू अपने वादे की ख़िलाफ़वर्ज़ी नहीं करता। हमारी यह दुआ क़बूल कर।"

(मुहम्मद यूसुफ़, क़य्यिमे-जमाअत, 20 अप्रैल, 1951 ई.)

क़य्यिमे-जमाअते-इस्लामी हिन्द की रिपोर्ट 10:30 बजे ख़त्म हुई। इसके बाद हल्क़ा रामपुर, हल्क़ा मैसूर और हल्क़ा शाहजहाँपुर की रिपोर्टें उन हल्क़ों के क़य्यिमों (सचिवों) ने पेश कीं और इस इजलास की कार्रवाई 11:30 बजे ख़त्म हुई।

11:30 बजे से लेकर 3:30 बजे तक का वक़्त खाने और नमाज़ के लिए था। हाज़िरीन प्रोग्राम के मुताबिक़ खाने और जुमा की नमाज़ से फ़ारिग़ हुए। जुमा की नमाज़ शहर की जामा मस्जिद में अदा की गई। यह मस्जिद शहर की सबसे बड़ी मस्जिद है और आम दिनों में भी जुमा की नमाज़ में यहाँ नमाज़ियों की अच्छी ख़ासी तादाद होती है, लेकिन इजतिमा के शुरका की शिरकत ने तादाद में ग़ैर-मामूली इज़ाफ़ा कर दिया था जो नमाज़ियों के लिए एक रूह-परवर नज़ारा था, जिसको आम तौर पर लोग हैरत व ताज्जुब की नज़रों से देख-देखकर खुश हो रहे थे।

दूसरी निशस्त (बैठक) के लिए इजतिमागाह में सुबह की तरह जगह भरने लगी।

दूसरी निशस्त (3:30-5:00 बजे)

इस इजलास में राजिस्थान, अरकाट, कलकत्ता (कोलकाता), भोपाल, बाराबंकी, मालाबार व दकन वग़ैरा हल्क़ों की रिपोर्टें वहाँ के क़य्यिमों (सचिवों) ने पढ़कर सुनाई और इसकी कार्रवाई प्रोग्राम के मुताबिक़ 5 बजे ख़त्म हो गई।

अस्र की नमाज़ के बाद रुफ़क़ा आपसी तआरुफ़ और मुलाक़ात में लगे रहे और फिर मग़रिब की नमाज़ और खाने के बाद इशा तक यह सिलसिला

जारी रहा। आज रात में कोई प्रोग्राम नहीं रखा गया था ताकि रुफ़क़ा जो लम्बा सफ़र करके आए थे रात में आराम से सो सकें।

(21 अप्रैल 1951, दिन सनीचर)

दर्से क़ुरआन

दूसरे दिन सुबह को फ़ज्र की नमाज़ के बाद मौलाना सदरुद्दीन साहब इस्लाही ने माइक से दर्से-क़ुरआन दिया। सूरा-2 बक़रा, आयत-207 से 214 तक का आसान तर्जमा बयान करने के बाद मौलाना ने इन आयतों पर नीचे लिख़ी वज़ाहती तक़रीर की!

हज़रात! क़ुरआन इनसानों को दो गरोहों में बाँटता है। एक वह गरोह जो दुनिया पर मर मिटनेवाला और अपनी ख़ाहिशों का ग़ुलाम है, दूसरा वह जो ख़ुदा का परस्तार है। ख़ुदापरस्ती का मतलब उसके लफ़्ज़ों में यह है कि इनसान एक बड़ा सौदा करे, अपनी जान या यूँ कहिए कि उसका जो कुछ है वह सब बेच दे और उसके बदले अल्लाह की ख़ुशनूदी क़ीमत के तौर पर क़बूल कर ले। आप जानते हैं कि बेची वह चीज़ जाती है जिसकी ज़रूरत व अहमियत बदले में पाई जानेवाली चीज़ के मुक़ाबले में कुछ कम होती है। और क़ीमत क़बूल वह चीज़ की जाती है जिसकी क़ीमत बेची जानेवाली चीज़ से ज़्यादा होती है। गोया दूसरा गरोह वह गरोह है जो अल्लाह की रिज़ा को अपनी जान से भी ज़्यादा पसन्दीदा और महबूब समझता है। शायद यह बताने की ज़रूरत नहीं कि यही वह गरोह है जिसको उम्मते-मुस्लिमा कहा जाता है और जिससे हमारा आपका ताल्लुक़ है।

सवाल पैदा होता है कि अल्लाह को ख़ुश करने की राह क़ौन सी है? क़ुरआन कहता है कि मैं इस सवाल का ख़ुद जवाब हूँ। अल्लाह अपने बन्दों के लिए पूरी तरह मेहरबान है। उसने तुम्हें एक पल के लिए भी इस चीज़ की तलाश में हैरान व परेशान देखना गवारा नहीं किया। उसने अपनी मरज़ियात की पूरी तफ़सील मेरी हिदायात व अहकाम की शक्ल में तुम्हारे हवाले कर दी है। लिहाज़ा जिन्हें अल्लाह की रिज़ा प्यारी है और इसके लिए वे क़ुरआन को मरज़ियाते-इलाही के इस मजमूए को क़बूल कर चुके हैं, कर रहे हैं और

आगे भी करनेवाले हैं, उन्हें अपने किए हुए "सौदे" को भूलना नहीं चाहिए। अब उनके लिए अमल का एक ही रास्ता सही है और वह यह कि अपने आपको उन मरज़ियाते-इलाही का पूरा पाबन्द बना दें। उन अहकाम की बिना शर्त इताअत करें जो अल्लाह की किताब से उन्हें मिलें और अपनी पूरी ज़िन्दगी को उन हिदायतों की अमली तफ़सीर बना दें जो अल्लाह के रसूल (सल्ल.) ने उन तक पहुँचाई है। उन्हें इस बात का हरगिज़ कोई हक़ नहीं कि अहकाम और हिदायतों और मरज़ियात में अपनी पसन्द को दख़ल दें। यह बहुत बड़ी ग़द्दारी और बददियानती है कि इतने "क़तई सौदे" (पूर्ण-सौदे) के बाद भी वे पसन्द और नापसन्द की रविश अपनाएँ और अपनी दुनियवी ख़ाहिशों, अपनी मिल्ली मसलिहतों, अपने जानी और माली फ़ायदों, या किसी भी ग़रज़ के दबाव में आकर क़ुरआन के कुछ हुक्मों को क़बूल करें और कुछ को छोड़ दें। यह न तो "अल्लाह की मरज़ी" की तलब और जुस्तजू है, न ही ख़ुदा के हुक्मों की इताअत, यह तो हक़ीक़त में अपने "नफ़्स की मरज़ी" की तलब और जुस्तजू है और उसी के हुक्मों व क़ानूनों की पैरवी जो असल में शैतान की तलब, रज़ा और पैरवी का दूसरा नाम है। अफ़सोस है अगर सरापा रहीम व करीम ख़ुदा को छोड़कर इनसान शैतान जैसे खुले दुश्मन के पीछे चलने लगे और वह भी इस हाल में कि ज़बान से बराबर अल्लाह की फ़रमाँबरदारी के नारे बुलन्द कर रहा हो। मगर ऐ ईमान के दावेदारो, याद रखो इसका अंजाम अच्छा न होगा। अगर तुमने अपनी जान बेच देने के बाद भी उसे अपने ही क़ब्ज़े में रखने की चाल चली और हमारे रसूल (सल्ल०) की बिना शर्त इताअत और हमारी किताब की मुकम्मल पैरवी न की, हालाँकि इनके ज़रिए ज़िन्दगी का एक ऐसा मुकम्मल और वाज़ेह हिदायतनामा तुमको मिल चुका है जिसकी रात भी दिन की तरह रौशन है, तो अल्लाह रब्बुल-आलमीन को न बेबस समझना और न ही बेकार। वह तुम को यह खेल यूँ ही खेलते देखकर ख़ामोश न रहेगा वह जब तुम्हारी पकड़ करना चाहेगा, तो मजबूर साबित न होगा। यह कोई अक़्लमन्दी की बात नहीं कि लोग हक़ के वाज़ेह हो जाने के बाद भी उसे टालते रहें और नफ़्स की पैरवी में लगे रहें। क्या आँखें खोलने और अमल करने का वक़्त वह होगा जब क़ियामत सामने आ खड़ी होगी और अमल की

मुहलत ख़त्म होकर हिसाब-किताब की तराज़ू लटका दी जाएगी। बनी-इसराईल की इबरत भरी दास्तान तुम्हारे सामने है। उनको कैसी-कैसी वाज़ेह (खुली हुई) हिदायतें दी गई थीं, मगर उन ग़फ़लत के मारों ने उस नेमत की क़द्र न पहचानी बल्कि उसकी शक्ल भी अपने क़ौल व अमल (कथनी-करनी) से इस तरह बदल डाली कि दूसरों के लिए दीने-हक़ की पहचान भी मुमकिन न रही। नतीजा यह हुआ कि रुसवाई के अज़ाब में आज वे बुरी तरह घिरे हैं। इस खुश-फ़हमी में न रहना चाहिए कि यह कुछ उन्ही के लिए मख़सूस सज़ा थी, नहीं, अल्लाह के यहाँ दो पैमाने नहीं हैं। जो भी यह हरकत करेगा सबको वह उसी अज़ाब का मज़ा चखाएगा।

यह सही है कि इस्लाम-मुख़ालिफ़ तुम्हारी राह में रुकावटें खड़ी करते हैं और दीन के अहकाम की पूरी इताअत तुमसे बड़ी क़ुरबानियाँ चाहती है। तुमको जान व माल और आराम व सुकून की बरबादी बरदाश्त करनी पड़ती है और तुम्हारी हालत पर ये लोग व्यंग्य करते हैं। तुम्हारा मज़ाक़ उड़ाते हैं मगर इन लोगों से तुम और क्या उम्मीद रखते हो। उनके सामने आख़िरत का फ़ायदा यानी अल्लाह की रज़ा है ही कब जो वे तुम्हारे नज़रिये को समझ पाएँ। ये तो अपनी जानें दुनिया के बदले बेचे हुए हैं और दुनिया का चन्द रोज़ का ऐश ही उनकी ज़िन्दगी का मक़सद है। लेकिन तुम्हें तो यक़ीन है कि अस्ल ज़िन्दगी आख़िरत की ज़िन्दगी है। इस ज़िन्दगी में ऐशो-इशरत का नक़्शा उलट जाएगा। वहाँ अहले-ईमान ही सर बुलन्द होंगे और जितना कुछ उन्होंने अल्लाह के नाम पर यहाँ खोया होगा उसका कई गुना वहाँ उनके हाथ आएगा। आख़िर अल्लाह के ख़ज़ाने में कमी किस चीज़ की है? इन हक़ के दुश्मनों की ये दुनियापरस्ती कोई अच्छी चीज़ नहीं। यही तो वह फ़साद की जड़ है जिससे हमेशा से कुफ़्र की कोंपलें फूटती रहती हैं। यह न हो तो शर (बुराई) का हंगामा ही ख़त्म हो जाए। सारे इनसान अपनी अस्ल फ़ितरत और अपनी असली शाहराहे-अमल के लिहाज़ से एक ही गरोह और एक ही मिल्लत हैं। यह सारा मतभेद जो तुम देख रहे हो वह हक़ीक़त में इसी दुनिया परस्ती और खुदा से बेज़ारी का नतीजा है। यह इनसान का अपनी असली फ़ितरत और दीने-फ़ितरत से मुँह मोड़ना ही था जिसकी वजह से अल्लाह रहमान व रहीम ने लगातार अपने नबी भेजे जिनके साथ हक़ का पैग़ाम था

ताकि वे उस इख़्तिलाफ़ को दूर कर दें जो लोगों के अन्दर ज़िन्दगी की हक़ीक़तों के बारे में पैदा हो गया था। अफ़सोस कि ये मतभेद और मुँह मोड़नेवाले वे लोग थे जिन्हें हक़ की रौशनी अच्छी तरह दिखाई जा चुकी थी और जो सब कुछ देखने के बावजूद सिर्फ़ ज़िद व हठधर्मी में आकर अन्धे बने थे। बहरहाल अल्लाह की मशीयत (नियति) लोगों की आँखें खोलने का पूरा सामान करती रही और जो हक़ के सच्चे चाहनेवाले थे, उन्हें अल्लाह उस हिदायत के क़ानून की सीधी राह दिखाता रहा। यही तारीख़ी दावत व हिदायत है जो आज तुम्हारी सरज़मीन में दोहराई जा रही है और आख़िरी बार दोहराई जा रही है। लिहाज़ा यहाँ भी जो सीधे रास्ते के चाहनेवाले थे उनके सामने जब सच्चाई का राजमार्ग इख़्तिलाफ़ (मतभेद) के झाड़-झंकाड़ से पाक-साफ़ करके रखा गया तो वे उसपर चल पड़े, मगर जिनको बातिल (असत्य) ही से प्रेम था और जिन्हें अल्लाह की रज़ा से बढ़कर अपने नफ़्स की ख़ाहिशों का एहतराम ज़्यादा पसन्द था उन्हें उसकी मुख़ालिफ़त करनी ही चाहिए थी और फिर इस मुख़ालिफ़त को व्यंग एवं कटाक्ष, आरोप और झूठे इल्ज़ामात, दिल दुखाने व तकलीफ़ देने यहाँ तक कि ज़ुल्म ढाने और ख़ून-ख़राबे की शक्लें अपनानी ही चाहिए थी। फिर तुम इस सूरतेहाल को उम्मीद के ख़िलाफ़ न समझो। वह अपना काम करेंगे। तुम्हें अपना फ़र्ज़ अंजाम देना है। फिर तुमने तो अपना सब कुछ अल्लाह के हवाले करने का एलान किया है तो क्या यह समझते हो कि वह तुम्हारे इस ज़बानी एलान को काफ़ी समझ लेगा और जन्नत का परवाना तुम्हारे हाथों में दे देगा? याद रखो यह उसका दस्तूर (नियम) नहीं। उसने कभी ऐसा नहीं किया। आज से पहले भी जब तुम्हारी तरह कुछ लोगों ने हक़ की पैरवी का दावा किया और हक़ की दावत का साथ दिया तो उनसे उस दावे की सच्चाई का अमली सुबूत माँगा गया। यह अमली सबूत ही था कि हक़ के दुश्मनों की तरफ़ से दी जानेवाली मुसीबतों को हिम्मत के साथ बरदाश्त करें। ये मुसीबतें मामूली नहीं बल्कि दिलों को हिला देनेवाली, सख़्त और जान को घुला देनेवाली होतीं। ऐसी कि वे चीख़ उठते और वे क्या अल्लाह का नबी भी पुकार उठता, ख़ुदाया अब हमारी क़ुव्वते-बर्दाश्त का ज़्यादा इम्तिहान न ले। तेरी मदद कब आएगी? फिर यह वक़्त होता जब अल्लाह की मदद आ

जाती। यही क़ानूने-इब्तिला (परीक्षा का सिद्धान्त) तुम्हारे मामले में भी लागू है। इस बात को अच्छी तरह समझ लो कि बग़ैर आज़माए हुए ईमान के किसी दावेदार को ईमान की सनद हासिल नहीं होती और अल्लाह की मदद हालाँकि मोमिनों के लिए ख़ास है लेकिन उसके ज़ाहिर होने का वक़्त भी तय है और वह यह कि पहले अपनी क़ुव्वते-बर्दाश्त की हद तक इन आज़माइशों का मुक़ाबला कर लो और जो कुछ तुम्हारे पास है उसे राहे ख़ुदा में ला हाज़िर करो। यानी साबित कर दो कि हमने जो मामला "जान के सौदे" का किया था उसमें हम सच्चे थे, उसके बाद अपनी क़ीमत वुसूल करो। जिसकी पहली क़िस्त यह फ़तह व मदद है और आख़िरी क़िस्त रज़ा-ए-इलाही।

हज़रात! इस खुलासे के बाद आपसे मुझे सिर्फ़ यह कहना है कि ज़रा ग़ौर कीजिए। ये आयतें कुछ आपसे भी तो नहीं कह रहीं हैं?

नाश्ते से फ़ारिग़ होने के बाद तीसरी निशस्त (बैठक) की तैयारी शुरू हो गई।

तीसरी निशस्त (बैठक) 7:30 से 11:30

इस बैठक में बाक़ी हल्क़ों की रिपोर्टें जैसे कानपुर, लखनऊ, मुम्बई, तमिलनाडु, इलाहाबाद, बनारस, बिहार व दिल्ली की तरफ़ से इन हल्क़ों के क़य्यिमों (सचिवों) ने पेश कीं। यह सिलसिला 9:40 तक जारी रहा, रिपोर्टों के बाद अमीरे-जमाअत ने उनपर निम्नलिखित तबसिरा (टिप्पणी) किया। हम्द व सना के बाद!

मुहतरम हाज़िरीन! क़य्यिम हज़रात की रिपोर्टें आपने सुन लीं। इन रिपोर्टों का मक़सद जैसा कि आपको मालूम है, यह होता है कि तहरीके-इस्लामी से वाबस्ता होकर जो लोग काम कर रहे हैं और उनको जो परेशानियाँ व रुकावटें इस सिलसिले में पेश आ रही हैं वे पूरी तरह ज़ाहिर हो जाएँ ताकि जब आप मसाइल पर ग़ौर करने के लिए जमा हों तो तमाम सूरतेहाल आपके सामने हो। जो रिपोर्टें आपने सुनी हैं उनसे यह मक़सद कहाँ तक पूरा हो सका इसका सही अन्दाज़ा वही लोग कर सकते हैं जिनको पहले से पूरे हालात मालूम नहीं हैं और वे इसकी ज़रूरत महसूस करते हैं। लेकिन

जहाँ तक मैं अन्दाज़ा कर सका हूँ मेरा ख़याल यह है कि उस असली मक़सद के पेशे नज़र रिपोर्टों में काफ़ी ख़ामियाँ मौजूद हैं। कुछ रिपोर्टों में ग़ैर-ज़रूरी तफ़सीलात आ गई हैं और जिन कामों को तफ़सील से बयान करने की ज़रूरत थी उनकी तरफ़ या तो तवज्जोह नहीं दी गई या सिर्फ़ इशारों को ही काफ़ी समझ लिया गया है। कुछ रिपोर्टों में वे ज़रूरी तफ़सीलात भी नहीं हैं जो उमरा-ए-जमाअत की रिपोर्टों में मिलती हैं। फिर भी इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि इन सरसरी ख़ामियों के बावजूद हर हल्क़े के बहुत कुछ हालात सामने आ गए हैं जो उनके काम की नौईयत व रफ़्तार वग़ैरा को समझाने के लिए एक हद तक काफ़ी हैं। इन रिपोर्टों से मजमूई तौर से काम का जो अन्दाज़ा होता है इसके बारे में मेरा पहला तास्सुर यह है –

अल्लाह का शुक्र है कि काम मायूस करनेवाला नहीं है बल्कि हक़ीक़त यह है कि जब मैं मुश्किल हालात को सामने रखकर ग़ौर करता हूँ तो हमारे रुफ़क़ा ने जो कुछ भी किया है वह मुझे सिर्फ़ ख़ुदा का फ़ज़्ल व एहसान नज़र आता है और मेरा दिल उसकी हम्द व सना के जज़्बात से भर जाता है। अव्वल तो हमारे रुफ़क़ा की तादाद अभी बहुत थोड़ी है और जो तादाद है वह भी बहुत सख़्त माली मुश्किलों में गिरफ़्तार है। एक तरफ़ वे आम मुश्किलें हैं जो हर क़ौम और ख़ास तौर से मुस्लिम क़ौम को हिन्दुस्तान में पेश हैं जिनसे ज़ाहिर है कि हमारे रुफ़क़ा को भी निबटना पड़ रहा है और दूसरी तरफ़ हराम व हलाल की समझ ने हमारे रुफ़क़ा के लिए कुछ ख़ास मुश्किलें पैदा कर दी हैं। वे हर लुक़मे और पानी के हर घूँट को इस्तेमाल करने से पहले उसे जाइज़ व नाजाइज़ और हराम व हलाल की छलनी में छान लेने के ख़ाहिशमंद हैं और यह ज़ाहिर बात है कि मौजूदा बिगड़े हुए निज़ामे-मईशत (अर्थव्यवस्था) में रिज़्क़ की बहुत कम मिक़दार ऐसी होती है जो जाइज़ व नाजाइज़ की जाँच-पड़ताल के बाद इस्तेमाल के लिए बच सके। इसलिए ज़रूरी है कि रुफ़क़ा अपनी रोज़ी की तलाश में अपने वक़्त का बड़ा हिस्सा ख़र्च करने पर मजबूर हों और अपनी ख़ाहिश के बरख़िलाफ़ अपने मक़सद की तबलीग़ में पूरा हिस्सा न ले सकें।

दूसरी ज़बरदस्त रुकावट मुल्क की मौजूदा फ़िरक़ावाराना सूरतेहाल है जिसमें बहुतों के लिए इस्लाम का नाम लेना भी मुश्किल मालूम होता है और बहुत से लोग हैरत के साथ पूछते हैं और मुमकिन है वे उसे ख़ालिस जुनून ही समझते हों कि इन हालात में इस्लाम का नाम लेने की गुंजाइश ही क्या है? हालाँकि फ़िरक़ावाराना सूरतेहाल उसूलन एक दावत के लिए रुकावट नहीं बन सकती थी, जो उसूली दावत हो और किसी ख़ास मुल्क और क़ौम के साथ मख़सूस न हो, लेकिन चूँकि दावत के उसूली होने के बावजूद उसका मुस्लिम क़ौम के साथ एक खुसूसी लगाव इस मानी में है कि वे इस दावत के नाम लेवा हैं और हम भी इस उम्मीद पर कि जब वे इस्लाम के नुमाइन्दे समझे जाते हैं तो वे सही मानी में इस्लाम के अलमबरदार बनें। ताकि उनकी सीरत व किरदार से लोगों पर इस्लाम का अच्छा असर पड़ सके, उनकी तरफ़ कुछ ख़ुसूसी ध्यान देने पर मजबूर हैं और बदगुमानियों के इस दौर में यह चीज़ तरह-तरह की रुकावटों का सबब बन जाती है जिनसे निबटना यक़ीनन कोई आसान काम नहीं है।

तीसरी रुकावट खुद मुसलमानों का मौजूदा ख़ौफ़ व घबराहट भी है। कुछ ही समय पहले इन्हीं क़ौमी और फ़िरक़ावाराना कशमकश की वजह से काफ़ी नुक़सान उठाना पड़ा है, जिसने उनके हौसलों को ठण्डा कर दिया और वे बहुत ज़्यादा मायूसी के शिकार हैं और चूँकि यह कशमकश इस्लाम ही के नाम पर हो रही थी इसलिए दहशतज़दा मुसलमान अब इसपर तैयार नज़र नहीं आते कि वे किसी ऐसी तहरीक से भी अपना ताल्लुक़ क़ायम कर लें जो फ़िरक़ावाराना बुनियादों की बजाए इस्लाम की उसूली बातों पर मबनी (आधारित) हो। इन वजहों से इस माहौल में खुद मुसलमानों में भी जिनका एक खुसूसी ताल्लुक़ इस्लाम से रहा है और है, काम करना बहुत मुश्किल हो गया है।

इन मुश्किलों को सामने रखकर रुफ़क़ा के कामों को देखा जाए तो वे कुछ बेहतर बल्कि कुछ ऐतिबार से इन्तिहाई हैरतअंगेज़ मालूम होंगे। मैं इसपर अल्लाह का शुक्र अदा करता हूँ और दुआ करता हूँ कि वह उसे क़बूल फ़रमाए और काम करनेवालों को अज्र व सवाब अता फ़रमाए।

लेकिन इसी के साथ मेरा तास्सुर यह भी है कि इन रुकावटों की मौजूदगी में भी जितने काम की हम उम्मीद कर सकते थे वे पूरे नहीं हो सके और मुझे ऐसा महसूस होता है कि इसकी कुछ-न-कुछ वजह हमारे रुफ़क़ा के शऊर (समझ) और ज़िम्मेदारी के एहसास की कमी भी रही है। रुकावटें अपनी जगह कितनी ही अहम क्यों न हों लेकिन उनको बहुत ज़्यादा अहमियत दे देना हमारे रुफ़क़ा की शान नहीं है और वे हक़ीक़त में इतनी अहमियत के क़ाबिल भी नहीं हैं कि जितनी अहमियत, उन्हें रिपोर्टों में दी गई है।

तादाद की कमी का उज़्र

अरकान की तादाद थोड़ी सही लेकिन हक़ीक़त यह है कि काम करनेवालों की गिनती सिर्फ़ अरकान को सामने रखकर नहीं की जा सकती। हमारे कितने हमदर्द व मुतास्सिर और मुतआरिफ़ (परिचित) लोग हैं जो किसी-न-किसी दर्जे में काम में हिस्सा लेते हैं और ऐसे लोग अल्लाह का शुक्र है अब हिन्दुस्तान के तक़रीबन हर हिस्से में पाए जाते हैं और बहुत से हमदर्द हज़रात तो ऐसे हैं कि वे काम करने में अरकान से पीछे नहीं बल्कि बहुतों से आगे हैं। फिर काम की पूरी ज़िम्मेदारी सिर्फ़ आप ही पर नहीं है बल्कि बहुत से ऐसे भी लोग हैं जो आपसे कोई जमाअती ताल्लुक़ नहीं रखते, अपने तौर से कुछ-न-कुछ काम कर रहे हैं और उनका काम बहरहाल किसी-न-किसी ज़रिए से आपका मददगार साबित होता है। ऐसी हालत में कारकुनों की कमी का शिकवा जो बहुत सी रिपोर्टों में किया गया है बहुत ज़्यादा दुरुस्त नहीं कहा जा सकता। ख़ास तौर से जब कि इस बात को भी पेशे-नज़र रखा जाए कि कलिमा-ए-हक़ अपने अन्दर खुद एक ऐसी ताक़त रखता है कि वह मामूली सहारे के बल पर भी लोगों के दिलों में घुसकर खुद अपनी राह पैदा कर ले।

माली परेशानियाँ

रुफ़क़ा की माली परेशानियाँ और मआश (रोज़गार) के लिए उनकी मसरूफ़ियतें बेशक एक उज़्र (मजबूरी) हैं लेकिन किसी तहरीक से वाबस्ता

लोगों के लिए इस मजबूरी की भी बहुत ज़्यादा अहमियत नहीं होनी चाहिए। दुनिया में जो लोग भी कोई काम करने उठते हैं, चाहे वह काम अपनी जगह अच्छा हो या बुरा, वे हमेशा वही लोग नहीं होते जो रोज़गार की फ़िक्र या ज़ाती परेशानियों से हर तरह आज़ाद और बिलकुल बेफ़िक्र हों बल्कि हक़ीक़त तो यह है कि जहाँ तक तहरीके-इस्लामी का ताल्लुक़ है, इस तरह के काम करनेवाले हमेशा वही लोग रहे हैं जो आर्थिक रूप से ख़ुशहाल नहीं थे। ख़ुशहाल वर्ग शुरू-शुरू में बहुत कम आता है और जो आता भी है तो वह मुख़्तलिफ़ अस्बाब के तहत आर्थिक तंगी का शिकार हो जाता है फिर भी काम का जो जोश और लगन उनमें पैदा हो जाती है। वह उनके अन्दर अपनी बदहाली का एहसास कभी पैदा नहीं होने देता। काम की लगन हर मुश्किल को आसान बना देती है। मैं अपने रुफ़क़ा से भी इसी हालत की उम्मीद रखता हूँ। ख़ास तौर से इसलिए कि जमाअते-इस्लामी जो काम चाहती है उसे आदमी हर हाल में और हर मौक़े पर अंजाम दे सकता है। इस काम का बस यही एक तरीक़ा नहीं है कि आदमी अपना वक़्त ख़ास तौर से इसके लिए मख़सूस करे तभी यह काम हो सके। रोज़गार की फ़िक्र और ज़रूरतों को पूरा करते हुए भी यह काम अंजाम दिया जा सकता है। शर्त यह है कि यह मक़सद सामने हो।

फ़िरक़ावाराना सूरतेहाल

जहाँ तक फ़िरक़ावाराना बदमज़गी और कड़वाहटों का ताल्लुक़ है उसको एक हद तक मैं भी रुकावट मानता हूँ लेकिन अव्वल तो देश के बँटवारे के बाद जो बुहरान (संकट) की हालत थी वह अब बाक़ी नहीं रह गई है। ग़ुस्से और नफ़रत की हालत में काफ़ी सुधार हो गया है, ये कैफ़ियतें हमेशा बाक़ी रहनेवाली हैं भी नहीं। ये वक़्त के साथ ख़ुद-ख़त्म हो जाया करती हैं। इनसान के अन्दर ख़ैर और शर दोनों उनसुर (तत्व) मौजूद हैं मगर याद रखना चाहिए कि शर हमेशा वक़्ती और हंगामी होता है और ख़ैर दाइमी और हमेशा रहनेवाला है। यह कुछ दिनों के लिए दब तो जाया करता है मगर मर नहीं जाया करता।

दूसरे यह कि पिछले दंगों के जो नतीजे सामने आए वे अपने आप में खुद दंगाइयों के लिए इबरतनाक साबित हुए हैं क्योंकि सिवाए तबाही, बरबादी और देश की बदनामी के उनसे कोई और नतीजा नहीं निकला है।

तीसरी बात यह है कि जो माक़ूल लोग दंगों के समय में अपना काम सिर्फ़ इतना ही समझते थे कि वे उनसे अलग-थलग रहें, दंगों के भयानक नतीजों के कारण उनकी आँखें खुल गई हैं और अब उन्होंने इसकी बहुत ज़्यादा ज़रूरत महसूस करनी शुरू कर दी है कि सिर्फ़ अलग-थलग रहना काफ़ी नहीं है, बल्कि उन्हें इस सूरतेहाल को बदलने के लिए भी जिद्दोजुहद करनी चाहिए। चुनाँचे इस तरह के लोग जिद्दोजुहद में लग गए हैं। इसके बहरहाल कुछ-न-कुछ नतीजे सामने आ रहे हैं।

चौथी बात यह है कि तक़सीम के बाद जो हालात पैदा हो गए वे यहाँ के मुसलमानों के पिछले तर्ज़े-ज़िन्दगी पर भी बहुत कुछ असर डाल गए हैं और मुसलमानों के तर्ज़े-अमल की तब्दीली अपने-आप में तब्दीली का एक बड़ा मुहर्रिक (उत्प्रेरक) है।

इन कारणों को सामने रखकर देखा जाए और साथ ही इस कशमकश के दौर के वाक़िआत का दिलो-दिमाग़ पर जो असर पड़ा था, उसे दूर करके हालात का जाइज़ा लिया जाए तो यह मालूम होगा कि काम के सिलसिले में पहले जो रुकावटें थीं उनमें अब बहुत हद तक कमी आ गई है। इसलिए रुकावट की हैसियत से साम्प्रदायिक मनमुटाव को बहुत ज़्यादा अहमियत दे देना सही नहीं है और मैं तो यह कहूँगा कि खुद इस कशमकश भरे दौर में भी काम के रास्ते इतने तंग नहीं थे जितने आम तौर से समझे जाते हैं, क्योंकि उस दौर में भी ऐसे संजीदा लोगों की कमी नहीं थी जो हर मुनासिब बात सुनने के लिए हर वक़्त तैयार रहते थे।

इस सिलसिले में एक बात और ग़ौर करने लायक़ है और वह यह कि साम्प्रदायिक मनमुटाव का पाया जाना हमारे लिए अमल का मुहर्रिक होना चाहिए न कि मायूसी और दिल तोड़नेवाला। जब शर और फ़साद का मिटाना ही आपका मक़सद है और इसी बिना पर आप भलाई और सुधार की

दावत लेकर उठे हैं और आप अपनी जगह यह भी महसूस करते हैं कि इस मर्ज़ का इलाज हक़ीक़त में आप ही के पास है तो इस सूरत में आपका घरों में बैठा रहना किसी तरह सही नहीं होगा। आपको बिलकुल निडर होकर घरों से निकलना चाहिए और इस मर्ज़ को दूर करने में अपनी पूरी ताक़त लगा देनी चाहिए। इस सिलसिले में यह बात भी याद रखिए कि साम्प्रदायिक कड़वाहटें दूसरे लोगों के लिए रुकावट हों तो हों लेकिन जहाँ तक हमारे तरीक़े पर काम करनेवालों का ताल्लुक़ है उनके लिए ये बहुत ज़्यादा अहमियत नहीं रखतीं। ये बहुत जल्द और आसानी से उनके सामने से हट सकती है शर्त यह है कि आप अपने उसूलों को सख़्ती के साथ अपनाए रहें और अपनी ज़िन्दगियों को अच्छी तरह उनके मुताबिक़ ढाल लें। आपके सामने कोई ऐसा काम नहीं है जिसमें आपका कोई क़ौमी या गरोही फ़ायदा शामिल हो, आप ऐसे उसूलों की तरफ़ दावत देनेवाले हैं जो पूरी इनसानियत की भलाई और कामयाबी का ज़रिआ हैं। ऐसी दावत और उसके पेश करनेवालों की मुख़ालिफ़त शुरू-शुरू में ग़लतफ़हमी की बिना पर ज़रूर की जा सकती है लेकिन ग़लतफ़हमी दूर कर दी जाए तो मुख़ालिफ़त का यह तर्ज़े-अमल फ़ौरन बदल सकता है।

हमें इससे भी इनकार नहीं कि बँटवारे के बाद जो हालात पैदा हुए हैं उनका मुसलमानों के ज़ेहनों पर ग़ैर-मामूली असर हुआ है। वे सख़्त मायूसी और घबराहट के शिकार हैं और यह चीज़ हमारी दावत की तरफ़ उनके बढ़ने में बड़ी हद तक रुकावट साबित हो रही है। लेकिन रिपोर्टों में जिस अन्दाज़ में मुसलमानों की मायूसी और ख़ौफ़ का ज़िक्र किया गया है उससे मुझे शक होता है कि ख़ुदा न-ख़ास्ता हमारे रुफ़क़ा तो मायूसी और ख़ौफ़ के शिकार नहीं हो रहे हैं। या फिर मैं यह सोचना शुरू कर देता हूँ कि हमारे रुफ़क़ा के सामने दावत के काम की सही नौइयत है भी कि नहीं। यही तो वे हालात हैं जिनमें काम की बहुत ज़्यादा ज़रूरत महसूस होती है। आप जो पैग़ाम पेश कर रहे हैं उसी से उनका ख़ौफ़ और मायूसी दूर हो सकती है क्योंकि आप अल्लाह पर ईमान और उस पर भरोसे की दावत देते हैं और यही वह चीज़ है जो मुसलमानों के दिलों से ख़ौफ़ और मायूसी को दूर कर सकती है। इसके अलावा इसको दूर करने की और कोई तदबीर मुमकिन ही नहीं। फिर आप

मुसलमानों के ख़ौफ़ का ज़िक्र करते वक़्त इस बात को भूल न जाएँ कि उनका यह ख़ौफ़ और घबराहट पिछली क़ौमपरस्ताना तहरीकों का नतीजा है, जिनमें बदक़िस्मती से खुद मुसलमान भी एक अर्से से मुब्तला रहे हैं और वे उनके नतीजों के सामने आ जाने के बाद इस तरह की तहरीकों से फ़ितरी तौर पर दूर रहना चाहते हैं। लेकिन आप जो दावत पेश कर रहे हैं वह क़ौमपरस्ताना और फ़िरक़ावाराना नज़रियात से बिलकुल अलग चीज़ है और उसके उसूल न सिर्फ़ मुसलमानों के लिए पसन्दीदा हो सकते हैं बल्कि ग़ैर-मुस्लिम भी उनको समझ लेने के बाद उनकी तरफ़ बढ़ने पर मजबूर हैं, क्योंकि ये वे उसूल हैं जिनकी ख़ाहिश हर नेक मिज़ाजवाले इनसान के अन्दर मौजूद है और जो अपने अन्दर एक ख़ास कशिश रखते हैं। इसलिए मुसलमानों का मौजूदा ख़ौफ़ और मायूसी इस दावत की तरफ़ बढ़ने में कोई रुकावट नहीं हो सकता। जो लोग इसके ख़िलाफ़ सोचते हैं मेरे नज़दीक वे मुसलमानों की नफ़्सियात (मनोविज्ञान) से दूर रहकर ग़ौर करनेवाले लोग हैं। लेकिन यह बात ज़रूरी है कि आपको इस सिलसिले में अनथक प्रयास करने की ज़रूरत है। आपको इस बात की पूरी-पूरी कोशिश करनी चाहिए कि मुसलमानों के ज़ेहन में यह बात बैठ जाए कि इस्लाम के उसूल क़ौमपरस्ताना नज़रियों की तरह किसी क़ौम को वुजूद में नहीं लाते बल्कि वे एक ऐसी उसूली पार्टी तैयार करते हैं जो क़ौमपरस्ती और फ़िरक़ापरस्ती के जज़बात से ऊपर उठकर सिर्फ़ अल्लाह की ख़ुशनूदी के लिए दुनिया में भलाई व सुधार को क़ायम करने की जिद्दोजुहद करे और पूरी इनसानियत की कामयाबी को अपना मक़सद बनाए। जिस वक़्त आप उनको उनकी यह हैसियत समझाने में कामयाब हो गए तो आप समझ लीजिए कि आपने दावत के सिलसिले में एक अहम मंज़िल तय कर ली। इसके बाद आपकी दावत उनके सामने उम्मीद व ख़ुशख़बरी की सूरत में दिखाई देगी। उनके उलझे और परेशान ज़ेहनों के लिए तस्कीन का सामान होगी, वे खुद यह समझने पर मजबूर होंगे कि यह कोई ख़ौफ़ की चीज़ नहीं बल्कि इसकी तरफ़ उनको बढ़ना चाहिए, क्योंकि हक़ीक़त में यही राह उनकी दुनियावी नजात व ख़ुशनसीबी की राह भी है।

बहरहाल रुकावटों को रुकावटें तसलीम करते हुए भी मेरा ख़याल है कि अगर हमारे रुफ़क़ा ने अपनी ज़िम्मेदारियों को ठीक-ठीक महसूस किया होता तो काम की रिपोर्ट यक़ीनन इससे अलग होती जो इस वक़्त पेश की गई है और उसके नतीजे में जमाअत से जुड़े लोगों का तनासुब (अनुपात) वह न होता जो हर रिपोर्ट में उस इलाक़े की कुल आबादी के मुक़ाबले में दिखाया गया है, बल्कि इससे कहीं ज़्यादा होता। मैं हरगिज़ इस ख़ाम ख़याली में मुब्तला नहीं हूँ कि हम अपने मौजूदा महदूद वसाइल व ज़राए के साथ इस थोड़ी सी मुद्दत में भारत की इतनी बड़ी आबादी को जो लगभग 36 करोड़ लोगों पर आधारित है अपना हम ख़याल बना सकते या दावत से वाक़िफ़ कर सकते थे, मैं जो कुछ कहना चाहता हूँ वह यह है कि हमने अपना काम सरगर्मी से और सलीक़े के साथ अंजाम दिया होता तो उसके नतीजे यक़ीनन इससे बेहतर साबित होते जितने इस वक़्त तक सामने आ सके हैं।

उलमा की तरफ़ से मुख़ालिफ़त

क़य्यिमीन सेक्रेट्रीज़ हज़रात ने काम की रुकावटों के सिलसिले में कुछ और बातों का भी ज़िक्र किया है, जिनमें बहुत सी बातें तो ऐसी हैं कि मुझे उनपर इस मौक़े पर कुछ कहने की ज़रूरत महसूस नहीं होती, क्योंकि उनके बारे में इससे पहले बहुत कुछ कहा जा चुका है और कुछ ऐसी बातें हैं जिनपर बातचीत का सही मौक़ा शायद तजावीज़ का हिस्सा होगा, लेकिन कुछ मामले ऐसे हैं जिनपर मैं इस मौक़े पर कुछ-न-कुछ इज़हारे-ख़याल करना ज़रूरी समझता हूँ। इस सिलसिले में पहली चीज़ उलमा की मुख़ालिफ़त है जिसका ज़िक्र कुछ रिपोर्टों में एक अहम रुकावट के तौर पर किया गया है।

इस सिलसिले में यह महसूस करके मुझे ख़ुशी हुई है कि आम तौर से क़य्यिमीन हज़रात ने उलमा की मुख़ालफ़त का ज़िक्र, जो यक़ीनन उनके लिए एक रंज (दुख) की बात है, बहुत शाइस्ता (सभ्य) अन्दाज़ में किया है जो इस बात की अलामत है कि हमारे रुफ़क़ा में अल्लाह के फ़ज़्ल से धीरे-धीरे यह सोच मज़बूत होती जा रही है कि वे मुख़ालिफ़त करनेवालों के ज़िक्र में भी हदों का ख़याल रखें, लेकिन इसी के साथ मुझे यह देखकर दुख

हुआ कि कुछ हज़रात का अन्दाज़ वैसा नहीं रहा जैसा होना चाहिए। उसमें तल्ख़ी व नागवारी का कुछ असर नुमायाँ हो गया है। हमारे रुफ़क़ा को इसमें एहतियात करनी चाहिए। उलमा बहैसियत आलिमे-दीन हमारी इज़्ज़त व एहतिराम के मुस्तहिक़ हैं और अगर उनका कोई रवैया क़ाबिले-शिकायत या उनके मंसब के ख़िलाफ़ हो भी तो हमें हर हाल में अपने सही उसूलों की पैरवी करनी चाहिए। इस बारे में उनका कोई ग़लत रवैया हमारे लिए नमूना नहीं बन सकता।

जहाँ तक उलमा की मुख़ालिफ़त का ज़िक्र है यह बात यूँ याद रखनी चाहिए कि उलमा बहैसियत जमाअत हमारे ख़िलाफ़ नहीं हैं। ख़ुद जमाअत में बहुत-से उलमा दाख़िल हैं जो किसी ख़ास दर्सगाह या मक्तबे-फ़िक्र व ख़याल से ताल्लुक़ नहीं रखते बल्कि मुख़्तलिफ़ मशहूर दर्सगाहों और मकातिबे-फ़िक्र से छट-छट कर आए हैं, और ऐसे उलमा की तादाद तो बहुत ज़्यादा है जो अमलन किसी वजह से हमारा साथ न दे रहे हों लेकिन वे हमारे काम को पसन्दीदा निगाहों से देखते हैं, और उनके अलावा जो उलमा हैं उनमें एक तबक़ा तो उन उलमा का है जो किसी वजह से अभी तक हमारी दावत से वाक़िफ़ ही न हो सका, इसलिए न वे हमारे ख़िलाफ़ हैं और न हमारे हम ख़याल। और दूसरा गरोह जो जानकारी रखता है उनमें कुछ लोग तो ऐसे हैं जिनको हमसे इस वजह से इख़्तिलाफ़ है कि अभी हमारी असल दावत अच्छी तरह समझ नहीं सके हैं और इस बिना पर वे कुछ ग़लतफ़हमियों या शुकूक व शुब्हात (सन्देहों) में मुब्तिला हैं, और उनके बारे में हम यक़ीन रखते हैं कि ज्यों ही हम उन ग़लतफ़हमियों को दूर करने में कामयाब हो गए, इंशाअल्लाह उनकी मुख़ालिफ़त ताईद व हिमायत में बदल जाएगी। जैसा कि उनमें से बहुतों के सिलसिले में अमलन हमने देखा है। और कुछ लोग ऐसे हैं जो हमसे कुछ छोटे-छोटे मसलों में इख़्तिलाफ़ रखते हैं या वे जमाअत से जुड़े लोगों से पूरी तरह मुत्मइन नहीं हैं इसलिए वे हमसे अलग-थलग हैं। लेकिन ये दोनों क़िस्म के उलमा इस तरह का मतभेद नहीं रखते कि वे हमारी दावत को ग़लत या इस्लाम के ख़िलाफ़ समझते हों। पूरी छानबीन के बग़ैर इस तरह का कोई फ़ैसला कर लेने को पहला गरोह तक़्वा,

परहेज़गारी व दियानतदारी के ख़िलाफ़ समझता है और दूसरा अपनी तहक़ीक़ के मुताबिक़ इस तरह के किसी फ़ैसले के लिए कोई जाइज़ वजह नहीं पाता। लिहाज़ा जब उलमा में इतनी क़िस्म के उलमा मौजूद हैं जो या तो सीधे तौर पर या बिलवास्ता आपकी दावत के हामी हैं या कम-से-कम इससे कोई उसूली इख़्तिलाफ़ नहीं रखते तो यह मान लेना कि उलमा की पूरी जमाअत आपकी मुख़ालिफ़ है या आपके काम को ग़लत समझती है, किसी तरह सही नहीं हो सकता।

हाँ यह कहा जा सकता है कि कुछ उलमा या उलमा का एक ख़ास गरोह ऐसा ज़रूर है जो जानते-बूझते हमारी मुख़ालिफ़त पर उतारू है और यह कभी शख़्सियतों की आड़ लेकर और कभी छोटे-छोटे मामूली इख़्तिलाफ़ात को बहाना बनाकर असल दावत ही की तरफ़ से लोगों के दिलों में नफ़रत भर देना चाहता है। अगरचे वह गरोह साफ़-साफ़ इस दावत को मुख़ालिफ़त का निशाना बनाने की हिम्मत नहीं करता है। ऐसे हज़रात को मजबूर समझना चाहिए और उनके बारे में बेहतरीन तर्ज़े-अमल यही हो सकता है कि हम अपने लिए और उनके लिए दुआ करें।

इन उलमा में से कुछ लोगों का हाल यह है कि हम ने उनकी ख़िदमत में हाज़िर होकर या ख़तो-किताबत के ज़रिए यह गुज़ारिश की कि वे हमारी दावत को क़ुरआन व सुन्नत की रौशनी में जाँचकर हमें आगाह करें कि इसमें इस्लाम के ख़िलाफ़ क्या बातें हैं। अगर हक़ीक़त में वे दलीलों से हमें मुत्मइन कर देंगे कि हम ग़लती पर हैं तो हम फ़ौरन बिना किसी हिचकिचाहट के अपनी इस्लाह कर लेंगे लेकिन आज तक उन्होंने इसकी तकलीफ़ गवारा नहीं की और हमेशा वक़्त की कमी या इसी तरह का कोई दूसरा बहाना किया। लेकिन इसके बावजूद नावाक़िफ़ और अनजान लोगों में हमारे ख़िलाफ़ ग़लत प्रोपैगंडा करने में कोई झिझक महसूस नहीं करते और वक़्त की कमी इसमें आड़े नहीं आती। ऐसे उलमा बाहर भी हैं और यहाँ मक़ामी तौर से भी मौजूद हैं। ये लोग हमारे लिट्रेचर के कम-से-कम ज़रूरी हिस्से से भी वाक़िफ़ नहीं हैं। लेकिन अन्धेरे में हमारे ख़िलाफ़ तीर-पर-तीर चलाए जा

रहे हैं। कुछ ऐसे लोग हैं जिन्होंने इधर-उधर से कुछ आधी-अधूरी बातें देख ली हैं और उनको उन्होंने हमारी मुख़ालिफ़त के लिए काफ़ी समझ लिया है। कुछ लोगों का हाल यह है कि उन्होंने दीन के बारे में एक ख़ास तरह का तसव्वुर बना लिया है जिसमें छोटी-छोटी ज़ाहिरी बातों को उससे ज़्यादा अहमियत दी गई है जितनी हक़ीक़त में उनकी है और इस बिना पर जब वे हमें अपने तरीक़े (मसलक) से कुछ हटा हुआ पाते हैं तो जैसा कि उसूलन चाहिए था कि इस इख़्तिलाफ़ को वे उसके दायरे तक ही महदूद रखते और असल काम में हमारा साथ देते या उसकी ताईद करते । वे ऐसा नहीं करते बल्कि इसकी बजाए उन्होंने इस मामूली इख़्तिलाफ़ को यह दर्जा दे दिया है कि इसकी बिना पर हमें ग़लतकार और गुमराह समझते और हमारे तमाम कामों को कुफ़्र व गुमराही क़रार देते हैं। कुछ ऐसे लोग भी हैं जिनकी मुख़ालिफ़त सिर्फ़ इस बात का नतीजा है कि वे किसी ख़ास मज़हबी या सियासी गरोहबन्दी के शिकार हैं और जब उन्होंने यह महसूस किया कि हमारी दावत उन हदबन्दियों को जो ग़लत भी हैं और उम्मत के लिए शरअगेंज़ भी, ख़त्म कर देनेवाली है और उसका मुक़ाबला वे उसूली तौर से या खुलकर नहीं कर सकते तो उन्होंने 'इस्लाम ख़तरे में है' का नारा लगाना शुरू कर दिया है जो इस तरह के लोग, इस तरह के मौक़ों पर हमेशा लगाते आए हैं।

बहरहाल ये और इसी तरह के कुछ दूसरे कारणों और उत्प्रेरकों के तहत उलमा का एक गरोह हमारी मुख़ालिफ़त पर कमर कसे हुए हैं। ज़ाहिर है इस तरह के लोगों का इलाज हमारे बस में नहीं है, इसलिए मैं अपने रुफ़क़ा से यह कहना चाहता हूँ कि वे उन मुख़ालिफ़तों पर सब्र से काम लें और काम सुकून और इत्मीनान के साथ अंजाम देते रहें। ये हज़रात जिन सहारों पर मुख़ालिफ़तें कर रहे हैं अगर आप उनको तहरीक के हक़ में करने में कामयाब हो जाएँ तो उनकी आवाज़ खुद बेअसर होकर रह जाएगी। इसके साथ आप उनकी तरफ़ से मायूस भी न हों, अगर आप अपना काम ठीक तौर से करते रहें तो वह दिन इंशाअल्लाह ज़रूर आएगा कि या तो उनकी मुख़ालिफ़तें ख़त्म हो जाएँगी या ये लोग मायूस होकर बैठ जाएँगे।

"और यह अल्लाह के लिए कोई मुश्किल नहीं है" और आपका नुक़सान तो किसी हाल में भी नहीं है। आपका काम इतना ही है कि आप जिस चीज़ को हक़ समझते हैं उसके लिए जिद्दोजुहद में कोई कोताही न करें, रही यह बात कि इसका नतीजा क्या हासिल होता है, यह आपके देखने की चीज़ ही नहीं है। इसको ख़ुदा के हवाले कीजिए जो आपकी नीयतों और कामों को भी देख रहा है और आपके विरोधियों की नीयतों और कामों को भी। और वह यक़ीनन हर शख़्स को उसके कामों और नीयतों के मुताबिक़ ही बदला देगा। अलबत्ता इस सिलसिले में मैं यह ज़रूरी गुज़ारिश भी करना चाहता हूँ कि उलमा की तरफ़ से की जानेवाली मुख़ालिफ़तों में कुछ दख़ल हमारे रुफ़क़ा की कुछ कोताहियों और लापरवाहियों का भी है, जिनमें से कुछ ये हैं, जिनको मैं इसलिए बयान करना चाहता हूँ कि इनको दूर करने की कोशिश की जाए।

रुफ़क़ा की कोताहियाँ

बहुत से रुफ़क़ा ऐसे हैं जिनका ताल्लुक़ जमाअत में दाख़िल होने से पहले मुसलमानों के मुख़्तलिफ़ क़िस्म के मज़हबी या सियासी इदारों से रहा है और वे उन ही से कटकर जमाअत में आए हैं। हालाँकि मैं महसूस करता हूँ कि जमाअत में दाख़िल होने के बाद उन्होंने अपने को जमाअती मिज़ाज के मुताबिक़ बनाने की पूरी-पूरी कोशिश की है, लेकिन उनमें कुछ ऐसे भी लोग हैं जिनमें अभी ग़ैर-शऊरी (अनजाने) तौर पर उन जमाअतों से ताल्लुक़ के कुछ-न-कुछ असरात मौजूद हैं। यह चीज़ ग़लत भी है और तहरीक के लिए नुक़सानदेह भी। इसलिए इस तरह के रुफ़क़ा को पूरा एहतिमाम करके अपने आपको उन असरात से पाक करने की कोशिश करनी चाहिए। जब आप जमाअते-इस्लामी में दाख़िल हो चुके हैं तो आपकी तमाम दिलचस्पियों का मर्कज़ सिर्फ़ जमाअत के मक़ासिद होने चाहिए। दीन के साथ लगाव पैदा कीजिए। आपकी तरफ़दारी सिर्फ़ दीन के लिए ख़ास होनी चाहिए। इसके अलावा जितनी चीज़ें हैं और जिनके लिए आप पहले जिद्दोजुहद करते रहे हैं उनको एकदम छोड़ दीजिए।

दूसरी बात जिस पर ध्यान देना ज़रूरी है वह यह कि जो रुफ़क़ा जदीद तालीम-याफ़ता तबक़े (आधुनिक शिक्षा प्राप्त वर्ग) से आए हैं हालाँकि उनमें बड़ी अच्छी तब्दीलियाँ आई हैं, लेकिन कुछ लोगों के बारे में मैं यह महसूस करता हूँ कि अभी तक वे अपनी पुरानी आज़ादाना रविश और आज़ाद ख़याली को पूरी तरह क़ाबू में नहीं ला सके हैं, उन्हें इनकी तरफ़ तवज्जोह करनी चाहिए। वे अपनी हर चीज़ का जाइज़ा लेकर देखें कि वे शरीअत के दायरे के अन्दर हैं या नहीं। दुनिया इस्लाम का अमली नमूना देखना चाहती है। अगर आपने भी दूसरों की तरह सिर्फ़ ज़ेहनी व फ़िक्री अन्दाज़ से इस्लाम की नुमाइन्दगी की और दुनिया आपके कामों और किरदार में उस इस्लाम की झलक न देख सकी, जिसके आप दावेदार हैं, तो इससे आप और जमाअत दोनों को नुक़सान पहुँचेगा। आप अपनी आज़ादाना रविश में बीच का रास्ता निकालें ताकि आपका कोई काम दूसरों के लिए फ़ितने की वजह न बन जाए। बहुत से मौक़ों पर हमारे रुफ़क़ा दूसरों पर तनक़ीद (आलोचना) करने से पहले अपने ऊपर भी तनक़ीदी (आलोचनात्मक) निगाह डाल लिया करें, ताकि जिस माहौल में दावत पहुँचाना चाहते हैं उसमें किसी तरह की बदगुमानी पैदा न होने पाए।

तीसरी बात यह कि कुल मिलाकर हमारे रुफ़क़ा को छोटी-छोटी बातों और मसलों में पड़ने से जिस तरह परहेज़ करना चाहिए उस तरह नहीं कर रहे हैं। यह चीज़ भी जमाअत के कामों में एक बड़ी रुकावट साबित हो रही है। इन बातों की तरफ़ मैं अपने हमदर्दों और मुतास्सिरीन (जमाअत से प्रभावित लोगों) को भी तवज्जोह दिलाना चाहता हूँ। क्योंकि मुझे कुछ इस तरह की बातें मालूम हो रही हैं कि उनके काम का तरीक़ा, ख़ास तौर से उलमा के मुख़्तलिफ़ तरह की ग़लतफ़हमियों की वजह साबित होता है। हालाँकि उनकी बात और काम की ज़िम्मेदारी क़ानूनी तौर पर जमाअत पर नहीं डाली जा सकती, लेकिन चूँकि उनको जमाअत ही का आदमी समझ लिया जाता है इसलिए उनके काम के तरीक़े को लोग आसानी के साथ जमाअत को बदनाम करने के लिए इस्तेमाल करने लग जाते हैं।

अवाम का अनपढ़ होना और जाहिलीयत की रस्में

जमाअत के काम की रुकावटों के सिलसिले में अवाम का अनपढ़ होना और जाहिलीयत की रस्मों के चलन का भी ज़िक्र किया गया है। लेकिन रुकावटों के सिलसिले में इन बातों का ज़िक्र मुझे पसन्द नहीं है। इसलिए कि यही बातें तो दरअस्ल हमारे काम की मुहर्रिक (उत्प्रेरक) हैं। अगर इनको रुकावट में गिना जाए तो इसका मतलब यह होगा कि हमें काम का नाम नहीं लेना चाहिए। बहरहाल इन बातों की तरफ़ ज़्यादा-से-ज़्यादा तवज्जोह करने की ज़रूरत है। हमारे रुफ़क़ा चूँकि अभी तक काम करने के उस तरीक़े के आदी रहे हैं जिससे नतीजे बहुत जल्द हासिल हो जाते हैं इसलिए जमाअत के अन्दर आने के बाद भी यह रुझान पूरी तरह से उनके ज़ेहनों से निकल नहीं सका है। यही वजह है कि वे उन कामों में, जिनमें सब्र करने की ज़रूरत होती है, उतनी लगन से दिलचस्पी नहीं लेते जितना कि पहले से चल रहे दूसरे कामों में लेते हैं। मिसाल के तौर पर तालीमे-बालिग़ान के तरीक़े-कार को लीजिए। अगर इसके बारे में जमकर काम किया गया होता तो अभी तक बहुत सी जहालतें दूर हो चुकी होतीं। तालीमे-बालिग़ान का मसला मौजूदा दौर में इतना अहम है कि इस पर रुफ़क़ा को ज़्यादा-से-ज़्यादा ध्यान देना चाहिए। इसी तरह पिछली मजलिसे-शूरा के मौक़े पर इब्तिदाई दर्सगाहों की जो तजवीज़ पास की गई है वह भी अपनी ख़ुसूसियत के लिहाज़ से रुफ़क़ा की ज़्यादा-से-ज़्यादा तवज्जोह चाहती है। क्योंकि यह मसला अगर आज से पहले अहम था तो मौजूदा सेक्युलर स्टेट में इसकी अहमियत और ज़्यादा हो गई है। आज जो निसाबे-तालीम सरकारी स्कूलों में लागू किया जा रहा है, वह अपने असरात के लिहाज़ से सख़्त तबाहकुन है और आगे आनेवाली नस्लें जो इस ज़हर से मुतास्सिर होकर बाहर निकलेंगी वे सब कुछ तो हो सकती हैं लेकिन तहरीके-इस्लामी जिस तरह के ज़ेहनी किरदार को तैयार करना चाहती है, इसकी उम्मीद करना मौजूदा निज़ामे-तालीम से सिर्फ़ एक भयानक ख़ुशगुमानी है। इसलिए रुफ़क़ा को आनेवाले दिनों में अवाम की जहालत को दूर करने के लिए भी और आनेवाली नस्लों को नास्तिकता से

बचाने के लिए भी अपने तालीमे-बालिग़ान के मर्कज़ (प्रौढ़-शिक्षा केन्द्र) और प्राइमरी स्कूल क़ायम करने के फ़ैसले को ज़्यादा-से-ज़्यादा अमल में लाने की कोशिश करनी चाहिए। आनेवाले ज़माने में मुसलमानों के मुसलमान बने रहने का दारोमदार इस बात पर है कि वे कहाँ तक अपनी मज़हबी तालीम का बन्दोबस्त करते हैं। सेक्यूलर हुकूमत से इस बारे में कोई उम्मीद नहीं की जा सकती।

जाहिलीयत की रस्मों के सिलसिले में जमाअत का जो मसलक (मत) है वह आम लोगों को मालूम है। हम उनके अन्दर सुधार इस तरह नहीं कर सकते कि उनपर सीधे-सीधे वार करें। इससे फ़ितने पैदा होते हैं। क्योंकि आम लोगों ने इन चीज़ों को दीन समझकर अपना रखा है और यही इनको बताया भी गया है। लेकिन अगर आप इनको दीन और दीन की हक़ीक़त की जानकारी दे सकें और इनके अन्दर शरीअत के एहतिराम का जज़्बा पैदा कर सकें तो ये चीज़ें अपने आप ठीक हो जाएँगी। हमारे रुफ़क़ा को काम करने का यही तरीक़ा अपनाना चाहिए। हालाँकि यह जुर्रत का काम है, क्योंकि एक लम्बे वक़्त के जमे हुए ख़यालात को उखाड़ फेंकना कोई आसान काम नहीं।

दो ग़लतफ़हमियाँ और उनका निवारण

इस सिलसिले में दो ग़लतफ़हमियाँ बहुत आम हैं जिनको मैं दूर कर देना ज़रूरी समझता हूँ। पहली बात यह है कि हमारे बहुत से रुफ़क़ा यह समझते हैं कि उसूली तौर से इस वक़्त कोशिश करने की जो हिदायत उनको दी जाती है उसका मतलब यह है कि छोटी-छोटी बातें हमारे लिए कोई अहमियत ही नहीं रखतीं। हालाँकि यह ग़लत है। जब हम पूरी तरह दीनी इस्लाह के लिए खड़े हुए हैं तो हमें छोटी और बड़ी सब बातों को इस्लाम के मुताबिक़ बनाना है। इसलिए छोटी बातों से आँखें नहीं चुराई जा सकतीं। हाँ, यह सही है कि हमें इसके लिए तरीक़-ए-कार वही अपनाना चाहिए। यानी पहले नीव को सुधारना और सँवारना और उसके ज़रिए से छोटी-छोटी बातों की इस्लाह।

दूसरी ग़लतफ़हमी यह पैदा हो गई है कि बहुत से लोग अपने अमल के

लिए भी छोटी बातों को तवज्जोह के क़ाबिल नहीं समझते। यह बात भी ग़लत है। उनको छोटी-छोटी बातों में भी शरीअत के पूरे-पूरे एहतिराम का ख़याल रखना चाहिए। उनकी कोशिश यह होनी चाहिए कि जो चीज़ भी शरीअत में साबित हो उसको ख़ुद अपनाएँ और दूसरों को ख़ास तौर से अपने घरवालों को उसके अपनाने की दावत दें, चाहे वह छोटी बात हो या बड़ी।

रुकावटों में वे ख़ास रुकावटें जिनपर इस मौक़े पर मैंने अपने विचार रखने की ज़रूरत महसूस की वे यही थे इनके इलावा और भी रुकावटें हैं जिनका ज़िक्र रिपोर्टों में किया गया है, लेकिन वक़्त की कमी की वजह से मैं इस अवसर पर उनको छेड़ना नहीं चाहता। मशवरों के सिलसिले में या हिदायत के मौक़े पर इंशाअल्लाह उनपर बात की जाएगी। बहरहाल आपने अन्दाज़ा लगाया होगा कि रुकावटों को जितनी अहमियत दी गई है वे हक़ीक़त में उतनी अहमियत की हक़दार नहीं हैं। यह सिर्फ़ काम में दिलचस्पी की कमी का नतीजा है कि जो बातें अमल के जज़्बे की मुहर्रिक (उप्रेरक) होनी चाहिए थीं वे हिम्मत तोड़नेवाली साबित हो रही हैं। अगर यह रुकावट दूर हो जाए तो इंशाअल्लाह सारी रुकावटें ख़ुद ही दूर हो जाएँगी।

व आख़िरु द-अ़-वाना अनिल-हम्दुलिल्लाहि रब्बिल-आ़लमीन

रिपोर्ट दर्सगाह

क़ायम होने से माह जमादस्सानी 1370 हि. तक

बराए कुल हिन्द इजतिमा आयोजित 20 से 22 अप्रेल 1951 ई.

अपने नज़रिया-ए-तालीमी के मुताबिक़ एक दर्सगाह (स्कूल) क़ायम करने की ज़रूरत तो हमारी जमाअत को शुरू से ही महसूस हो रही थी। लेकिन बहुत सी वजहों से इस फ़ैसले को अमल में लाने की तरफ़ क़दम नहीं उठाया जा सका। हिन्दुस्तान के बँटवारे के नतीजे में जो हालात बने उनकी वजह से हमारी रुकावटें कुछ और बढ़ गईं। लेकिन चूँकि तालीमी स्कीम को जल्दी-से-जल्दी अमल में लाने की ज़रूरत दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही थी

और बँटवारे के बाद के हालात में इसको जल्दी क़ायम करना बहुत ही ज़्यादा ज़रूरी मालूम होने लगा और हमारे एक साथी मुंशी हिदायत अली साहब मलीहाबादी ने दर्सगाह के लिए अपने एक बाग़–जो कि महमूद नगर, मलीहाबाद में है–की आमदनी और एक इमारत की पेशकश करके पैसे और जगह से मुताल्लिक़ मुश्किलों को भी आसान बना दिया, इसलिए जमाअत की तश्कीले-जदीद (पुनर्गठन) के बाद अमीरे-जमाअत मौलाना अबुल्लैस साहब ने कम-से-कम इब्तिदाई (प्राईमरी) दर्सगाह क़ायम करने का इरादा कर लिया और मजलिसे-शूरा (आयोजित 27 से 29 अगस्त 1948 ई.) के सामने दर्सगाह का मसला पेश किया जिसमें थोड़ी देर की बहस व बातचीत के बाद आम राय से तय पाया कि इब्तिदाई (प्राईमरी) तालीम की स्कीम को अमल में लाया जाए और आरज़ी तौर से बाग़ की मौजूदा इमारत को ज़रूरी और मुनासिब तब्दीली के बाद दर्सगाह और तलबा के हॉस्टल के तौर पर इस्तेमाल किया जाए। साथ ही यह भी तय पाया कि बच्चों की तालीम व तरबियत के लिए मुहम्मद शफ़ी मूनिस और अफ़ज़ल हुसैन साहब या ऐसे ही किसी और शख़्स की ख़िदमात हासिल की जाएँ जो बच्चों की तालीम व तरबियत का अमली तजरिबा भी रखते हों और बच्चों की तालीम के बारे में नई मालूमात और नज़रियात के मुताबिक़ तैयार भी हों।

इसी इजतिमा में दो कमेटियाँ भी बना दी गईं। एक दस्तूर कमेटी दूसरी निसाब (पाठ्यक्रम) कमेटी। दस्तूर कमेटी ने दस्तूरुल-अमल (Prospectus) तैयार करके मजलिसे-शूरा के ख़त्म होने से पहले पेश कर दिया। निसाब कमेटी ने एक माह बाद निसाब (पाठ्यक्रम) तैयार करके तालीमी मैदान में दिलचस्पी रखनेवाले समझदार लोगों के पास मशवरे के लिए भेज दिया और मुनासिब काट-छाँट के बाद आम मालूमात के लिए सहरोज़ा (तीसरे दिन प्रकाशित होनेवाले) अल इनसाफ़, इलाहाबाद में 20, 21 मार्च 1949 ई. के अंक में प्रकाशित करा दिया।

क़ियाम (स्थापना)- बाग़ की तय की हुई इमारत में माह सफ़र 1368 हि॰ के आख़िर तक ज़रूरी तब्दीलियाँ पूरी हो सकीं। अफ़ज़ल हुसैन

साहब और मुहम्मद शफ़ी साहब मूनिस को भी माह सफ़र के आख़िर तक बुला लिया गया। दर्सगाह के इफ़्तिताह (उद्घाटन) का एलान अल-इनसाफ़ में पहले ही प्रकाशित हो चुका था। इसलिए इसके मुताबिक़ रबिउल अव्वल 1368 हि. की पहली तारीख़ को इक्कीस तलबा (छात्रों) से दर्सगाह का इफ़्तिताह हुआ। ये तलबा अपनी क़ाबिलियत के मुताबिक़ दर्सगाह के चार दर्जों में दाख़िल कर लिए गए।

मक़सद – इब्तिदाई (प्राईमरी) दर्सगाह क़ायम करने का मक़सद पहले दिन से यही था कि इस दर्सगाह में तलबा की तालीम व तरबियत इस अन्दाज़ पर हो कि इल्मी, अमली, ज़ेहनी व अख़लाक़ी यहाँ तक कि जिस्मानी भी, मतलब यह कि तमाम हैसियतों से उनमें वे ज़रूरी क़बिलियतें और सिफ़ात पैदा हो जाएँ जो मुहज़्ज़ब (सभ्य) इनसानों और हमारी इस तहरीक के कारकुनों में हर हालत में होनी ज़रूरी हैं और जो तलबा इस शुरुआती मंज़िल से आगे बढ़नेवाले नहीं हैं उन्हें इतनी बुनियादी तालीम व तरबियत ज़रूर दे दी जाए कि जो जौहरे-इनसानियत और जौहरे-इस्लामियत के एतिबार से वे बिलकुल कोरे न रह जाएँ और एक मुहज़्ज़ब ज़िन्दगी के फ़आल (क्रियाशील) उंसुर (तत्त्व) होने के लिए जो क़बिलियतें ज़रूरी हैं वे उनमें पैदा हो जाएँ और हालाँकि इस मंज़िल में तलबा को किसी ख़ास पेशे के लिए तैयार करने का सवाल पैदा नहीं होता फिर भी यह कोशिश की जाए कि अमली व अख़लाक़ी तरबियत से बच्चों की तमाम अन्दरूनी सलाहियतों, पैदाइशी क़ाबिलियतों और फ़ितरी सलाहियतों को इस हद तक परवान चढ़ाया जाए और उन्हें अमलन इस हद तक तजरिबा और मुशाहिदा करने का मौक़ा दिया जाए कि वे आठ साल की तालीम व तरबियत से फ़ारिग़ होने के बाद अपने अन्दर यह ताक़त महसूस करने लगें कि ख़ुदा की ज़मीन में हर तरफ़ उनके लिए काम करने और अपनी ज़रूरतों को हासिल करने के मौक़े मौजूद हैं और वे उनसे फ़ायदा उठा सकते हैं और मेहनत व मशक़्क़त और सादा ज़िन्दगी के इतने आदी बना दिए जाएँ कि वे हर जिस्मानी काम को बिना झिझक व शर्म के कर सकें और ज़िन्दगी की ज़रूरतों को सिर्फ़ लाज़िमी ज़रूरतों ही तक महदूद समझने लगें।

मुख़्तसर रूदाद

इफ़्तिताह के बाद महसूस हुआ कि जिन तलबा को दाख़िल किया गया है उनकी इब्तिदाई (प्राईमरी) तालीम व तरबियत बहुत ही ज़्यादा ग़ैर-मुतवाज़िन (असन्तुलित) हुई है। इसलिए कई माह उनकी पिछली योग्यताओं को जाँचने, उनकी फ़ितरी सलाहियतें समझने, एक नया माहौल पैदा करने और उसमें उनको ढालने में लग गए और अभी हम ठीक से क्लास बना भी न सके थे कि रमज़ानुल-मुबारक की छुट्टियों के सिलसिले में दर्सगाह एक माह दस दिन के लिए बन्द कर दी गई। तलबा अभी घरों से वापस भी न आए थे कि मर्कज़ के रामपुर मुंतक़िल होने का मसला सामने आ गया। जगह की कमी और ठहरने की मुश्किलों को सामने रखते हुए छुट्टियाँ दस दिन के लिए और बढ़ा दी गईं और नए दाख़िले भी कुछ दिनों के लिए रोक देने पड़े। 17 ज़ीक़ादा 1368 हि. को मर्कज़ के साथ दर्सगाह भी मलीहाबाद से रामपुर मुंतक़िल हो गई।

रामपुर में एक मक़ामी ज़ैली दर्सगाह पहले से मौजूद थी। इसको भी मर्कज़ी दर्सगाह में मिला लिया गया। पाँचवी क्लास बढ़ाकर कुछ नए तलबा भी दाख़िल किए गए और इस तरह इनकी कुल तादाद 55 हो गई। रामपुर की मक़ामी दर्सगाह में शौकत अली साहब और अब्दुल-वहीद साहब टीचर्स की हैसियत से काम कर रहे थे। इसलिए अब टीचरों की तादाद चार हो गई। तलबा की निगरानी व ज़रूरतों का ख़याल रखते हुए दो निगराँ हफ़ीज़ुज़्ज़फ़र ख़ाँ साहब और इस्लामुल्लाह साहब प्रेमी मुक़र्रर किए गए, जिनकी तनख़ाह बच्चों के सरपरस्तों से वुसूल की जाती। शअबान में इम्तिहानों के बाद दर्सगाह फिर एक माह दस दिन के लिए बन्द कर दी गई।

शव्वाल 1369 हि. से नई मीक़ात शुरू हुई। पुराने तलबा में से तेरह तालिबे-इल्म वापस न आ सके, जिनमें ज़्यादा तादाद ऐसे बच्चों की थी जो अपने सरपरस्तों की पैसों की कमी की वजह से दर्सगाह में अपनी तालीम जारी न रख सके। कोशिश के बावजूद हम उनके लिए कुछ न कर सके, मजबूरन इस मीक़ात में तेरह बच्चों का नया दाख़िला करके पचपन बच्चों

की तादाद पूरी कर ली गई। मजलिसे-मुशावरत अप्रैल 1950 ई. ने तय किया था कि अगली मीक़ात में पहली क्लास तोड़कर छटी क्लास बढ़ाई जाए, क्योंकि तलबा के रहने और एक नए टीचर के तक़र्रुर (नियुक्ति) का इंतिज़ाम बहुत मुश्किल है। मगर अमलन ऐसा न हो सका। छटी क्लास को बढ़ाना तो फ़ितरी तौर से ज़रूरी था। पहली क्लास के कुछ फ़ेल तलबा और दूसरी क्लास के नए दाख़िले के कमज़ोर तलबा की वजह से अमीरे-जमाअत के मशवरे से पहली क्लास को भी बाक़ी रखा गया और इस क्लास की तालीम व तरबियत का बोझ निगराँ हज़रात में से एक के काँधों पर डाला गया। इस तरह इस साल की कुल छः क्लासें हैं जिनकी तालीम के लिए नाज़िम सहित कुल चार टीचर्स और दो निगराँ हैं।

तलबा का रोज़ाना प्रोग्राम

फ़ज्र की नमाज़ से एक घंटा पहले उठ जाते हैं। शौच आदि ज़रूरी कामों से निबटने के बाद दाँत माँझकर वुज़ू करते हैं। जमाअत से फ़ज्र की नमाज़ अदा करके क़ुरआन की तिलावत करते हैं । सर्दियों में हल्का नाश्ता करके तफ़रीह के लिए बाहर जाते हैं और वापस होकर खाना खाते हैं। गर्मियों में वापस आकर नाश्ता करते हैं और खाना खाते हैं। एक ग्रुप बारी-बारी तफ़रीह के वक़्तों में दर्सगाह की सफ़ाई और नाश्ता कराने का इंतिज़ाम करता है। नाश्ते के बाद दर्स शुरू होता है। बारह बजे खाने, नमाज़ और आराम का वक़्फ़ा मिलता है। फिर दोपहर ढलने के बाद तालीम और हिरफ़ा (दस्तकारी) का काम होता है। अस्र की नमाज़ के बाद खेल, मग़रिब के बाद खाना, क़िरअत और कभी-कभी तक़रीर की मश्क़ (अभ्यास) होती है। इशा की नमाज़ के बाद एक-डेढ़ घंटा आज़ाद मुताला (अध्ययन) और पढ़े हुए सबक़ को दोहराना होता है। सोने से पहले दिन भर की मसरूफ़ियतों का जाइज़ा लेने और अपने नफ़्स का मुहासबा (आत्म-मंथन) करने के लिए तलबा डायरियाँ लिखते हैं और फिर सो जाते हैं। छुट्टियों में तलबा घूमने और तफ़रीह करने के लिए बाहर जाते हैं। कभी-कभी दूसरे स्कूलों और कारख़ानों वग़ैरा को भी दिखाने ले जाया जाता है। दुनिया से बाख़बर रहने और बच्चों के प्रोग्रामों से फ़ायदा उठाने के लिए रेडियो प्रोग्राम भी होता है।

तालीमी काम

1. **दर्सगाह के औक़ात (समयावली)** :- आम तौर पर सुबह सवा आठ बजे से बारह बजे तक और तीसरे पहर को ज़ुहर और अस्र के बीच के दो-ढाई घंटे पढ़ने-पढ़ाने और हिरफ़ा का काम होता है। बीच में खाना, नमाज़ और आराम के लिए वक़्फ़ा दिया जाता है। मौसम और ज़ुहर व अस्र की नमाज़ों के औक़ात में तब्दीली से इन औक़ात में भी मामूली तब्दीली होती रहती है।

2. **मज़ामीन (विषयों) की तफ़सील** :- ख़ालिस इस्लामी उलूम यानी क़ुरआन, हदीस, फ़िक़्ह, अक़ाइद, अख़लाक़, मुआशरत (समाज), तारीख़े-इस्लाम (इस्लामी इतिहास) और नबियों की सीरत व सहाबा और उम्मत के सुलहा (सुधारक) की सीरत के अलावा अरबी, हिन्दी, उर्दू, अंग्रेज़ी ज़बानों और दूसरे मालूमाती मज़ामीन जैसे भारतीय इतिहास, भूगोल, गणित, जनरल साइंस, आर्ट क्राफ़्ट वग़ैरा की भी तालीम दी जाती है। और इन विषयों में हमारे यहाँ का मेयार सरकारी स्कूलों से ऊँचा है। ख़ालिस इस्लामी उलूम की तालीम व तदरीस में भी हम तालीम के नए-से-नए तरीक़ों को काम में लाते हैं और बच्चों की दिलचस्पी, उम्र, ज़ेहन की पहुँच वग़ैरा का भी पूरा ख़याल रखते हैं। दूसरे उलूम की तदरीस (पढ़ाई) में भी इस्लामी रूह काम कर रही होती है और इन मज़ामीन के उनवानों, बहसों और सबक़ों (पाठों) को इस्लामी नज़रियात पर चस्पाँ करके ज़ेहनों में उतारने की कोशिश की जाती है। मतलब यह कि जहाँ तक हमारे वसाइल साथ देते हैं हम तालीम के जदीद तरीन (नए-से-नए) तरीक़ों से फ़ायदा उठाने में कोई कसर नहीं छोड़ते। बहुत से तालीमी तरीक़ों को समझने और उन से फ़ायदा उठाने के लिए हम दूसरे सरकारी व ग़ैर-सरकारी मॉडल स्कूलों और तालीमी इदारों का मुशाहिदा (निरीक्षण) भी करते हैं।

3. **क़िरअत क्लास** :- माह रबिउल-अव्वल 1369 हि. से दर्सगाह के तलबा को क़िरअत व तजवीद (क़ुरआन को शुद्ध उच्चारण और पूर्ण

नियम से पढ़ने का ज्ञान) सिखाने का काम क़ारी अब्दुल-वाहिद साहब के सुपुर्द है। मुहतरम क़ारी साहब इस काम को बहुत ही दिलचस्पी और लगन से अंजाम देते हैं- तीसरी, चौथी, पाँचवी और छटी क्लास के सभी तलबा और पहली व दूसरी क्लास के चुने हुए तलबा क़िरअत सीखते हैं।

हुनर और दस्तकारियाँ

तालीम व तरबियत में हुनर सीखने की अहमियत को सामने रखते हुए हमने इसके लिए अपने निज़ामुल-औक़ात (टाइम टेबिल) में दो घंटे रखे हैं। पहले और दूसरे दर्जों में फटे-पुराने कपड़ों की मरम्मत, मामूली सीना-पिरोना, बटन टाँकना, रूमाल और कमरबन्द सीना, जूते की मरम्मत, काग़ज के फूल और खिलौने बनाना, किताबों पर काग़ज़ चढ़ा लेना वग़ैरा रखा है। तीसरी से छटी क्लास तक ख़ास हुनर सीखने और दस्तकारियों में महारत पैदा करने और कुछ फ़ायदेमन्द और लाभ पहुँचानेवाले काम सिखाने की तरफ़ तवज्जोह दी है। जिल्दसाज़ी, लिफ़ाफ़ा, पैड, फ़ाइल वग़ैरा बनाना तीसरी क्लास में सिखाया जा रहा है। चौथी, पाँचवी और छठी क्लास के तलबा फ़िलहाल तीन ग्रुपों में बाँट दिए गए हैं। बाग़बानी ग्रुप, बढ़ई-गीरी ग्रुप, लांड्री व सिलाई ग्रुप। इन सभी कामों के ज़िम्मेदार भी टीचर्स हैं इनमें धीरे-धीरे सलीक़ा आता जा रहा है और बच्चे दिलचस्पी और लगन के साथ इन कामों को अंजाम दे रहे हैं।

लकड़ी के काम में ज़रूरी औज़ारों की कमी की वजह से अभी कम बच्चे हैं। कोशिश की जा रही है कि धीरे-धीरे ज़रूरी सामान का इंतिज़ाम हो जाए। बहरहाल, काम शुरू कर दिया गया है और तलबा कई तरह की रोज़ाना इस्तेमाल की चीज़ें बनाने लगे हैं। जैसे रैक यानी दीवारगीर, बैठने की पीढ़ियाँ और बच्चों के खिलौने, गुड़ियों की कुर्सियाँ और फ़र्नीचर वग़ैरा। फ़्रेट वर्क (जालीदार काम) सिखाने का भी इन्तिज़ाम कर लिया गया है। इसकी हाथ की मशीनें तो हमारे पास हैं, मगर उनसे प्लाइवुड के अलावा मोटे तख़्ते

नहीं काटे जा सकते और प्लाईवुड आजकल नायाब है। अगर पैर की मशीन मिल गई तो यह काम इंशा अल्लाह ज़्यादा फ़ायदेमन्द होगा।

बाग़बानी :- दर्सगाह से तक़रीबन एक फ़र्लांग (220 गज़) के फ़ासले पर एक इहाता मिल गया है जिसका कुछ हिस्सा तलबा ने मेहनत करके खेती के क़ाबिल बना लिया है। इसमें फ़सल व मौसम के मुताबिक़ बहुत सी सब्ज़ियाँ जैसे आलू, टमाटर, बैंगन, प्याज़, लहसुन, मेथी, पालक, ख़ुरफ़ा वग़ैरा और कुछ फूलों की खेती होती है। पानी की कुछ दिनों तक परेशानी रही लेकिन अब नल लग जाने से यह मुश्किल भी दूर हो गई है। इहाते का ज़्यादातर हिस्सा अभी काम का नहीं बन सका है। इसको ठीक करने की कोशिश की जा रही है इंशा अल्लाह वह भी हो जाएगा।

लांड्री व सिलाई :- लांड्री का काम अच्छी तरह चल रहा था। दर्सगाह के तलबा के कपड़े यही ग्रुप धोता, इस्तिरी करता और उनका हिसाब-किताब रखता था। मगर वक़्त, जगह और निगराँ की दिक़्क़त की वजह से कुछ दिनों के लिए रोक दिया गया है। मशीन न होने की वजह से सिलाई का काम बाक़ायदा शुरू न हो सका था। बच्चों को कटिंग वग़ैरा काग़ज़ काटकर सिखाई जा रही थी। अब एक मशीन का भी इंतिज़ाम हो गया है। उम्मीद है कि यह काम भी बग़ैर किसी रुकावट के लगातार भी होने लगेगा।

कुछ दूसरे काम

अंग्रेज़ी मिठाई और मोमबत्ती बनाने और उन्हें सलीक़े से पैक करके तलबा के ज़रिए बिकवाकर बच्चों को ख़रीदने व बेचने का तजरिबा और कारोबार चलाने की मश्क़ कराने का ख़याल है। मिठाई बनाने की मशीन एक रफ़ीक़ की मेहरबानी से हासिल हो गई है। नमूने के लिए कुछ मिठाई बनवा दी गई है। मगर चीनी की कमी की वजह से अभी यह काम मंसूबे के मुताबिक़ नहीं हो रहा है। इसके अलावा चारपाई बुनना, साइकिल चलाना, तैराकी, साबुन बनाना वग़ैरा भी हम वक़्त-वक़्त पर सिखाते रहते हैं। और भी बहुत से काम हमारे सामने हैं मगर काम की वुसअत (व्यापकता),

वसाइल की कमी काम में महारत और स्टाफ़ की कमी की वजह से तालीम व तरबियत के साथ-साथ इस तरह के कामों का बाक़ायदगी के साथ सिखाना फ़िलहाल मुश्किल नज़र आता है। ख़ुदा करे हमारी ये मुश्किलें जल्द दूर हो जाएँ।

जिस्मानी तरबियत

दर्सगाह के बीच शहर में होने की वजह से हमारे तलबा को खुली हवा बहुत कम नसीब होती है और हमारे पास खेल के लिए कोई खुला मैदान नहीं है और न हम खेल के सामान जुटाने का कोई बेहतर इंतिज़ाम कर सके हैं। तालीम व तरबियत में खेल की अहमियत को सामने रखते हुए बहरहाल यह बहुत बड़ी कमी है, फिर भी हम अपने वसाइल को देखते हुए तलबा की जिस्मानी तरबियत की, जहाँ तक मुमकिन हो सकता है, कोशिश कर रहे हैं। फ़ज्र की नमाज़ के बाद तलबा पाबन्दी से तफ़रीह के लिए शहर से बाहर जाते हैं जहाँ डेढ़ दो घंटे खुली हवा में उन्हें आज़ादी से खेलने का मौक़ा मिलता है। हालांकि दिन के ज़्यादातर वक़्त में महदूद और बन्द जगह रहने की वजह से तलबा की सेहत कुछ अच्छे मेयार की नहीं है फ़िर भी ख़ुदा के फ़ज़्ल से आम लोगों के मुक़ाबले में सेहत अच्छी रहती है।

अस्र की नमाज़ के बाद खेल और पी.टी. का भी इंतिज़ाम किया गया है। रसोई से मिले हुए मकान के सहन को हमवार करके वॉलीबाल और रिंग के दो मैदान बना दिए गए हैं जिनसे खेल एक हद तक मुनज़्ज़म हो गया है। कबड्डी, दौड़, कूद, क्रिकेट और जुमा को छोटे बच्चों की कुश्ती और मौसम का ख़याल रखकर तैराकी का बन्दोबस्त किया जाता है। कभी-कभी मछली के शिकार और पिकनिक का भी इंतिज़ाम करते हैं।

अख़लाक़ी तरबियत

इस्लाम में अख़लाक़ को जो अहमियत हासिल है उसे हम सब जानते हैं। इसलिए हम इस पर तालीम से ज़्यादा ज़ोर देते हैं। अख़लाक़ी तरबियत के सिलसिले में अच्छा और भला समाज, उस्तादों और बड़े तलबा का बेहतरीन अमली नमूना, अख़लाक़ी एतिबार से तलबा का आम तौर पर

हस्सास (संवेदनशील) होना, अच्छा माहौल और दर्सगाह की फ़िज़ा, बच्चों में नदामत (अपनी ग़लती पर शर्मिन्दा होने) के जज़्बे को परवान चढ़ाना, अपना जाइज़ा ख़ुद लेना और ऐसे मुस्तक़िल काम जो तलबा को फ़ुर्सत के लम्हों में बेकार बातों और कामों से बचाए रख सकें, इन सबकी बहुत अहमियत है। हम इनमें से किसी तरफ़ से भी बे-परवाह नहीं हैं। तलबा में नदामत का जज़्बा पैदा करने की पूरी-पूरी कोशिश करते हैं, ख़ुद अपनी तरफ़ से बेहतर नमूना पेश करते हैं। निगरानी के लिए उस्तादों और निगराँ दोनों को ज़िम्मेदार बना दिया गया है। फ़ुर्सत के वक़्त को मुनासिब कामों पर लगाने का इंतिज़ाम किया गया है। अपना जाइज़ा ख़ुद लेने के लिए दिन भर के कामों पर रोज़ाना डायरियाँ लिखवाते हैं। दर्सगाह की फ़िज़ा को ठीक रखने के लिए तलबा के ख़ुसूसी इजतिमाआत करते हैं। हाजिरी के बाद ज़रूरी हिदायतें दी जाती हैं और अच्छी आदतों का शौक़ दिलाने और बुरी आदतों से दूर रहने के लिए तलबा को मुस्तक़िल अख़लाक़ी दर्स देते हैं। एक दूसरे पर हमदर्दाना तनक़ीद (आलोचना) करने का मौक़ा देते हैं और सवालात करके और बच्चों के किरदार का जाइज़ा लेकर अपनी कोशिशों के नतीजे जाँचते रहते हैं। इसके अलावा खेलकूद, इक़ामती ज़िन्दगी (हॉस्टल की ज़िन्दगी) के मुख़्तलिफ़ मौक़ों और दर्स के वक़्तों में अख़लाक़ी उसूलों की पाबन्दी और अमली तरबियत पर ख़ास ज़ोर देते हैं, ताकि छात्रों के ज़ेहन में यह बात बैठ जाए कि अख़लाक़ी उसूल सिर्फ़ ज़बानी तालीम देने और याद करने के लिए नहीं होते बल्कि रोज़ाना की अमली ज़िन्दगी में बरते जाने के लिए होते हैं।

एक-दूसरे की मदद, हमदर्दी व ख़िदमत के लिए सफ़ाई व पाकीज़गी वग़ैरा के लिए तलबा पर इनफ़िरादी व इजतिमाई (व्यक्तिगत व सामूहिक) ज़िम्मेदारियाँ डाली गई हैं। अपने समाज की इस्लाह (सुधार) के लिए तलबा का ख़ुसूसी इजतिमा होता है जिनमें वे अपनी मआशरती (सामाजिक) व इजतिमाई (सामूहिक) ज़िन्दगी को अख़लाक़ी उसूलों पर ढालने के और कमज़ोरियों को दूर करने के मंसूबे सोचते हैं। उनकी जमीअत (पार्टी) भी है, जो एक दूसरे को बुरे कामों पर टोकती और भले कामों पर उभारती है।

सेहत व सफ़ाई

बीमार छात्रों की देखभाल, तीमारदारी और दवा-इलाज के लिए निगराँ हज़रात में से एक साहब ज़िम्मेदार बना दिए गए हैं जो उनकी सेहत का जाइज़ा भी लेते रहते हैं। ऊँची क्लास के तलबा रोज़ाना और निचली क्लास के तलबा एक दिन छोड़कर ग़ुस्ल करते हैं। जुमा को दर्सगाह की पूरी सफ़ाई के बाद तलबा ग़ुस्ल करते हैं। तलबा की फ़ौरन दी जानेवाली डॉक्टरी सहायता के लिए दर्सगाह में होम्योपैथिक और एलोपैथिक दवाएँ मौजूद रहती हैं। फिर भी हफ़्ते में एक बार के लिए एक मशहूर मक़ामी डॉक्टर की ख़िदमत वक़्ती तौर पर निशुल्क हासिल की गई हैं। डॉक्टर साहब जब तशरीफ़ लाते हैं तो तलबा को सेहत की हिफ़ाज़त के उसूल भी बताते हैं और दिलचस्प अन्दाज़ से ख़िताब (तक़रीर) भी करते हैं। बीमार तलबा के इलाज के सिलसिले में हमारे शफ़ीक़ और खुशमिज़ाज हकीम साहब की ख़िदमात तो ख़ुदा की मेहरबानी से हर वक़्त हासिल रहती हैं। ज़रूरत पड़ने पर ही डॉक्टरी इलाज को अपनाया जाता है। खाना सादा और वक़्त पर दिया जाता है इसमें भी सेहत का ख़याल रखा जाता है।

अमली तरबियत

दस्तकारियों और हुनर के अलावा ज़िन्दगी के दूसरे पहलुओं से अमलन जानकारी देने का भी इंतिज़ाम किया जाता है। जिस्मानी मेहनत का आदी बनाने और हर काम को बेझिझक कर डालने की सलाहियत पैदा करने के लिए बच्चों के ग्रुप बना दिए गए हैं। हर ग्रुप बारी-बारी हफ़्ते में एक दिन इक़ामती ज़िन्दगी के तमाम कामों का ज़िम्मेदार होता है। कमरों और चारदीवारी की सफ़ाई, बच्चों के नाश्ते और खाने का इंतिज़ाम, नालियों की सफ़ाई, तीमारदारी, दर्सगाह और सामानों की छोटी-मोटी मरम्मत, सफ़ेदी करना, चारपाई बुनना वग़ैरा तलबा को सिखाया जाता है। तलबा की क़ुव्वतों को फ़ायदेमन्द कामों में लगाने से जहाँ दर्सगाह का नज़्म व तरतीब में तालमेल पैदा हो गया है, वहीं खुद उनमें अपने माहौल को साफ़-सुथरा रखने और हर काम को बेझिझक कर सकने की सलाहियत भी पैदा हो रही है।

उनके इस तरह ग्रुप बना देने से तलबा के कामों का जाइज़ा लेने और उनकी इल्मी, अख़लाक़ी और अमली तरक़्क़ी पर नज़र रखने में भी किसी हद तक आसानी पैदा हो गई है, वरना ज़ाहिर है कि इतने कम स्टाफ़ के होते हुए एक इदारे को बाक़ायदा चलाना हमारे लिए बहुत ज़्यादा मुश्किल हो जाता। इससे भी ज़्यादा यह कि तलबा को बहुत से कामों का ज़िम्मेदार बना देने से उनके अन्दर काम में महारत दिखाने का शौक़, एतिमाद और ज़िम्मेदारी के एहसास का जज़्बा पैदा होता है। आम ज़िम्मेदारियों के अलावा कुछ तलबा पर ख़ास ज़िम्मेदारियाँ भी डाली गई हैं, जैसे छोटे बच्चों को नमाज़ पढ़वाना, बिस्तर लगवाना, सामान की देखभाल, घुमाने-फिराने के लिए ले जाना, आम सफ़ाई वग़ैरा, जिसे बच्चे बहुत ही लगन से अंजाम देते हैं।

इज़हारे-ख़याल की मश्क़

तहरीरी व ज़बानी इज़हारे-ख़याल की मश्क़ के लिए हफ़्ते में चार पीरियड दर्स के वक़्तों में रखे गए हैं और मग़रिब व इशा के बीच भी इसका मौक़ा दिया जाता है। खुद छात्रों के इजतिमाआत होते हैं जिनमें उन्हें तक़रीर करने का मौक़ा दिया जाता है।

दारुल-मुताला (Study Room)

एक उस्ताद की निगरानी में बच्चों का दारुल-मुताला क़ायम किया गया है। जिसमें अल-हसनात, फ़िरदौस, ज़िन्दगी वग़ैरा रिसाले आते हैं। जिनसे तलबा फ़ायदा उठाते हैं।

बच्चों के क़लमी रिसाले व अख़बार

बच्चों के अदबी हल्क़े का भी इजतिमा कभी-कभी होता है, जिससे उन्हें अफ़साना, ड्रामा, मक़ाला वग़ैरा लिखने का शौक़ पैदा होता है। इस सिलसिले में कुछ बच्चों के नाम क़ाबिले-तारीफ़ हैं। तलबा के दो क़लमी रिसाले 'तोहफ़ा' और 'सुबहे-नौ' निकलते हैं। एक बच्चा हफ़्तावार, जुमा-से-जुमा, एक दो पेज का अख़बार निकालता है, जिसकी मज़ेदार और सनसनीख़ेज़ गर्म-गर्म चीज़ें बच्चों की दिलचस्पी का सबब बनती हैं।

अल-हसनात में बच्चों की नज़्में वग़ैरा भी छपती हैं।

काम का जाइज़ा

उस्तादों से डायरियाँ लिखवाई जाती हैं और हफ़्तेवार इनफ़िरादी (व्यक्तिगत) मुलाक़ातों में उनके कामों का जाइज़ा लिया जाता है। मुनासिब मशवरे और ज़रूरी हिदायतें दी जाती हैं। तलबा के छः माही और सालाना इम्तिहाना होते हैं जिनमें इल्मी काम के अलावा अमली, अख़लाक़ी, ज़ेहनी व जिस्मानी तरक़्क़ी का भी जाइज़ा लिया जाता है और इसकी रिपोर्ट सरपरस्तों को भेज दी जाती है।

लाइब्रेरी

तलबा की क्लासों के हिसाब से लाइब्रेरी क़ायम की गई है। बहुत से विषयों की लगभग तीस-तीस किताबें चुन ली गई हैं जिनके मुताले का तलबा में शौक़ पैदा कराया जाता है। किताबों और तलबा के नामों की लिस्ट क्लास में लगा दी जाती है, जिसमें बच्चे अपनी पढ़ी हुई किताब के सामने निशान लगाकर ख़त्म करने की तारीख़ लिख देते हैं और ख़त्म करने के बाद एक हफ़्ते के अन्दर-अन्दर इसपर सवाल करके मुताले से फ़ायदा उठाने का जाइज़ा लेने की हिदायत कर दी गई है।

अजायब घर (Museum)

दर्सगाह का अपना एक छोटा सा अजायब घर (Museum) भी है जो तालीमी ज़रूरतों को सामने रखते हुए ज़रूरी है। इसमें पुराने और मुख़्तलिफ़ मुल्कों के सिक्के, टिकट, ज़मीन के मुख़्तलिफ़ पत्थरों के नमूने, समुद्र के कुछ पौधे व जानवर वग़ैरा फ़राहम कराए गए हैं।

तालीमी सामान तैयार करना या बाहर से मँगवाना

मुख़्तलिफ़ मज़ामीन से ताल्लुक़ रखनेवाले तशरिही (व्याख्यात्मक) चार्टों, नक़्शों और दूसरे सामानों को हासिल करना या उन्हें तैयार करना भी दर्सगाह के कामों का एक अहम हिस्सा है, हम इस तरफ़ ध्यान दे रहे हैं।

इंशा अल्लाह धीरे-धीरे यह काम भी ठीक हो जाएगा। अब तक कुछ नक़्शे, चार्ट व मॉडल तैयार हो गए हैं। कुछ ख़रीदकर हासिल किए गए हैं, जो हैं तो नाकाफ़ी मगर बच्चों के लिए फ़ायदेमन्द हैं।

दर्सी किताबें (पाठ्य-पुस्तकें)

तालीम व तरबियत के बारे में हमारा जो नज़रिया रहा है उसके मुताबिक़ प्रचलित दर्सी किताबें हमारे लिए फ़ायदेमन्द नहीं हो सकतीं। इसलिए शुरू से ही यह मक़सद हमारे सामने रहा है कि अपने निसाब (पाठ्यक्रम) के मुताबिक़ दर्सी क़िताबें हम ख़ुद तैयार करें। मलीहाबाद ही में रहते हुए हमने रमज़ान की छुट्टियों में जमाअत के ऐसे रुफ़क़ा को मर्कज़ बुलाया जो दर्सियात (पाठ्य-पुस्तकों) की तैयारी में हमारी मदद कर सकते थे। मगर एक माह ठहरने के बावजूद कुछ ज़्यादा काम न हो सका। पिछले साल सिर्फ़ कुछ किताबें प्रकाशित हो सकी थीं। इस साल मजलिसे-शूरा (जो कि जनवरी 1951 ई. में हुई थी) ने तय किया कि दर्सगाह के नाज़िम (प्रबन्धक) को कुछ अर्से के लिए उनके कामों से छुट्टी देकर किताबें और निसाब मुकम्मल कराया जाए। चुनांचे इस बात को सामने रखते हुए लगभग एक माह के लिए नाज़िमे-दर्सगाह को दूसरे कामों से छुट्टी दे दी और काफ़ी तरमीम व इज़ाफ़ा (सुधार व घटाने-बढ़ाने) के बाद और कुछ किताबें मुरत्तब (संकलित) करके पूरा सेट प्रकाशित किया गया है। इस सेट में ये किताबें शामिल हैं।

(1) क़ायदा नस्ख़ (अरबी की प्राचीन लिपि) व नस्तालीक़ (उर्दू की लिपि जो सीधी और साफ़ होती है) (2) हमारी किताब भाग एक (3) हमारी किताब भाग दो (4) हमारी किताब भाग तीन (5) हमारी किताब भाग चार (6) हमारी किताब भाग पाँच (7) हमारी किताब भाग छः

उर्दू के इस सेट के साथ-साथ सरसरी अध्ययन के लिए तारीख़ी व अख़लाक़ी कहानियों का भी एक सिलसिला शाया किया गया है जिसमें नीचे लिखी किताबें हैं :

(1) अख़लाक़ी कहानियाँ भाग-एक (2) अख़लाक़ी कहानियाँ भाग-2 (3) अख़लाक़ी कहानियाँ भाग-3 (4) अख़लाक़ी कहानियाँ भाग-4

आसान कहानियाँ हिन्दी के सेट में भी, हमारी पोथी प्राईमर, भाग-1, भाग-2 व भाग-3 तैयार हैं। भाग-4 भी छपने की तैयारी में है। निसाब (पाठ्य-क्रम) भी कक्षा 6 तक मुकम्मल करके किताबी शक्ल में शाया किया गया है।

आगे के मंसूबे

(1) आनेवाले शव्वाल के महीने से दर्जा सात का इज़ाफ़ा किया जाएगा। इसके लिए एक और टीचर का तक़र्रुर होगा। रसोई घर से सटी हुई बिल्डिंग में ज़रूरी तब्दीली होगी ताकि रहने-सहने व तालीम व तरबियत का मसला एक हद तक हल हो सके।

(2) दस्तकारियों और अमली कामों में से अंग्रेज़ी मिठाई बनाना, सिलाई, मोमबत्ती बनाना और लकड़ी व फ्रेट-वर्क को बेहतर बनाने का इंतिज़ाम किया जाएगा। इस समय बाग़बानी, किताबों की जिल्द चढ़ाना और मामूली तौर पर सिलाई व लकड़ी वग़ैरा का काम भी अंजाम पा रहा है, लांड्री का इंतिज़ाम भी किया गया था, मगर कुछ मजबूरियों की वजह से पिछले महीने से कुछ दिनों के लिए रोक दिया गया है।

(3) मैदान का मसला अब तक हल नहीं हो सका है। यह एक बहुत बड़ी कमी है। पी.टी. और मुनज़्ज़म तथा आज़ाद खेल का मामूली इंतिज़ाम कर दिया गया है जो बहरहाल नाक़िस व ज़रूरत के लिहाज़ से बहुत कम है।

(अफ़ज़ल हुसैन, 25 मार्च 1951 ई०)

यह निशस्त 11 बजकर 45 मिनट पर ख़त्म हो गई।

चौथी निशस्त

इस निशस्त में मौलाना हामिद अली साहब ने तहरीके-इस्लामी और उसके तक़ाज़े के उनवान पर नीचे लिखी तक़रीर की।

तहरीके इस्लामी और उसके तक़ाज़े

मसनून खुतबे के बाद.....

यह अल्लाह की बहुत बड़ी मेहरबानी है कि हमने एक मक़सद के साथ ज़िन्दगी गुज़ारने का फ़ैसला किया है। जबकि इस दुनिया में अनगिनत इनसान ऐसे हैं कि जिनकी ज़िन्दगी का कोई सोचा-समझा मक़सद नहीं है। और इससे बड़ी मेहरबानी यह है कि हमने जिस चीज़ को ज़िन्दगी के मक़सद के तौर पर अपनाया है वह कोई मामूली या हक़ीर चीज़ नहीं है। बल्कि दुनिया की सबसे अहम, सबसे ऊँची और सबसे मुक़द्दस (पवित्र) चीज़ है, बल्कि हक़ीक़त में इनसानी ज़िन्दगी का वही एक सही मक़सद है और इससे इनसानी नस्ल की दुनयवी और उख़रवी (परलोक सम्बन्धी) कामयाबी जुड़ी हुई है। यह मक़सद है 'इक़ामते-दीन' यानी अल्लाह के दीन को क़ायम करना। हमने इक़ामते-दीन को ज़िन्दगी के मक़सद के तौर पर अपनाया है और इस वक़्त मुल्क के दूर-दराज़ इलाक़ों से हम यहाँ यही जाइज़ा लेने के लिए जमा हुए हैं कि हमने इस मक़सद के तक़ाज़ों को किस हद तक पूरा किया है और इस राह में हमको कितना और किस तरह आगे बढ़ना है।

"इक़ामते-दीन" कहने में दो लफ़्ज हैं लेकिन इनका मतलब इतना ज़्यादा फैला हुआ है कि इसके दायरे में एक तरफ़ इनसान की पूरी इनफ़िरादी व इजतिमाई ज़िन्दगी आ जाती है, तो दूसरी तरफ़ तमाम इनसानी दुनिया पर इसका दायरा छा जाता है। हक़ीक़त में यह दुनिया का सबसे मुश्किल और नाज़ुक काम है। यह बात मैं इसलिए नहीं कह रहा हूँ कि दुशवारियों का एहसास आपको पीछे हटने की तरफ़ माइल कर दे। यह ज़ाहिर बात है कि सही मक़सद को छोड़कर आप ग़लत मक़सद को आसानियों के लिए इख़्तियार नहीं कर सकते। मक़सद की वुसअत (फैलाव), दुशवारी और नज़ाकत का इसलिए ज़िक्र कर रहा हूँ ताकि आपको इसकी भारी ज़िम्मेदारियों का अच्छी तरह एहसास हो जाए और फिर उसी के मुताबिक़ आप अपने ध्यान और कोशिशों को मक़सद के लिए ज़्यादा-से-ज़्यादा केन्द्रित कर दें।

इक़ामते-दीन के सिलसिले में सबसे अहम और पहला काम यह है कि

आप दीन को अपनी ज़िन्दगी में क़ायम करें। इस सिलसिले का सबसे मुश्किल काम भी यही है, इस्लाम की हिमायत में लेख लिखना, तक़रीर और तनक़ीदें करना आसान है, लेकिन दीन को अपनी ज़िन्दगी में लागू करना बहुत दुशवार और बेहद मुश्किल है, मगर दुनिया में अल्लाह का दीन क़ायम वही लोग कर सकते हैं जो अपनी ज़िन्दगियों में इसे क़ायम करने में क़ामयाब हो जाएँ। दीन को क़ायम करने का काम कोई नया काम नहीं है। तमाम नबी (अलै.) इसी मक़सद के लिए आते रहे हैं और उनके मुक़द्दस साथियों ने इसी को अपनी ज़िन्दगी का मक़सद बनाया था। उन अल्लाह के चुने हुए इनसानों की सीरतों (जीवन-चरित्र) के मुताले से पता चलता है कि दीन की जिद्दोजुहद के सिलसिले में उनका पहला काम यही होता था कि सबसे पहले वे इस दीन की तालीमात को अपनी ज़िन्दगियों में इस तरह उतारा करते थे कि वे ख़ुद उसका बेहतरीन नमूना बन जाते थे। वे तमाम कामों में अल्लाह के हुक्मों की पूरी तरह पैरवी करते, और अल्लाह की बन्दगी का जो काम भी करते बहुत अच्छे ढंग से और लगन के साथ करते और इस सिलसिले में अपने मन को किसी तरह की ढील देना पसन्द न करते और इस तरह की ढील को अपने लिए सबसे ज़्यादा हलाकत व बर्बादी का कारण समझते थे। हक़परस्त (सत्यवादी) और केवल नाम के सुधारकों के सुधार के तरीक़ों में एक बुनियादी फ़र्क़ यह भी है।

इस सिलसिले का पहला काम यह है कि आप अल्लाह के सामने जवाब देने का तसव्वुर करके मुसलसल अपना जाइज़ा लेते रहें कि आप दीन की किस हद तक पैरवी कर रहे हैं। इस जाइज़े के बग़ैर आपको सही अन्दाज़ा न हो सकेगा। इनसान का नफ़्स अकसर उसे धोखे में रखता है और दूसरों पर तनक़ीद (आलोचना) करने और उन तक दावत पहुँचाने में इनसान कई बार अपनी ज़िम्मेदारियों को भूल जाता है। इसलिए ज़रूरी है कि आप आख़िरत की हौलनाकियों को पूरी तरह याद करके सख़्ती से अपना जाइज़ा लेते रहें और लगातार अपने ऊपर नज़र रखें, इसी तरह आप दीन को क़ायम रख सकेंगे और इसी तरह हिसाब के दिन से पहले ख़ुद अपना हिसाब करके अपने-आपको उस दिन की शर्मिन्दगियों और नाकामियों से बचा सकेंगे।

इस सिलसिले की दूसरी चीज़ इक़ामते-सलात (नमाज़ क़ायम करना)

है। किताब (क़ुरआन) व सुन्नत (मुहम्मद सल्ल० की सीरत) के अध्ययन से यह बात आपको अच्छी तरह समझ में आ जाएगी कि 'इक़ामते-सलात' (नमाज़ क़ायम करना) दीन का बुनियादी और अहम तरीन हुक्म है। ईमान के बाद पूरे दीन की इमारत इसपर क़ायम है और अल्लाह की कामिल बन्दगी और हक़ पर सब्र व इस्तिक़ामत (धैर्य एवं दृढ़ता) के लिए इससे बेहतर कोई नुस्ख़ा नहीं। इसलिए जब तक आप नमाज़ क़ायम न करेंगे न अपनी ज़िन्दगी में दीन क़ायम कर सकते हैं न दुनिया में दीन को ग़ालिब कर सकते हैं। अल्लाह का शुक्र है कि हम सब नमाज़ पढ़ते हैं लेकिन इक़ामते-सलात का मतलब सिर्फ़ नमाज़ पढ़ना ही नहीं है बल्कि इक़ामते-सलात का मतलब है नमाज़ को पाबन्दी से सही वक़्त पर जमाअत से पढ़ना और सबसे बड़ी बात यह कि ख़ुशु और आजिज़ी से पढ़ना। सोच-समझकर पढ़ना, इस तसव्वुर को ध्यान में रखते हुए नमाज़ अदा करना कि अल्लाह हमारे सारे कामों और हरकतों को देख रहा है। इस एहसास के साथ अदा करना कि हम अल्लाह से वादा कर रहे हैं और इस वादे को हमें नमाज़ से फ़ारिग़ होने के बाद पूरा करना है। और अल्लाह को इसका जवाब देना है, इस एहसास के साथ नमाज़ में खड़े हों, इस तरह रुकूअ व सज्दे करना कि हम अल्लाह के सामने बेहद आजिज़ी कर रहे हैं और इसी आजिज़ी का सुबूत हमें पूरी ज़िन्दगी में देना है। ये और इस तरह के तमाम ज़ाहिरी और बातिनी-आदाब व शर्तों के साथ नमाज़ अदा करना 'इक़ामते-सलात' है और इस तरह नमाज़ अदा करने में हम जितने कामयाब होते जाएँगे उतने ही हम दीन को क़ायम करने में कामयाबी हासिल करते जाएँगे। दीन पर जमने के लिए इनसान का अपना संकल्प (सब्र) और नमाज़ दो बुनियादी चीज़ें हैं जिनकी तरफ़ किताब (क़ुरआन) व सुन्नत में बार-बार रहनुमाई की गई है।

आप अपने मक़सद को 'शहादते-हक़' के अल्फ़ाज़ में भी बयान करते हैं और खुद क़ुरआन मजीद ने 'शहादते-हक़' को उम्मते-मुस्लिमा की ज़िन्दगी का मक़सद बताया है। ये दो लफ़्ज अपने अन्दर बेपनाह फैलाव रखते हैं। इनकी व्यापकता को समझने और उनका हक़ अदा करने की कोशिश कीजिए। 'शहादते हक़' का मतलब इसके सिवा क्या है कि आप

अपने पूरे वुजूद से हक़ की गवाही दें। आपकी पूरी ज़िन्दगी इस्लाम का नमूना हो। अगर कोई व्यक्ति यह पता करना चाहे कि ज़िन्दगी के मुख़्तलिफ़ शोबों में इस्लाम क्या आदेश देता है और इनसान को किस साँचे में ढालना चाहता है तो इस चीज़ को वह आपकी ज़बान से, आपके कामों और आपकी सरगर्मियों से पता कर ले। आप जहाँ कहीं भी हों जिस हाल में हों और जो कुछ भी कर रहे हों या सोच रहे हों वह ख़ुदा के अहकाम के ठीक मुताबिक़ हो और नबी (सल्ल.) की जीवनी की ठीक-ठाक पैरवी पर आधारित हो। दूसरे लफ़्ज़ों में, आप में से हर इनसान इस्लाम का चलता फिरता नमूना हो। फिर आपके ज़ेहन में इस्लाम का कोई महदूद तसव्वुर नहीं है। आप इस्लाम को एक ऐसा दीन समझते हैं जो बिना किसी अपवाद के इनसान की पूरी ज़िन्दगी के ऊपर छाया हुआ है और आप इस पूरी ज़िन्दगी के सिस्टम को क़ायम करना और इसकी शहादत देना चाहते हैं। इसलिए ज़रूरी है कि आप अक़ीदों, इबादतों, अख़लाक़ी मामलों, सम्बन्धों और आर्थिक व राजनीतिक यानी तमाम कामों में अपनी ज़िन्दगी से इस्लाम का सही नमूना पेश करें और लोगों से अल्लाह की मुकम्मल इताअत में दाख़िल होने की माँग करने के साथ-साथ ख़ुद इस माँग को पूरा करने की हर पल लगातार जिद्दोजुहद करें। इस जिद्दोजुहद के बिना आपकी दावत बे-असर और हँसी और ठिठोली बनकर रह जाएगी और आपकी कथनी और करनी में फ़र्क़ आपको कहीं का न रखेगा। इस मुहिम में कामयाबी हासिल करने के लिए ज़रूरी है कि आपको अल्लाह की किताब और उसके रसूल की सुन्नत का ज़्यादा-से-ज़्यादा इल्म हो और आप यह जानते हों कि मुख़्तलिफ़ मामलों व मसलों में इस्लामी आदेश क्या हैं? और क्या चीज़ अल्लाह और उसके रसूल (सल्ल०) को किस दर्जे में मतलूब व महबूब है। ज़ाहिर है कि इस इल्म के बिना किसी तरह भी मुमकिन नहीं है कि आप अल्लाह के दीन की सही गवाही दे सकें। इसके लिए इससे भी ज़्यादा चीज़ यह है कि अल्लाह की रज़ा और आख़िरत की कामयाबी वास्तव में आपकी पूरी ज़िन्दगी के असली मक़सद बन जाएँ। यही दो चीज़ें, जो कि वास्तव में एक ही हैं, आपके सामने हों। जो काम, जो बात या जो इरादा भी करें इसी लिए करें, कि आपका मालिक व आक़ा आपसे राज़ी हो और आप उसके बदले

व इनाम के मुस्तहिक़ बन सकें। यह जज़्बा जितना आप पर ज़्यादा छाता जाएगा और जितना ज़्यादा आप अपने कामों में इसका शऊर रखेंगे और इस की पाबन्दी करेंगे उतना ही आप दीन की सही गवाही के लिए तैयार हो सकेंगे और उतनी ही आपकी पूरी ज़िन्दगी बन्दगी में और आपके सभी क़ौल और अमल 'अमले-सालेह' (नेक कामों) में बदलते जाएँगे। अमले-सालेह हर उस काम को कहते हैं जो अल्लाह की ख़ुशी और उसको राज़ी करने के लिए किया गया हो और ख़ुदा के अहकाम और प्यारे नबी (सल्ल॰) की सीरत के मुताबिक़ हो। अगर ये दोनों बातें मौजूद हैं तो आपके वे काम भी, जिनको आम तौर पर दुनिया का काम समझा जाता है, नेकी कहलाएँगे और उन सब पर आप अच्छा बदला पाने के मुस्तहिक़ होंगे। लेकिन अगर ये दो बातें न होंगी तो बड़ी-से-बड़ी नेकी भी बन्दगी नहीं है और उसपर किसी तरह का इनाम पाने की उम्मीद नहीं की जा सकती।

आप अपने इस काम को तहरीके-इस्लामी के नाम से जानते हैं। यह लफ़्ज़ अगरचे नया है, मगर अपने मानी के लिहाज़ से पुराना है। ज़रूरत है कि आप इतिहास के तक़ाज़ों को अच्छी तरह जान लें और उनको पूरा करने की धुन में लग जाएँ।

तहरीक ख़ुद अपने लफ़्ज़ ही के मुताबिक़ हरकत और जिद्दोजुहद का तक़ाज़ा करती है। जब तक चन्द लोग किसी मसलक को ज़ाती तौर (व्यक्तिगत रूप) से अपनाए रहते हैं और उसके लिए कोई ख़ास सरगर्मी नहीं दिखाते, उसे मसलक कहा जाता है। और जब उसे सामने रखकर बाक़ायदा और मुनज़्ज़म (सुसंगठित) तरीक़ों से जिद्दोजुहद शुरू कर दी जाती है तो हम उसे तहरीक कहते हैं। इस्लाम को एक तहरीक के तौर पर अपनाने का मतलब यही है कि इसके लिए लगातार और सख़्त जिद्दोजुहद की जाए। वरना तहरीक के बजाए उसे 'जामिद (जमा हुआ) मसलक' कहना ज़्यादा सही होगा। तो क्या आप इसके लिए तैयार हैं कि इस तहरीक को, जिसके लिए आपने अपना सब कुछ लगा देने का फ़ैसला किया है, जामिद मसलक बन जाने दें। अगर आप तहरीक को इस तरह के किसी ख़तरनाक अंजाम से दो-चार नहीं करना चाहते तो तहरीक को तहरीक की

तरह चलाना होगा और इसके लिए लगातार जिद्दोजुहद करनी होगी। वरना यह सारा काम केवल दिमाग़ी अय्याशी या लफ़्ज़ी फ़ल्सफ़ा बनकर रह जाएगा।

आप जिस दुनिया में अपनी तहरीक का बोलबाला करना चाहते हैं उसमें अनगिनत दूसरी तहरीकें चल रही हैं और हर तहरीक कोशिश कर रही है कि औरों से बाज़ी ले जाए और सारी दुनिया पर वही छा जाए। इन तहरीकों के अलमबरदार (ध्वजावाहक) जो कुछ कर रहे हैं वह आपके सामने है। जिस सरगर्मी से वे एक-एक आदमी तक अपनी बात पहुँचाते हैं, जिस धुन के साथ वे अपने मक़सद को हासिल करने में लगे रहते हैं, जिस शौक़ और उत्साह के साथ वे अपने नस्बुल-ऐन (मक़सद/लक्ष्य) के लिए अपनी ज़िन्दगियों और अपने जान व माल की बाज़ी लगाते हैं। जिस लगन व यकसूई (एकाग्रता) के साथ वे अपनी तहरीक को आगे बढ़ाने के लिए अपनी ज़ेहनी, अमली और ज़बानी सलाहियतों को लगातार ख़र्च करते रहते हैं और जिस सब्र व साबित-क़दमी (दृढ़ता) को वे हर-हर क़दम पर दिखाते हैं, इस सबसे कौन बेख़बर है? तो क्या आप इन गुणों में इनसे आगे बढ़े बग़ैर कामयाब हो सकते हैं? यक़ीनन नहीं! तो सोचिए कि आपको क्या कुछ करना है और आप क्या कुछ कर रहे हैं। इस लिहाज़ से अगर आप अपना जाइज़ा लेंगे तो आपको महसूस होगा कि आप कितने ज़्यादा पीछे हैं कि अपनी मौजूदा कोशिशों और अमल से किसी तरह बाज़ी जीतने के बारे में सोच भी नहीं सकते। तो क्या आप इसपर मुत्मइन व ख़ुश हैं? अगर नहीं तो उठिए, अपनी आराम-पसन्दी को पीछे छोड़िए, अपने दुनियावी कामों को मुख़्तसर कीजिए, अपना वक़्त बेकार कामों में मत लगाइए और पूरी सरगर्मी व लगन के साथ दावत व तबलीग़ के काम में लग जाइए। घर के अन्दर, घर के बाहर, मोहल्ले और बस्ती में और मुल्क के आस-पास में जहाँ कहीं भी मौक़ा मिले, अपनी आवाज़ पहुँचाइए, पहुँचाते रहिए। दलीलों और गवाहियों के साथ, इल्मी और फ़िक्री दलीलों के साथ अपनी दावत पेश कीजिए और लगातार पेश करते रहिए। यहाँ तक कि यह काम आपकी ज़िन्दगी का ज़मीमा (परिशिष्ट) नहीं बल्कि सबसे बड़ा और सबसे अहम

काम बन जाए जिसमें आपका ज़्यादा-से-ज़्यादा वक़्त और क़ुव्वत लगे। बढ़िए, और बढ़कर इस रास्ते की हर मुश्किल का, मुस्कराते हुए चेहरे के साथ स्वागत कीजिए। मुख़ालफ़तें हों, बदगुमानियाँ हों, सियासी व मआशी परेशानियाँ हों, कुछ भी हो आप उस राह पर बराबर आगे बढ़ते चले जाइए, जिसे आप सीधी राह समझते हैं और जिसपर चलने में आप अपनी, अपनी क़ौम की, अपने मुल्क की और तमाम दुनिया की कामयाबी का यक़ीन रखते हैं। आपको इस मक़सद के लिए हर तरह की क़ुरबानी देनी होगी। वक़्त की क़ुरबानी, दौलत की क़ुरबानी, फ़ायदों की क़ुरबानी राहत व आराम की क़ुरबानी, उम्मीदों और शानदार मुस्तक़बिल (भविष्य) की क़ुरबानी और आप इस क़ुरबानी में जितने आगे होंगे उतने ही तहरीक के लिए फ़ायदा पहुँचानेवाले होंगे और उतना ही आप इसका हक़ अदा कर सकेंगे।

तहरीक का दूसरा लाज़िमी हिस्सा इजतिमाइयत है। तहरीक कहते ही इजतिमाई जिद्दोजुहद को हैं और किसी तहरीक की कामयाबी व नाकामी में जितना दख़ल जिद्दोजुहद की कमी या बहुतायत को है, इजतिमाइयत की मज़बूती और कमज़ोरी का मक़ाम भी इससे कम नहीं। वैसे भी यह ज़माना पिछले तमाम ज़मानों के मुक़ाबले में बहुत ज़्यादा इजतिमाई है। इसमें हर निज़ाम (व्यवस्था) और तहरीक का इजतिमाई पहलू बहुत उभरा हुआ है। आज हर बातिल (असत्य) अत्यन्त मुनज़्ज़म और संगठित है, हर बुराई इजतिमाई ताक़त रखती है, हर झगड़ा व फ़साद तंज़ीम (संगठन) के साथ सामने आता है, इसलिए अगर आप बातिल को गिराना और नीचा दिखाना चाहते हैं, अगर आप हर बुराई और फ़साद से दुनिया को पाक करना चाहते हैं और नेकी व सुधार से इनसानी दुनिया को भरा हुआ देखना चाहते हैं तो यह उसी वक़्त हो सकता है जब आप हक़ के अलमबरदार और नेकी व सुधार की दावत देनेवाले होने के साथ-साथ अकेलेपन को छोड़कर इजतिमाइयत अपना लें और इजतिमाई मज़बूती, अमीर की इताअत और अनुशासन में अहले-बातिल (असत्यवादियों) से बाज़ी ले जाएँ।

यह एक स्पष्ट और खुली वास्तविकता है और ख़ुद इस्लाम भी इस वास्तविकता की तरफ़ मार्गदर्शन करता है। वह बिखराव और अस्त-व्यस्त

ज़िन्दगी को जाहिलियत की ज़िन्दगी ठहराता है। वह हक़परस्तों के लिए इजतिमाई ज़िन्दगी को लाज़िमी ठहराता है। वह उन्हें हिदायत करता है कि वे हर तरह की फूट और इंतिशार से बचें। वह 'अल-जमाअत' से फिरनेवाले को जहन्नम में जानेवाला बताता है और सत्यवादियों की ज़माअत में फूट डालनेवाले की सज़ा क़त्ल तय करता है। वह इस बात को कभी सहन नहीं करता कि हक़-परस्तों में ज़ाती, ख़ानदानी, नस्ली और तबक़ाती (वर्गीय) पक्षपात फैलें और मुस्लिम उम्मत का शीराज़ा मुन्तशिर कर दें। वह हर रोज़ पाँच वक़्त नमाज़ में एक इमाम की मुकम्मल इताअत और उसकी पैरवी में कन्धे-से-कन्धा मिलाकर अल्लाह की बन्दगी का अभ्यास कराता है ताकि ईमानवाले अपनी ज़िन्दगी में इस इजतिमाइयत के आदी (अभ्यस्त) हो सकें। वह उन तमाम आदतों, तौर-तरीक़ों, अक़्वाल-व-आमाल, जज़्बात और ख़यालात को परवान चढ़ाता है और उनपर ज़ोर देता है जो एक इनसान को दूसरे इनसान से जोड़ते, उनमें मुहब्बत पैदा करते और उन्हें एक उम्मत बनाते हैं और उन तमाम बातों और कामों और दिली रुझानों से सख़्ती के साथ रोकता है जो ताल्लुक़ को बिगाड़ते और मनमुटाव का किसी हद तक भी सबब बनते हैं। फिर वह वाज़ेह करता है कि हक़ (सत्य) और बातिल (असत्य) की कशमकश में अमीर की इताअ़त भी अहम और निर्णायक स्थान रखती है और अगर इसके तक़ाज़े पूरे न किए गए तो हक़-परस्त हक़ पर होने के बावजूद बातिल-परस्तों (असत्यवादियों) के हाथों मात खा सकते हैं।

फिर जैसा कि बताया जा चुका है कि इजतिमाइयत भीड़ की तरह इकट्ठा होने का नाम नहीं है। इजतिमाइयत, नज़्म, डिसिप्लिन और इताअते-अम्र (आदेशानुपालन) का नाम है। इन गुणों के बग़ैर इजतिमाइयत की कल्पना भी नहीं की जा सकती और इस्लाम की इजतिमाइयत तो और भी बुलन्द है। दुनिया के दूसरे निज़ाम (सिस्टम) बाहरी सुधार चाहते हैं, इसलिए वे दिलों की इजतिमाइयत के बजाए बाहरी इजतिमाइयत पर सब्र कर लेते हैं। फिर वे ज़िन्दगी के किसी एक भाग को अपने ध्यान का केन्द्र बनाते हैं। इसलिए वे ख़ास वक़्तों और ख़ास कामों में इजतिमाइयत के मुज़ाहरे

(प्रदर्शन) को काफ़ी समझते हैं और इसके बाद इनसान को आज़ाद छोड़ देते हैं। इस्लाम इनसान के बाहर और भीतर दोनों का सुधार चाहता है। इसलिए वह बाहरी इजतिमाइयत से पहले ज़रूरी समझता है कि दिलों में आपसी मेल-मिलाप और मुहब्बत पैदा हो। हर मोमिन दूसरे मोमिन से मुहब्बत करे, उसका भला चाहनेवाला हो और उसके लिए वही चाहे जो अपने लिए चाहता हो। फिर वह चाहता है कि हर मोमिन नज़्म व डिस्पिलिन की पाबन्दी दिल व जान से करे। दिल की इन्तहाई गहराइयों से अपने (उच्चाधिकारियों) के आदेशों का पालन करे और हर चीज़ से ज़्यादा अल्लाह और रसूल और ईमानवालों के इजतिमाई निज़ाम का वफ़ादार व जाँनिसार हो। और क़ुरआन के शब्दों में तमाम ईमान वाले 'बुनियाने-मरसूस' (सीसा पिलाई हुई दीवार) और नबी (सल्ल०) के कथनानुसार 'जस्दे-वाहिद' (पूरी उम्मत एक जिस्म) की तरह हो जाएँ।

फिर इस्लाम पूरी ज़िन्दगी पर छाया हुआ है। इसलिए वह कुछ इजतिमाई मुज़ाहरों पर राज़ी नहीं हो सकता। वह ठोस और स्थाई इजतिमाइयत चाहता है। वह एक मोमिन दूसरे को मोमिन से हर वक़्त जुड़ा हुआ देखना चाहता है। वह चाहता है कि किसी वक़्त भी मुस्लिम समाज अमीर की इताअत से मुँह न फेरे, पूरा मुस्लिम समाज एक इकाई में बदल जाए। यह है इस्लामी इजतिमाइयत और अगर आप हक़ का बोलबाला करना चाहते हैं और इस्लाम के बुनियादी तक़ाज़े पूरे करना आपके पेशे-नज़र है तो आपके लिए ज़रूरी है कि पूरी सरगर्मी और लगातार जिद्दोजुहद के साथ-साथ पूरी तरह इस इजतिमाइयत को भी अपनाएँ और रस्मी इजतिमाइयत को पीछे छोड़कर हक़ीक़ी इजतिमाई ख़ूबियों के बढ़ाने और उनको तरक़्क़ी देने में लग जाएँ।

तहरीक के इन दोनों तक़ाज़ों को आप उसी वक़्त पूरा कर सकते हैं कि दीनी जिद्दोजुहद और इस्लामी इजतिमाइयत के सिलसिले के आदेश आपके सामने हों, अमीर की इताअत, जमाअत का नज़्म, बन्दों के हक़, अख़लाक़ व मामलात और ताल्लुक़ के सिलसिले के आदेशों को ख़ास तौर से सामने रखिए और उनपर ठीक-ठीक अमल कीजिए कि इसी से हक़ीक़ी इजतिमाइयत पैदा हो सकती है। इससे भी ज़्यादा ज़रूरी यह है कि आपमें से हर व्यक्ति

अपनी ज़िम्मेदारियों को बार-बार याद करे, किताब (क़ुरआन) व सुन्नत का अध्ययन पूरी तन्मयता, लगन, अक़ीदत व मुहब्बत के साथ रहनुमाई व मार्गदर्शन के लिए करे। ख़ुदा और रसूल की इताअत में एक दूसरे से आगे बढ़ने की कोशिश करे। अल्लाह की याद और आख़िरत की याद से अपने दिलों को आबाद करे और अपनी ज़बान को अल्लाह की याद से तर रखे। यही चीज़ें इस राह में काम आनेवाली चीज़ें हैं। और इनके बग़ैर इस रास्ते में ठीक तौर पर एक क़दम भी नहीं उठाया जा सकता।

आख़िर में मैं अपने रुफ़क़ा को एक ख़तरनाक हक़ीक़त से आगाह करना चाहता हूँ। आज ज़मीन पर अरबों इनसान बसते हैं। उनकी ज़िन्दगियाँ आपके सामने हैं। ज़ुल्म, फ़साद, बुराई, कुफ़्र व शिर्क, नास्तिकता, बर्बरता, पशुता, बेहयाई व अनैतिकता और चालबाज़ी व धोखाबाज़ी की गर्म बाज़ारी जैसी कुछ इस दौर में है शायद कभी न हुई होगी। अब ज़रा मैदाने-हश्र को तसव्वुर में लाइए। सब लोग सारे जहानों के रब के सामने खड़े अपने किए की जवाबदेही कर रहे हैं। इस दौर के इनसान पेश होते हैं, सख़्त-से-सख़्त जुर्मों के करनेवाले और सख़्त सज़ा के मुस्तहिक़। क्या ये लोग यह न कह सकेंगे कि परवरदिगार हम इन्तिहाई क़ुसूरवार हैं, लेकिन हम क्या करते हमारे सामने ईमान की रौशनी न थी, हम भलाई व कामयाबी का क़ानून न जानते थे। हमें अख़लाक़ व नेक अमल की ख़बर न थी। जो लोग तेरा क़ानून अपने पास रखते थे, उन्होंने हम तक इस क़ानून को नहीं पहुँचाया और न उनकी ज़िन्दगी और उनकी सरगर्मियों से हम इस क़ानून को जान सके। वे तो उन ही बद आमालियों, बद अख़लाक़ियों और उन ही नज़रियात व ख़यालात का शिकार थे जिनका हम शिकार थे। फिर हम कैसे जानते कि तेरा दीन क्या है और उसपर कैसे अमल होता है। आपका क्या ख़याल है? क्या इसके बाद लोगों पर गवाह होने के लिहाज़ से मुसलमानों से पूछ-गछ न होगी? यह पूछ-गछ अगर हुई तो आम मुसलमान तो यह बहाना पेश कर सकेंगे कि ऐ अल्लाह! हमें तेरे दीन का सही इल्म न था कि हम उसपर अमल करते और उसे दूसरों तक पहुँचाते। हमारे आलिमों ने, मज़हबी व सियासी लीडरों ने हमें उस इल्म से महरूम रखा। इसलिए हमसे ज़्यादा उनसे पूछ-गछ होनी चाहिए

और हमारी कमियों और कोताहियों में जितना उनका हिस्सा है, उतनी सज़ा उन्हें भी मिलनी चाहिए। अगर आप यूँ ही सोचते जाएँ तो यह सिलसिला उन लोगों पर आकर ख़त्म होगा जिन्हें दीन के तक़ाज़ों का अच्छी तरह इल्म था और जिन्होंने सोच समझकर और यकसूई (एकाग्रता) के साथ पूरे दीन पर अमल करने, उसकी दावत देने और उसे क़ायम करने का अहद किया था, क्योंकि यही पूरी ज़मीन का नमक थे। इस अंधेरी नगरी में यही रौशनी का चिराग़ थे। हक़ की क़ीमती दौलत अपनी अस्‌ल शक्ल में उन ही के पास महफ़ूज़ थी और इसकी ज़िम्मेदारियाँ उनपर वाज़ेह थीं और उन्होंने इस काम के लिए अपने आपको क़ुरबान कर देने का पक्का इरादा किया था। अब अगर इस छोटे से गरोह ने दुनिया के हौलनाक और चौतरफ़ा बिगाड़ को सामने रखकर अपनी ज़िम्मेदारियों को अदा करने की अनथक कोशिश की थी, अगर इसने हक़ का पैग़ाम पहुँचाने में कोई कसर न उठा रखी थी, अगर इसने हक़ की इताअत और हक़ की गवाही का हक़ अदा करने की लगातार जिद्दोजुहद की थी और अगर इसने वह सब कुछ कर डाला था जो वह कर सकता था तो वह गरोह अल्लाह के यहाँ ज़िम्मेदारी से छूट जाएगा और इनाम का मुस्तहिक़ होगा। और दुनिया अपनी कोताहियों पर पकड़ी जाएगी। लेकिन अगर इस छोटे से गरोह ने भी हक़ की गवाही का हक़ अदा न किया और दुनिया यूँ ही भटकती रही तो आप ख़ुद ही फ़ैसला कीजिए कि क्या दुनिया की गुमराही की सबसे ज़्यादा ज़िम्मेदारी इसी गरोह पर न आएगी? फिर आप सोचिए कि क्या किसी इनसानी गरोह में भी इस भारी बोझ को उठाने की ताक़त है? क्या इसकी अपनी कोताहियाँ और ग़लतियाँ जवाबदेही के लिए कुछ कम हैं, जो इतनी बड़ी इनसानी दुनिया के कुफ़्र व शिर्क, फ़िस्क़ (ख़ुदा की नाफ़रमानी) और इल्हाद (नास्तिकता) और ज़ुल्म व फ़साद की जवाबदेही उसके सिर आए। यक़ीन जानिए वह छोटा सा गरोह आप ही हैं। वे आप ही हैं जिन्हें इस गुमराही व अज्ञानता के दौर में अल्लाह की मेहरबानी से दीन के तक़ाज़ों का अच्छी तरह इल्म है और वे आप ही है जिन्हें अल्लाह ने यह नेक जज़्बा दिया है कि उसकी पूरी-पूरी बन्दगी और उसके दीन की दावत देने और उसे क़ायम करने का पूरी दिलैरी से अहद करें तो क्या इस अहद की ज़िम्मेदारियाँ आपको याद रहती हैं? क्या हिसाबवाले दिन की

जवाबदेही का यह हौलनाक नक़्शा आपकी नज़रों में बार-बार आता है और क्या आपने उन अज़ीम हौलनाकियों से बचने के लिए पर्याप्त योजनाएँ बना ली हैं? आइए इस 'कल' के बचाव के लिए आज का तमाम सरमाया हम लगा दें और दायमी मुस्तक़बिल की नजात व कामयाबी के लिए अपना सब कुछ खपा दें कि मोहलत महदूद है और काम ज़्यादा, और हमारी ज़िन्दगी का अंजाम बहुत ही ख़तरनाक है या बहुत ही खुशियों भरा।

"हर शख़्स को यह देखना चाहिए कि उसने कल के लिए क्या भेजा है।"

अब मैं कुछ बातें अपने उन दोस्तों से कहना चाहता हूँ जो जमाअत के रुक्न नहीं हैं। इस सिलसिले में सबसे पहले हमारे सामने हमदर्द आते हैं जो हमसे पूरी तरह मुत्तफ़िक़ हैं और हमारा काम भी कर रहे हैं, मगर अपने आपको जमाअत के हवाले नहीं करते। उनका ख़याल है कि असूल चीज़ काम है। और वह हो ही रहा है तो जमाअत में शामिल होना क्या ज़रूरी है? मैं उनसे कहना चाहूँगा कि इस्लाम इजतिमाइयत को चाहता है और इजतिमाइयत का जो अर्थ है वह इससे पहले बताया जा चुका है। इसलिए आप इजतिमाई ज़िन्दगी इख़्तियार न करके इस्लाम के एक अहम मुतालबे को पूरा नहीं कर रहे हैं और दीन के एक बुनियादी तक़ाज़े से जानबूझ कर नज़रें बचा रहे हैं। आख़िर यह हिम्मत आप किस तरह कर रहे हैं? कुछ हमदर्द सोचते हैं कि उनमें कुछ कमियाँ व ख़ामियाँ हैं इसलिए बेहतर यही है कि वे जमाअत के नज़्म से अलग रहें। मैं ऐसे दोस्तों से कहना चाहूँगा कि इजतिमाई ज़िन्दगी से भागने के लिए ये बहाने और मजबूरियाँ पेश करना ठीक नहीं है। कमियाँ अगर बुनियादी हैं तो उन्हें फ़ौरन दूर कीजिए। जमाअत में दाख़िल होने न होने से कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता। वे तो आपको मुसलमान होने की हैसियत से दूर करनी ही हैं और फ़ौरन दूर करनी हैं। क्योंकि हम में से किसी को नहीं मालूम कि उसकी उम्र की मोहलत कब तक है और कब वह अचानक ख़त्म हो जाए। इसलिए उन ख़राबियों को बहाना बनाने के बजाए उनको दूर करके इजतिमाई ज़िन्दगी इख़्तियार कीजिए और अगर वे मामूली व जुज़्वी ख़राबियाँ हैं तो वे इजतिमाई ज़िन्दगी इख़्तियार करने में रुकावट नहीं हैं। यह दायरा कामिलों (पूर्ण लोगों) का दायरा नहीं है कि तमाम

कमियों व ख़ामियों से पाक होकर इनसान इसमें शामिल हो सकता हो। हम में से हर शख़्स कमियाँ रखता है और हमने यह इजतिमाइयत इख़्तियार ही इसलिए की है कि हम मिल-जुल कर एक-दूसरे की कमियाँ दूर कर सकें। आप भी इससे फ़ायदा उठाइए। ये बातें मैं सिर्फ़ उन लोगों से अर्ज़ कर रहा हूँ जो जमाअत की हर-हर बात से पूरी तरह मुत्तफ़िक़ (सहमत) हैं, इसके लिए काम करना चाहते हैं और कर रहे हैं। मैं उनपर इजतिमाई ज़िन्दगी की अहमियत वाज़ेह कर रहा हूँ। मैं आमतौर पर जमाअत में दाख़िल होने की दावत नहीं दे रहा हूँ।

फिर कुछ ऐसे दोस्त भी मौजूद हैं कि जो हमसे इत्तिफ़ाक़ रखते हैं लेकिन यह इत्तिफ़ाक़ ज़बानी हदों से निकलकर अमल की दुनिया तक नहीं पहुँच सका है। मैं ऐसे दोस्तों से पूछना चाहता हूँ कि अगर करने का काम यही है तो फिर इसके करने का वक़्त कब आएगा? क्या इस वक़्त के हालात आपको अमल पर उभारने के लिए काफ़ी नहीं? क्या हर तरफ़ फैला हुआ अन्धेरा आपको रौशनी फैलाने की दावत नहीं दे रहा है? क्या गुमराही का बुरी तरह छा जाना आप में ज़िम्मेदारी के एहसास को नहीं जगाता? क्या आप उस वक़्त काम का हौसला करेंगे जब काम का ज़माना ख़त्म हो जाएगा? क्या आपकी हक़-परस्ती उस वक़्त जोश में आएगी जब बातिल पूरी तरह छा जाएगा? क्या आप अपनी और दुनिया की इस्लाह की फ़िक्र उस वक़्त करेंगे जब दुनिया तबाही की भेंट चढ़ चुकी होगी और उसके साथ आप भी? क्या आपको इसका अन्देशा नहीं है कि आपकी सुस्ती कहीं आपकी उम्र की मोहलत और अमल की मोहलत को हमेशा के लिए ख़त्म न कर दे? ख़ुदा के लिए सोचिए! कि आपका यह रवैया कहाँ तक आपके लिए सही है और आप हाथ पर हाथ धरे आख़िर किस दिन के इन्तिज़ार में बैठे हैं। बराए-करम तहरीक को फिर समझिए, उसकी ज़िम्मेदारियों को अच्छी तरह ज़ेहन में बिठा लीजिए। क़ुरआन व सुन्नत का गहरा मुताला (अध्ययन) कीजिए और उनसे इस्लाम व ईमान के तक़ाज़ों को मालूम कीजिए और अपने इरादे व ईमान को मज़बूत करके दीन को ग़ालिब करने के काम में लग जाइए।

कुछ ऐसे दोस्त भी हैं जो हक़ की तलाश में यहाँ आए हैं। हम उनके इस जज़बे की क़द्र करते हैं। हम उनसे दरख़ास्त करते हैं कि वे सिर्फ़ इसी इजतिमा को काफ़ी न समझें। हमें समझने के लिए ज़रूरी है कि हमारी किताबों का ग़ौर से मुताला किया जाए। इन्हें पढ़े बग़ैर तहरीक को ठीक-ठीक समझना मुश्किल है। मैं उनसे यह भी अर्ज़ करूँगा कि वे इस मामले में ज़्यादा वक़्त न लगाएँ। अपनी पहली फ़ुरसत में इस काम से फ़ारिग़ हो लें। ज़माने की रफ़्तार बहुत तेज़ है, हालात बहुत तेज़ी के साथ बदल रहे हैं। पता नहीं कब तक हालात काम करने का मौक़ा दें। इसलिए बेहतर है कि आप जल्दी अपना मक़ाम व हैसियत तय कर लें। इस अध्ययन के बाद अगर आप हमसे पूरी तरह मुत्तफ़िक़ न हो सकें या हमारी कमियों की वजह से भरोसा न कर सकें तो हमारी मुख़लिसाना दरख़ास्त यह है कि आप दिल तोड़कर या ग़ुस्सा होकर न बैठ रहें, अपने तौर पर दीन के काम को अंजाम देने में सरगर्मी से लग जाए। हमारी ख़ामियों और ग़लतियों से आपकी ज़िम्मेदारियाँ तो कम नहीं हो जातीं, बल्कि सच पूछिए तो कुछ बढ़ ही जाती हैं।

तहरीक की मुख़ालिफ़त करनेवालों से हम बड़े दर्द के साथ यह कहने पर मजबूर हैं कि आप मुख़ालिफ़त की बुनियाद सुनी-सुनाई बातों पर न रखें। आप ग़ैर जानिबदाराना (निष्पक्ष) तहक़ीक़ के बाद ही कोई राय क़ायम करें। इसके बिना मुख़ालिफ़त की मुहिम को लेकर चलना ग़ैर-ज़िम्मेदाराना हरकत है और एक मोमिन की शान से बहुत ही गिरी हुई बात है। फिर यह बात भी बड़ी ग़लत होगी कि आप तहरीक की मुख़ालिफ़त इसलिए करें कि वह आपकी मख़सूस जमाअती हदबन्दियों को क़बूल नहीं कर रही है या आपके 'बड़ों' (उलमा) के पीछे-पीछे नहीं चल रही है। हक़ इससे बुलन्द है कि इस तरह की बातों की बुनियाद पर उसकी मुख़ालिफ़त की जाए। और अगर आप इन सब बातों को नज़र-अन्दाज़ करते हुए मुख़ालिफ़त पर अड़े रहना ही चाहते हैं तो आपसे आख़िरी गुज़ारिश यह है कि दीन जिस तरह हमारा है उसी तरह आपका भी है। मौजूदा हालात में यह ख़ास तौर से बड़ी मदद चाहता है। आप इस सिलसिले की अपनी ज़िम्मेदारियों को न भूल जाएँ और

हमारी मुख़ालिफ़त में कभी-कभी यह भी सोच लिया कीजिए कि कहीं आप अपने महबूब दीन के मक़सद को नुक़सान तो नहीं पहुँचा रहे हैं।

आख़िर में मैं अपने ग़ैर-मुस्लिम दोस्तों से बहुत ही ख़ुलूस (निष्ठा) के साथ यह कहना चाहता हूँ कि इस्लाम किसी ख़ास क़ौम की जागीर नहीं है। वह अपनी जेब और दामन में हमेशा क़ायम रहनेवाली ऐसी सच्चाइयाँ रखता है जिनका किसी गरोह, सम्प्रदाय और किसी देश से कोई ख़ास ताल्लुक़ नहीं है। वह सबके लिए सामान रूप से फ़ायदेमन्द और नजात (मुक्ति) देनेवाला है। हमने अपने लिट्रेचर में यह साफ़ करने की कोशिश की है कि इन सच्चाइयों से आज हम किस तरह फ़ायदा उठा सकते हैं और किस तरह उनसे हमारे उलझे हुए मसाइल सुलझ सकते हैं। आप हमारी इस दावत का ग़ौर व फ़िक्र के साथ अध्ययन करें और अगर वह सही लगती हो तो उसे इसलिए न ठुकरा दें कि मुसलमान इस्लाम का नाम लेते हैं और आपको उनसे शिकायतें हैं। आप अगर मुसलमान दुश्मनी में इन फ़ितरी, इनसानी और हमेशा क़ायम रहनेवाली सच्चाइयों का इनकार करेंगे तो ख़ुद सोचिए नुक़सान आपका ही होगा। इस सिलसिले में ख़ुद मुसलमानों का अंजाम आपके लिए बड़ा सबक़ आमोज़ (शिक्षाप्रद) है। वे इसी लिए ज़लील और नाकामी के शिकार हो रहे हैं कि उन्होंने इस्लाम की ज़िम्मेदारियों को भुला दिया और इस्लाम की दावत को अमलन क़बूल करने के बजाए आम तौर पर सिर्फ़ उसके नाम को काफ़ी समझ लिया। मुसलमान ख़ास तरह के हालात की वजह से इस वक़्त देश में कोई अहम भूमिका अदा करने के क़ाबिल नहीं हैं, लेकिन आप हज़रात को ख़ुदा ने मौक़ा दिया है कि आप देश के सुधार और सेवा के लिए सब कुछ कर सकते हैं। इस चीज़ ने आपके काँधों पर ज़िम्मेदारियों का बहुत बड़ा बोझ डाल दिया है। आप इन ज़िम्मेदारियों को अच्छी तरह महसूस करें और देश की नजात (मुक्ति) और दुनिया की सही रहनुमाई के लिए तैयार हो जाएँ। इस सिलसिले में अगर आप महसूस करते हैं कि हमारा प्रोग्राम आपके लिए फ़ायदेमन्द साबित हो सकता है तो कोई वजह नहीं है कि आप इससे लाभ न उठाएँ और हमारे साथ सहयोग न करें।

व आख़िरू दावाना अनिल-हम्दु लिल्लाहि रब्बिल-आलमीन। "आख़िर में हम सारे जहानों के रब अल्लाह की हम्द करते हैं।"

मौलाना की तक़रीर लगभग सवा पाँच बजे तक चलती रही। इसके बाद तजवीज़ों और मशवरों का प्रोग्राम था। इस प्रोग्राम को शुरू करते हुए जनाब अमीरे-जमाअत ने फ़रमाया :

मुहतरम साथियो! इस बैठक (निशस्त) में मौलाना हामिद अली साहब की तक़रीर के बाद अब तजवीज़ों पर ग़ौर हो रहा है। मुझे ख़ुशी है कि इस बार रुफ़क़ा ने इस तरफ़ काफ़ी ध्यान दिया है, जिसकी वजह से तजवीज़ें काफ़ी तादाद में आई हैं। मगर वक़्त की कमी की वजह से उन सब तजावीज़ पर इस वक़्त ग़ौर न हो सकेगा।

इन तजवीज़ों में से कुछ को मशवरे की सूरत में नोट कर लिया गया है। उनपर ग़ौर और अमल किया जाएगा। कुछ तजावीज़ को बहुत ज़्यादा अहमियत हासिल है और इस वक़्त ग़ौरो-ख़ोज़ (विचार-विमर्श) करने का ज़्यादा मौक़ा नहीं है। इसलिए मैं उनको मुनासिब वक़्त के लिए उठा रखूँगा। बाक़ी तजावीज़ को में एक-एक करके पढ़ता जाऊँगा और उसके सिलसिले में अपना ख़याल ज़ाहिर करता जाऊँगा। वक़्त की कमी के सबब आम चर्चा का मौक़ा नहीं है। लेकिन अगर तजवीज़ देनेवाले या कोई और साहब मेरे ख़यालात ज़ाहिर करने के बाद कुछ कहना चाहें तो वे कह सकते हैं।

इसके बाद तजावीज़ और मशवरे पेश होने शुरू हुए। एक-एक तजवीज़ पढ़ी जाती और अमीरे-जमाअत उसके बारे में अपनी राय का इज़हार करते जाते।

तजावीज़ का यह प्रोग्राम अभी चल ही रहा था और इस दौरान में कुछ तजावीज़ पेश हो चुकी थीं कि औरतों के इजतिमा की वजह से इस प्रोग्राम को मुल्तवी करना पड़ा। इस बीच में जो तजावीज़ पेश हो सकी थीं उनको हम यहाँ बयान करने के बजाए तजावीज़ के अगले प्रोग्राम में एक साथ बयान करेंगे ताकि तसलसुल (क्रमबद्धता) बनी रहे।

औरतों से ख़िताब

इस इजतिमा में शिरकत के लिए बाहर से भी औरतें अच्छी ख़ास तादाद में आई हुई थीं और मक़ामी ख़वातीन भी आम तौर पर सौ-दो-सौ की तादाद में इजतिमा में शरीक हुआ करती थीं। उनका प्रोग्राम इस तरह का होता था कि वे आम इजतिमा की कार्रवाइयों में अपनी निशस्तगाह में बैठकर शिरकत करती थीं जो इजतिभागाह से बिलकुल मिली हुई थी और जहां लाउड-स्पीकर की आवाज़ अच्छी तरह सुनाई देती थी और जो प्रोग्राम उनके लिए ज़्यादा फ़ायदेमन्द न होते थे उनके वक़्तों में उनका अलग प्रोग्राम हुआ करता था। चुनांचे उसके मुताबिक़ उनके लिए आज एक खुसूसी प्रोग्राम मौलाना मुहम्मद ज़करीया साहब क़ुद्दूसी शैख़ुत्तफ़सीर मज़ाहिरुल-उलूम सहारनपुर की तक़रीर का रखा गया। मौलाना की तक़रीर प्रोग्राम के मुताबिक़ उनकी खुसूसी इजतिमागाह में शुरू हुई, लेकिन थोड़ी देर की तक़रीर के बाद यह महसूस हुआ कि मौलाना की आवाज़ लाउड-स्पीकर की मदद के बिना तमाम औरतों तक नहीं पहुँच रही है, इसलिए इजतिमा की नाज़िमा ने अमीरे-ज़माअत को इस मुश्किल की तरफ़ तवज्जोह दिलाते हुए ख़ाहिश की कि थोड़ी देर के लिए लाउड-स्पीकर उनके सुपुर्द कर दिया जाए। इसपर अमीरे-जमाअत ने रुफ़क़ा के मशवरे से यह तय किया कि मौलाना इजतिमागाह में तशरीफ़ लाकर लाउड-स्पीकर पर तक़रीर करें और तजवीज़ों (प्रस्तावों) की कार्रवाई कल तक के लिए मुल्तवी कर दी जाए ताकि मौलाना की तक़रीर को सब औरतें सुन सकें। साथ ही दूसरे लोग भी फ़ायदा उठा सकें। इसके बाद मौलाना इजतिमागाह में तशरीफ़ लाए और अपनी तक़रीर को जारी रखते हुए कहा

"एक मुसलमान औरत के लिए ज़रूरी है कि पर्दे के सिलसिले में जो अहकाम अल्लाह ने और उसके रसूल (सल्ल0) ने दिए हैं

उनका ख़याल रखे।" इस सिलसिले में मौलाना ने हज़रत आइशा (रज़ि0) की मिसाल पेश की। आपने बताया कि वे नबी (सल्ल0) की मुहतरम बीवी और मुसलमानों की माँ थीं। उनके बारे में कोई मुसलमान किसी तरह बुरा ख़याल दिल में ला भी नहीं सकता था। लेकिन वे परदे का पूरा एहतिमाम करती थीं। वे दीन के इल्म में बहुत से मर्द सहाबियों से आगे थीं। इस वजह से बहुत से मर्द उनकी ख़िदमत में हाज़िर होते और तरह-तरह के मसाइल पूछते। लेकिन वे न तो सामने आतीं और न ख़ुद ही उनकी बातों का जवाब देतीं। पर्दे के पीछे बैठ जातीं और अपने भांजे अब्दुल्लाह-बिन-ज़ुबैर (रज़ि0) को वास्ता बनातीं। पूछनेवाला अपने मसले को अब्दुल्लाह-बिन-ज़ुबैर से बयान करता और वे हज़रत आइशा से कहते और फिर हज़रत आइशा (रज़ि0) जो कुछ बतातीं, अब्दुल्लाह-बिन-ज़ुबैर (रज़ि0) उसे पूछने वाले को बता देते।

इसके बाद मौलाना ने पूरे ज़ोर के साथ फ़रमाया –

"औरतों को दीन का इल्म ज़्यादा-से-ज्यादा हासिल करना चाहिए ताकि वे अल्लाह की मरज़ी पर चल सकें और अल्लाह के रसूल (सल्ल0) की पैरवी कर सकें। इस सिलसिले में आपने बड़ी-बड़ी सहाबियात और नबी (सल्ल0) की पाक बीवियों ख़ासकर हज़रत आइशा (रज़ि0) की मिसालें सामने रखीं कि किस तरह एक मुसलमान औरत घर की ज़िम्मेदारियों को पूरा करते हुए भी दीन का ज़्यादा-से-ज़्यादा इल्म हासिल कर सकती है बल्कि इस मैदान में बहुत से मर्दों से भी आगे बढ़ सकती हैं। आपने इस सिलसिले में औरतों को अपनी औलाद की सही तरबियत की तरफ़ भी तवज्जोह दिलाई।

आख़िर में आपने मर्दों को मुख़ातिब करते हुए उनकी ज़िम्मेदारियाँ याद दिलाईं। आपने कहा कि आप पर औरतों के लिए सिर्फ़

रोटी-कपड़ा मुहैया कराना ही नहीं, बल्कि यह भी आपकी ज़िम्मेदारी है और उनका आप पर हक़ है कि आप उन्हें दीन का इल्म सिखाएँ और अगर आपने इसमें कोताही की तो आपकी औलाद ग़ैर-इस्लामी तरीक़े पर परवरिश पाएगी और आपसे पूछताछ होगी।''

अस्र के बाद इजतिमा के सिलसिले में दर्सगाह के बच्चों की तरफ़ से तफ़रीही प्रोग्राम पेश किया गया। उसमें क़िरअत थी, नज़्में थीं, तक़रीरें थीं, मुशाइरा था, हिन्दी, अंग्रेज़ी, अरबी और उर्दू मुकालमे थे। इस्लामी ड्रामे और ख़ामोश तक़रीर थी।

इस प्रोग्राम के ज़्यादातर हिस्सों को आम तौर से लोगों ने पसन्द किया और सराहा।

नोट : पाँचवीं निशस्त : मौलाना हबीबुल्लाह साहब बहादुर और सैयद हामिद हुसैन साहब की तक़रीरों के लिए देखिए- ''अम्न किस तरह क़ायम हो सकता है?''

22, अप्रैल 1951, दिन इतवार

सुबह को फ़ज्र की नमाज़ के बाद मौलाना सदरुद्दीन साहब इस्लाही ने दर्से-क़ुरआन दिया जो इस तरह है :

सूरा आले-इमरान की आयात- 97 से 106 का तर्जमा पेश करने के बाद उनके ख़ास नुकतों की तशरीह की गई -

हज़रात! इन आयतों में अल्लाह तआला ने वे सारी उसूली हिदायतें बयान कर दी हैं जिनपर उम्मते-मुस्लिमा की अस्ल हस्ती का दारोमदार है। वह उम्मते-मुस्लिमा जिसका हिस्सा होने का हमें शर्फ़ हासिल है, आइए देखें कि ये उसूली हिदायतें क्या हैं और फिर इसका जाइज़ा लें कि आज हमारी मिल्ली ज़िन्दगी की बुनियाद कहाँ तक उन उसूलों पर क़ायम है। इन आयतों में हमें मिल्लते-इस्लामिया की तीन उसूली बुनियादें मिलती हैं और तीनों ही निराली हैं :

(1) पहली बुनियाद जिससे यह मिल्लत वुजूद में आती है, तक़्वा है। तक़्वा नाम है अल्लाह की नाराज़गी से डरते और बचते रहने का। यह बात हर मुसलमान जानता है कि हमारा मालिक व परवरदिगार नाराज़ कब होता है। उसने कुछ बातों के करने का हुक्म दिया है, उनको अगर न कीजिए तो वह नाराज़ हो जाता है। इसी तरह उसने कुछ बातों से रोका है, उनके क़रीब जाइए तो उसे ग़ुस्सा आ जाता है। लिहाज़ा जब उसने फ़रमाया, "अल्लाह का तक़्वा इख़्तियार करो।" तो इसका मतलब यह हुआ कि जिन कामों को करने का उसने हुक्म दिया या जिनसे उसने मना किया दोनों का लिहाज़ करो। मालूम हुआ कि मोमिन की ज़िन्दगी आज़ाद व बे-क़ैद नहीं है कि जो चाहा सोच लिया, जो जी में आया तय कर लिया, जिधर रुख़ किया चल पड़े। ज़िन्दगी का मनचाहा तरीक़ा इख़्तियार कर लिया और जिन कामों से रुकना चाहा रुक गए। नहीं, मोमिन अगर है तो ये आज़ादियाँ ख़त्म हो गईं। कल तक वह ज़रूर आज़ाद था मगर अब तो वह ख़ुद का क़ैदी बन चुका है। याद रखिए कि मोमिन की ज़िन्दगी यानी मेरी और आपकी ज़िन्दगी ग़ुलामी से शुरू होती है। बेहद सख़्त बन्दिशों में जकड़ी हुई आगे बढ़ती है और उन ही पाबन्दियों के दायरे में रहकर ख़त्म हो जाती है। ज़रा अपने को देखते चलिए कि आपकी ज़िन्दगी क़ुरआन की इस मतलूबा ईमानी ज़िन्दगी से कहाँ तक मेल खाती है। बहरहाल यह एक अलग सवाल है जिसपर ग़ौर करते रहिएगा। अभी तो मुझे यह कहना है कि उम्मते-मुस्लिमा के एक-एक आदमी को ऐसा होना चाहिए यह उसके परवरदिगार का हुक्म है।

(2) इसके बाद इस मिल्लत के वुजूद के लिए क़ुरआन जो दूसरी बुनियाद पेश करता है वह "इअतिसाम बि-हबलिल्लाह" (अल्लाह की रस्सी को मज़बूती से थामना) है, जिसका आप आसान ज़बान में लफ़्ज़ इत्तिहाद से तर्जमा कर सकते हैं। मैंने जान-बूझकर इस लफ़्ज का इस्तेमाल नहीं किया है। इसलिए कि अव्वल तो यह "इअ्तिसाम बि-हबलिल्लाह" का पूरा तर्जमा नहीं है और अगर थोड़ा बहुत है तो

लोगों ने इसका ग़लत इस्तेमाल करके इस लफ़्ज़ को बिगाड़ कर रख दिया है और तो और खुद मुसलमानों के यहाँ भी इसका हाल कुछ अच्छा नहीं है, आज लोगों के हर उस इकटठा और जमा होने को 'मुबारक इत्तिहाद' कह दिया जाता है जो किसी भी ज़ुल्म, अल्लाह की नाफ़रमानी, तबाही व बरबादी और ख़ून-ख़राबे के लिए किया जाए। अल्लाह तआला ने मुसलमानों को हरगिज़ किसी ऐसे इजतिमा का हुक्म नहीं दिया। वह किसी भी इत्तिफ़ाक़ और इत्तिहाद को पसन्द नहीं करता सिवाए उस इत्तिहाद के जो "हबलिल्लाह" के ज़रिए हो, जो क़ुरआन की बुनियाद पर हो, जिसका मक़सद दीने-हक़ की इताअत व हिमायत हो। ज़रूरत है कि क़ुरआन के नामलेवा इस नुक्ते को अच्छी तरह समझ लें और अपने इत्तिहाद व इत्तेफ़ाक़ की इस हैसियत और नौइयत को ज़ेहन में बिठा लें और याद रखें कि उन्हें आपस में जोड़नेवाली कोई और चीज़ नहीं हो सकती। बेशक क़ौमियत, वतनियत, नस्लियत, रंग और ज़बान वे ताल्लुक़ हैं जो आज दुनिया की क़ौमों को मुत्तहिद कर रहे हैं, मगर ईमान की फ़ितरत इनमें से किसी ताल्लुक़ को क़बूल नहीं कर सकती। कोई मोमिन गरोह इन राबतों के ज़रिए नहीं जुड़ सकता और अगर जुड़ने की कोशिश करेगा तो अपनी फ़ितरत से बग़ावत करेगा। नतीजा यह होगा कि या तो वह इसमें सरासर नाकाम रहेगा या फिर अपनी उन खुसूसियात और पहचान को खो देगा जिनके बिना उम्मते-मुस्लिमा उम्मते-मुस्लिमा नहीं। आज हम मुसलमानों के यहाँ भी इत्तिहाद का शोर मच रहा है, मगर अफ़सोस कि "इअ्तिसाम बि-हबलिल्लाह" की आवाज़ें सुनने में नहीं आतीं और अगर आती भी हैं तो रेगिस्तान में गुम होकर रह जाती हैं।

(3) तीसरी चीज़ जो मिल्लते-इस्लामी की बुनियाद की आख़िरी ईंट है, 'मारूफ़' (नेकी के कामों) का हुक्म देना और 'मुनकर' (बुरे कामों) से रोकना है। मैं इस वक़्त मारूफ़ और मुनकर की तशरीह में नहीं जाना चाहता। मुख़्तसर यूँ समझ लीजिए कि जिस दीन के अहकाम को मोमिन अपने अमल के लिए इख़्तियार करता है उसका फ़र्ज़ है कि उसे

दूसरों तक पहुँचाने और दूसरों को उसका पाबन्द बनाने की पूरी कोशिश करे। यह उसका फ़र्ज़े-ऐन है। यह उसके ईमान का फ़ितरी तक़ाज़ा और अम्न की अलामत है। जिस तरह कि झूठे मुसलमान यानी मुनाफ़िक़ की निशानी यह है कि वह बुराई-भलाई में फ़र्क़ की कोई ज़रूरत नहीं महसूस करता, बल्कि अगर वक़्त का तक़ाज़ा हो तो बजाए मारूफ़ के मुनकर की तबलीग़ करता और बजाए मुनकर से रोकने के मारूफ़ से रोकता है। क़ुरआन व सुन्नत के ज़ख़ीरे इस बात की तशरीहों से भरे पड़े हैं कि बुराइयों को करना और परवान चढ़ाना तो दर-किनार उसका बरदाश्त करना भी मोमिन के लिए मुमकिन नहीं। और अगर कोई शख़्स ऐसा करता है तो ख़ुदा के नज़दीक उसका ईमान क़बूल करने के लायक़ नहीं।

हज़रात! यह मारूफ़ का हुक्म देना और मुनकर से रोकना उम्मते-मुस्लिमा के वुजूद व बक़ा (बाक़ी रहने) के लिए उसी तरह ज़रूरी है जिस तरह किसी चिराग़ के रौशन रहने के लिए तेल का मुसलसल पड़ते रहना ज़रूरी है। वक़्त नहीं कि इस नुक्ते की और ज़्यादा तशरीह की जाए।

मिल्ली व ईमानी ज़िन्दगी के इन तीनों जौहरों का ज़िक्र ख़त्म करते हुए क़ुरआन ने जो बात कही है उसे ख़ूब ग़ौर से सुन लीजिए। वह कहता है, "तुम एक बेहतरीन गरोह हो जो लोगों के लिए बरपा किया गया है।" ये अल्फ़ाज़ उम्मते-मुस्लिमा को दुनिया की दूसरी क़ौमों की सफ़ों (क़तारों) से निकालकर एक अलग मक़ाम पर ला खड़ा करते हैं। इनका मतलब यह है कि मुसलमान नामी गरोह दुनिया के तमाम गरोहों से अलग है। इसके वुजूद का मक़सद सबसे अलग है तभी तो इसकी तामीर के उसूल भी सबसे अलग रखे गए हैं, जिनका मुख़्तसर ज़िक्र अभी आपने सुना और जिनके बारे में मैं अर्ज़ कर चुका हूँ कि वे बड़े अनोखे हैं। लफ़्ज़ 'उख़रिजत' यानी 'बरपा किया गया' पर ख़ूब ग़ौर कीजिए। यह उम्मत कोई 'ख़ुद-ब-ख़ुद पैदा हो जानेवाली' उम्मत नहीं है जिस तरह की तमाम दुनिया तरह-तरह की ख़ुद से पैदा होनेवाली मिल्लतों से भरी पड़ी है, बल्कि वह एक ख़ास मक़सद के

तहत दुनिया में 'मबऊस' की गई है (भेजी गई है) जिस तरह नबी मबऊस हुआ करते थे। वह मक़सद क्या है जिसके लिए यह मिल्लत वुजूद में लाई गई है? यह वही मक़सद है जिसके लिए हमारे प्यारे रसूल (सल्ल०) मबऊस किए गए थे। उनके दुनिया से तशरीफ़ ले जाने के बाद उनकी नाम लेवा उम्मत उनकी क़ायम मक़ाम है। ज़रा यह उम्मत ग़ौर करे कि वह इस मक़सद को कहाँ तक याद रखे हुए है। वह अपने भेजे जाने के मक़सद का कहाँ तक एहतिराम कर रही है। वह अपने नबी के क़ायम मक़ाम होने का फ़र्ज़ कहाँ तक निभा रही है।

यह सिलसिला 6 बजकर 10 मिनट पर ख़त्म हो गया। नाश्ते से फ़ारिग़ होने के बाद छठी निशस्त की तैयारी शुरू हो गई।

छठी निशस्त

7:30 से 11:30 तक

यह निशस्त बक़िया तजवीज़ों के प्रोग्राम के लिए थी। चुनांचे पिछले दिन दोपहर के बाद की तरह एक-एक तजवीज़ पेश होती रही और अमीरे-जमाअत उसपर इज़हारे-ख़याल फ़रमाते रहे। दोनों निशस्तों की तजवीज़ों का प्रोग्राम इस तरह है-

(1) तहरीक की इशाअत (प्रचार-प्रसार) के लिए मक़ामी तौर पर उर्दू व हिन्दी अख़बारात जारी किए जाएँ।

अमीरे-जमाअत : यह नहीं मालूम हुआ कि किस मक़ाम के रुफ़क़ा किस तरह का अख़बार जारी करना चाहते हैं। ख़ाहिश की हद तक तो यह चीज़ सही है, लेकिन हमारा ख़याल है कि हमारे रुफ़क़ा कभी-कभी अपने ज़राए-वसाइल (संसाधनों) का सही अन्दाज़ा किए बिना इस तरह के काम शुरु कर देते हैं और इस तरह उनको बजाय फ़ायदे के नुक़सान उठाना पड़ता है। लोग अपने तौर से इस तरह का काम ज़रूर कर सकते हैं, लेकिन अगर वे शुरू करने से पहले इसके बारे में मर्कज़ से मशवरा कर लिया करें तो यह जमाअत के लिए फ़ायदेमन्द होगा और खुद उनके लिए भी।

(2) मक़ामी उमरा-ए-जमाअत रुफ़क़ा की आमदनी और 'उश्र' (खेती की पैदावार का दसवाँ हिस्सा) का हिसाब तलब करें और अख़लाक़ी तौर पर हमदर्दों का भी।

अमीरे-जमाअत : इस बात की देखभाल तो ज़रूर होनी चाहिए कि लोग बाक़ायदा अपनी ज़कात अदा करते हैं या नहीं, लेकिन अगर इस तजवीज़ का मंशा यह मालूम करना है कि रुफ़क़ा के यहाँ कितना अनाज या आमदनी हुई तो यह ख़ामख़ाह की पाबन्दी होगी। इस बारे में हमें अपने रुफ़क़ा पर भरोसा करना चाहिए। इस मामले में बहुत ज़्यादा क़ायदे-क़ानून लागू करना ठीक नहीं है। अगर इस पर किसी ज़ाब्ते या क़ानून के तहत अमल कराने की कोशिश की गई तो "इनफ़ाक़ फ़ी-सबीलिल्लाह" (अल्लाह की राह में ख़र्च करने) की जो रूह है वह ख़त्म हो जाएगी। मेरे नज़दीक यह मुनासिब है कि उमरा-ए-जमाअत रुफ़क़ा के अन्दर इनफ़ाक़ के जज़्बे को उभारते रहें और इस बात का जाइज़ा लेते रहें कि ज़कात वग़ैरा की अदायगी के सिलसिले में रुफ़क़ा क्या तरीक़ा इख़्तियार करते हैं।

इस ज़माने में यह देखा जाता है कि लोग ऐसे कामों में जिनमें पैसे का ख़र्च नहीं है, ख़ूब दौड़-भाग करते हैं और जिन कामों में पैसा ख़र्च करने का सवाल पैदा होता है वहाँ बड़े-बड़े लोगों के तक़्वा में कमी महसूस होती है।

(3) ज़्यादा सलाहियत रखनेवाले मक़ामी रफ़ीक़ क़ुरआन के दर्स और आम दीनी तालीम का इन्तिज़ाम करें।

अमीरे-जमाअत: इस मशवरे से किसी को इख़्तिलाफ़ नहीं हो सकता इसलिए रुफ़क़ा का ध्यान पहले ही से इस तरफ़ है। इस सिलसिले में यह बात हमेशा रुफ़क़ा के पेशे-नज़र रहनी चाहिए कि दीन का अस्ल सरचश्मा (मूल स्रोत) क़ुरआन व हदीस हैं। इसलिए जिस क़द्र उनकी तरफ़ तवज्जोह की जाएगी, उतनी ही मक़सद में कामयाबी होगी।

(4) लखनऊ में मर्कज़ की तरफ़ से तस्नीफ़ी (लेखनसम्बन्धी) इदारा क़ायम किया जाए जो दर्स व तदरीस के ज़रिए हर ख़ास व आम को फ़ायदा पहुँचाए।

अमीरे-जमाअत: लखनऊ की मर्कज़ियत को सामने रखते हुए इसका इमकान था, लेकिन जब किसी जगह जमाअत के नज़्म में पायदारी न हो तो इसका हौसला नहीं किया जा सकता। लखनऊ में हमेशा एक बोहरानी सी कैफ़ियत रहती है। कभी रुफ़क़ा की तादाद काफ़ी हो जाती है और कभी बहुत ही कम। जैसा कि क़य्यिम साहब की सुबह की रिपोर्ट से आपको मालूम हुआ। साथ ही यह कि इसके सिलसिले में जो अस्बाब व वसाइल (संसाधन) ज़रूरी हैं, हमें वहाँ हासिल नहीं हैं, फिर भी अगर कोई मुनासिब अमली तजवीज़ सामने आई तो उसपर ग़ौर किया जा सकता है।

(5) नमूने का समाज बनाया जाए इसके लिए ज़रूरी है कि जहाँ रुफ़क़ा की तादाद क़ाबिले-लिहाज़ (पर्याप्त) हो, एक कॉलोनी बना लें।

अमीरे-जमाअत : रुफ़क़ा के अन्दर मिल-जुलकर रहने का जज़्बा एक अच्छा जज़्बा है, लेकिन इसमें एक तरह का ग़ुलू पाया जाता है। यह जज़्बा फ़ितरी हद के अन्दर और अल्लाह की मरज़ी के तहत ही रहना चाहिए। कॉलोनी बनाना अमली तौर पर भी दुश्वार है और इसके फ़ायदे भी ज़्यादा नहीं हैं। तब्लीग़ी नुक़्त-ए-नज़र से बेहतर यही है कि रुफ़क़ा बिखरे हुए अलग-अलग मक़ामात पर रहें।

(6) हैदराबाद के लिए कुल वक़्ती क़य्यिम या नाइब क़य्यिम का तक़र्रुर किया जाए।

अमीरे-जमाअत : यह हमारी ख़ाहिश ज़रूर है कि रुफ़क़ा को रोज़गार की फ़िक्र से आज़ाद करें ताकि वे इत्मीनान के साथ दीन का काम करें और इस सिलसिले में हमारी अब तक की कोशिशों से आप लोग वाक़िफ़ भी होंगे। लेकिन एक पहलू से मैं इसको ख़तरनाक भी समझता हूँ। ख़ुदा न करे, इसका मक़सद यह तो नहीं है कि रुफ़क़ा अपना बोझ दूसरों पर डालना चाहते हैं? हममें से हर एक को ख़ुद अपनी ज़िम्मेदारी महसूस करनी चाहिए। अगर यह जज़्बा काम करता रहा तो अन्देशा है कि शख़्सी ज़िम्मेदारियाँ जो रुकावटों के बावजूद हैं उनको पूरा करने में लापरवाही हो। बेहद ज़रूरी कारोबारी मसरूफ़ियतों को बनाए रखते हुए जो कुछ करना मुमकिन है, अल्लाह के नज़दीक इससे ज़्यादा के हम ज़िम्मेदार नहीं हैं।

(7) हर हल्क़े और इलाक़े के क़य्यिम और अमीर पर हर महीने दौरा करने को लाज़िम किया जाए।

अमीरे-जमाअत : आम तौर पर मुझे मालूम है कि क़य्यिम हज़रात बराबर दौरे करते रहते हैं। हो सकता है कि किसी हल्क़े के क़य्यिम ज़रूरत के मुताबिक़ दौरे न करते हों, मैं उनको इस तरफ़ तवज्जोह दिलाता हूँ कि हर महीने कम-से-कम एक दौरा ज़रूर होना चाहिए। लेकिन इसी के साथ मैं रुफ़क़ा को भी इस तरफ़ तवज्जोह दिलाता हूँ कि कुछ हालात ऐसे भी पेश आ सकते हैं कि जब क़य्यिम हज़रात जमाअत के दूसरे कामों की वजह से दो-तीन महीने तक दौरा न कर सकें तो अगर किसी वाक़ई मजबूरी की वजह से ऐसा हो तो उनको मजबूर ही समझा जाए।

(8) जमाअती कामों में काम बाँटने के उसूल का ख़ास ख़याल रखा जाए।

अमीरे-जमाअत : मैं समझता हूँ कि इस तजवीज़ का मंशा शायद यह है कि एक मक़ाम पर जो रुफ़क़ा रहते हों, सलाहियतों के लिहाज़ से उनमें काम तक़सीम किए जाएं। यह उसूल बिलकुल ठीक है। इसके मुताबिक़ अमल न होने पर कुछ रुफ़क़ा पर तो काम का ज़्यादा बोझ पड़ जाता है और कुछ की सलाहियतों को परवान चढ़ने का सही मौक़ा ही नहीं मिलता। क़य्यिम और अमीर हज़रात को इसका पूरा ख़याल रखना चाहिए।

(9) ज़िम्मेदार लोग जिन रुफ़क़ा को ना-मुनासिब बताएँ उन्हें जमाअत से अलग कर दिया जाए।

अमीरे-जमाअत : यह चीज़ मर्कज़ से ताल्लुक़ रखती है। रुफ़क़ा का मशवरा लिया जा सकता है, मगर ज़रूरी नहीं है कि उसपर हमेशा अमल ही किया जाए। इख़राज (जमाअत से निकालने) का मसला बहुत अहम है। किसी रफ़ीक़ को उसी हालत में जमाअत से निकाल सकते हैं जब इस्लाह से बिलकुल ही ना-उम्मीद हो जाएँ। रुफ़क़ा-ए-जमाअत मिलकर एक जिस्म बनते हैं। जिस्म से किसी हिस्से का अलग करना उसी वक़्त गवारा होता है जब उसका मर्ज़ हद से बढ़ जाए और दूसरे हिस्सों को लगने का अन्देशा हो। इसलिए हम इख़राज को आख़िरी इलाज के तौर पर ही इख़्तियार करते हैं।

(10) अमीरे-जमाअत और क़य्यिमे-जमाअत दौरे किया करें।

अमीरे-जमाअत : यह तजवीज़ मुनासिब है। मेरी ख़ाहिश रहती है कि दौरे करूँ और मौक़े पर पहुँचकर हालात का जाइज़ा लूँ। लेकिन इसमें कुछ रुकावटें हैं जो शख़्सी नहीं बल्कि जमाअती हैं। इधर मर्कज़ में क़ियाम की ज़रूरत रहती है और उधर दौरों की। अगर कोई ऐसा रास्ता निकल आए कि दोनों काम सही तरह से हो सकें तो मर्कज़ में रहने के साथ दौरों के फ़ायदे भी हासिल किए जा सकते हैं।

नजातुल्लाह सिद्दीक़ी साहब : नाइब अमीर का तक़र्रुर अमल में लाया जाए, दोनों फ़ायदे हासिल हो सकते हैं।

अमीरे-जमाअत : इस तजवीज़ पर किसी दूसरे मुनासिब मौक़े पर ग़ौर किया जाएगा।

(11) बच्चों के हल्क़े के लिए मर्कज़ की निगरानी में अलग-अलग शोबे क़ायम हों और ख़ुसूसी सलाहियत रखनेवाले रुफ़क़ा को निगराँ बनाया जाए।

अमीरे-जमाअत : 'बच्चों से मुराद अगर नाबालिग़ बच्चे हैं तो ऐसे बच्चे हमारे सामने नहीं हैं जिनके बारे में मर्कज़ की तरफ़ से ऐसे हल्क़े क़ायम किए जाएँ। ख़्वातीन के हल्क़े का काम भी अभी इस पैमाने पर नहीं है कि मर्कज़ की तरफ़ से उसका ख़ास इन्तिज़ाम किया जाए। मक़ामी जमाअतें इस सिलसिले में कुछ करती रहती हैं, उन्ही को इस तरफ़ और ज़्यादा तवज्जोह दिलाने की ज़रूरत है।

(12) बैतुलमाल के ख़र्चों के लिए मर्कज़ शरई तौर पर परसेंटेज क़ायम करे।

अमीरे-जमाअत : क़ुरआन मजीद में ज़कात को ख़र्च करने के जो मद और काम बयान किए गए हैं, ज़रूरी नहीं है कि उन सब में समान रूप से ज़कात का इस्तेमाल हो। इमाम अबू-हनीफ़ा का फ़तवा है किसी एक 'मद' को तरजीह दी जा सकती है। मक़ामी उमरा जिस मसरफ़ को ज़्यादा ज़रूरी समझें उसमें ज़्यादा ख़र्च करें। इस चीज़ को उन ही की समझ पर छोड़ देना चाहिए।

(13) जिन हल्क़ों में छ:माही (6 महीने पर) और ति माही (तीन महीने पर) इजतिमाआत नहीं होते हों वहाँ मर्कज़ इजतिमाआत कराए।

अमीरे-जमाअत : जहाँ तक मुमकिन हो इस तरह के इजतिमाआत होने चाहिएँ। हमारी यह ख़ाहिश है कि मर्कज़ से कोई साहब ज़रूर शरीक हों, लेकिन हल्क़े वालों को चाहिए कि अपनी ज़िम्मेदारी महसूस करें। हर मौक़े पर मर्कज़ ही पर निगाह रखना मुनासिब नहीं है।

(14) एक हफ़्तावार या स:हरोज़ा (तीन दिवसीय) अंग्रेज़ी अख़बार शुरू किया जाए।

अमीरे-जमाअत : अंग्रेज़ी अख़बार को जारी करने की तजवीज़ तो मुनासिब है, लेकिन इस रास्ते में कुछ अमली मुश्किलें हैं। इस सिलसिले में अगर कोई अमली शक्ल पेश की जाए तो ज़्यादा मुनासिब है और फिर ज़रूर ग़ौर किया जाएगा।

(15) अख़बार व रसाइल (पत्र-पत्रिकाएँ) इनफ़िरादी तौर पर जारी न हों बल्कि जमाअती प्लानिंग के तहत हों।

अमीरे-जमाअत : रुफ़क़ा अगर अपने तौर पर अख़बार या रिसाला निकालना चाहते हों तो हमें हक़ नहीं है कि उनको रोक दें। हाँ, अगर वे चाहें तो हम उन्हें मशवरे दे सकते हैं।

(16) कम क़ीमतवाली, मुख़्तसर और मौजूदा मसलों पर रौशनी डालनेवाली, आकर्षक हिन्दी व अंग्रेज़ी किताबें प्रकाशित की जाएँ।

अमीरे-जमाअत : इसकी अहमियत को सामने रखते हुए हम बराबर कोशिश कर रहे हैं और इस सिलसिले में कुछ काम किया जा रहा है।

(17) जमाअत के लिट्रेचर (साहित्य) के ज़रूरी हिस्सों का हिन्दी और अंग्रेज़ी में तर्जमा किया जाए।

अमीरे-जमाअत : इस सिलसिले में मर्कज़ की तरफ़ से कुछ-न-कुछ कोशिश होती ही रही है, लेकिन इसमें कुछ अमली मुशकिलें हैं। इस वजह से ज़रूरत के मुताबिक़ काम नहीं हो रहा है।

मुहम्मद यूसुफ़ साहब सिद्दीक़ी : एक साहब इस सिलसिले में माली मदद करने के लिए तैयार हैं।

अमीरे-जमाअत : दरअस्ल हमारे सामने बड़ी मुश्किलें रुपयों-पैसों के बारे में ही रही हैं। वरना अल्लाह की मेहरबानी से हमारे पास ऐसे सलाहियत वाले कारकुन मौजूद हैं जो इस काम को ख़ूब अच्छी तरह से कर सकते हैं। अगर इस तरफ़ से इत्मीनान हो जाए तो अल्लाह ने चाहा तो यह काम भरपूर तरीक़े से किया जा सकता है।

(18) हालात व ज़रूरत के मुताबिक़ नया लिट्रेचर तैयार किया जाए और इसके लिए सलाहियत रखनेवाले रुफ़क़ा को इस काम पर लगा दिया जाए।

अमीरे-जमाअत : यह तजवीज़ बहुत अच्छी है। हम खुद इसकी ज़रूरत महसूस कर रहे हैं। मजलिसे-शूरा की रूदाद से आपको मालूम हुआ होगा कि इस सिलसिले में अमली कार्रवाई शुरू कर दी गई। कुछ रुफ़क़ा की वक़्ती तौर पर ख़िदमात हासिल कर ली गई हैं, लेकिन रुफ़क़ा को चाहिए कि वे मर्कज़ पर बोझ डालकर मुत्मइन न हो जाएँ। क़लम से, ज़बान से, रुपए-पैसे से जिस तरह हो सके मदद में कमी न करें।

(19) तेलगू ज़बान में लिट्रेचर तैयार किया जाए।

अमीरे-जमाअत : इस काम के लिए हैदराबाद में तेलंगी दारुल-इशाअत क़ायम है। मुहम्मद यूनुस साहब उसके ज़िम्मेदार हैं। इस सिलसिले में कुछ काम हो रहा है।

(20) मुल्की ज़बान में दावत के साथ हज़रत मुहम्मद (सल्ल0) की सीरत (जीवनी) पर एक मुख़्तसर किताब तैयार की जाए।

अमीरे-जमाअत : नहीं मालूम कि तजवीज़ पेश करने वाले के नज़दीक मुल्की ज़बान से क्या मुराद है। हमारी कोशिश यह है कि मुल्क की हर ज़बान में लिट्रेचर छापा जाए। हमारे नज़दीक हिन्दी में सबसे ज़्यादा ज़रूरत क़ुरआन मजीद के तर्जमे की है। सीरत पर फ़िलहाल कोई किताब

छापना मुश्किल था। इसलिए सीरत पर मौलाना सुलैमान शाह मंसूरपुरी की किताब जो हिन्दी में है, मक्तबे में रखी गई है।

(21) ज़रूरी मामलों के मुताल्लिक़ सवालात क़ायम करके जवाबात दिए जाएँ और उनको किताबी शक्ल में तरतीब दिया जाए।

अमीरे-जमाअत : हम यह ज़रूर चाहते हैं कि रुफ़क़ा की ज़ेहनी तरबियत हो, मगर सवालात व जवाबात तरतीब देकर लोगों को तैयार करना फ़ितरी तरीक़ा नहीं है। लोगों के ज़ेहन को हमें इस तरह तैयार करना चाहिए कि वे किसी मज़मून की रूह को समझने की कोशिश करें और सवाल-जवाब के ज़रिए यह मुमकिन नहीं है। लिट्रेचर के मुताले के नतीजे में या किसी ज़रूरत पर जो सवालात खुद-ब-खुद ज़ेहन में उठते हैं या कुछ शुब्हात जो पैदा होते हैं, उनके जवाबात की वाक़ई ज़रूरत होती है। चुनाँचे ज़रूरी सवालों के हम बराबर जवाबात देते हैं, जिनमें से कुछ पत्रिका "ज़िन्दगी" में भी छपते रहते हैं।

(22) पत्रिका "ज़िन्दगी" के इशारात इकट्ठे करके शाया किए जाएँ।

अमीरे-जमाअत : इस पर ग़ौर किया जाएगा और अगर मुनासिब समझा गया तो इसका एहतिमाम किया जाएगा।

(23) हिन्दी तर्जमा जमाअत की रूह से वाक़िफ़ और उससे दिली लगाव रखनेवालों ही से कराना चाहिए।

अमीरे-जमाअत : तजवीज़ की हैसियत से इसपर बहस एक इल्मी बहस हो जाएगी। इस सिलसिले में हमने अब जो इन्तिज़ाम किया है वह मजलिसे-शूरा की कार्रवाई से मालूम हो सकता है। वह भी इसी तरह का है।

(24) लिट्रेचर में अशआर से बचा जाए और अशआर के ज़रिए हक़ की तर्जमानी को रोका जाए।

अमीरे-जमाअत : हक़ की ख़िदमत हर जाइज़ ज़रिए से की जा सकती है और अशआर का इस्तेमाल नाजाइज़ नहीं है। अलबत्ता बे-मतलब और घटिया अशआर से परहेज़ की ज़रूरत है।

(25) हर फ़ायदेमन्द किताब लीडरों, हुक्मराँ हज़रात और स्कूलों के हेडमास्टरों को भेजी जाए।

अमीरे-जमाअत : यह काम अगर मक़ामी जमाअतें करें तो बेहतर होगा, क्योंकि मक़ामी रुफ़क़ा आसानी से पता लगा सकते हैं कि किसको कब, कौन-सी किताब देना मुनासिब होगा। मर्कज़ भी मौक़े के लिहाज़ से ऐसा करता है, लेकिन आपको बिहार की रिपोर्ट में मालूम हुआ होगा कि मौलाना मुहम्मद शफ़ी दाऊदी ने अपने इन्तिक़ाल के वक़्त अपने दोस्तों (जिनमें लीडर भी थे) और रिश्तेदारों को वसीयत के तौर पर दावत पेश की थी और उनके पास किताबें भेजने को कहा था। किताबें भेजी गईं। जवाबात हौसला बढ़ानेवाले भी साबित हुए। लेकिन लीडरों की तरफ़ से जो जवाब आया वह यह था कि किताबें मिल गईं, उनको देख लिया जाएगा। मौलाना को मेरा सलाम कह दें।

(26) गुजराती ज़बान में किताबें छापी जाएँ और एक अख़बार भी निकाला जाए।

अमीरे-जमाअत : गुजराती ज़बान में लिट्रेचर के अनुवाद का मसला शुरू ही से हमारे सामने रहा है। चुनांचे गुजराती दारुल-इशाअत (प्रकाशन) क़ायम हो चुका था और उसके तहत कुछ किताबों के तर्जमे भी छप चुके हैं, लेकिन बदक़िस्मती से हमारे जो रफ़ीक़ इस काम के इंचार्ज थे वे कई तरह की रुकावटों और मजबूरियों के तहत इस काम को करने के क़ाबिल नहीं हैं और न फ़िलहाल हमें दूसरा कोई ऐसा रफ़ीक़ मिल सका है जो इस काम को कर सके। इसलिए यह काम फ़िलहाल लगभग रुका हुआ है, लेकिन कोशिश जारी है। मुमकिन है आगे इस सिलसिले में कुछ काम किया जा सके। गुजराती अख़बार का मसला इस वक़्त हमारे सामने नहीं है, क्योंकि उसके ज़रूरी इन्तिज़ामात करने से हम मजबूर हैं। अलबत्ता अगर कुछ रुफ़क़ा अपने तौर से कोई अख़बार निकालना चाहें तो इस सिलसिले में अपनी तजवीज़ पेश करें। इस पहलू पर ग़ौर करने के बाद मर्कज़ की तरफ़ से इसकी इजाज़त दी जाएगी।

(27) कुल हिन्द इजतिमा के मौक़े पर ख़ास-ख़ास उलमा और लीडरों को शिरकत की ख़ुसूसी दावत दी जाया करे।

इस तजवीज़ पर अमीरे-जमाअत ने उलमा से क़रीबी ताल्लुक़ रखने वाले दूसरे रुफ़क़ा को इज़हारे-ख़याल का काफ़ी मौक़ा दिया। चुनांचे इस सिलसिले में मौलाना सिब्ग़तुल्लाह साहब बख़्तियारी, मुहीउद्दीन साहब अय्यूबी, मुहिब्बुल्लाह साहब नदवी, हाफ़िज़ अब्दुत्तव्वाब साहब, मौलाना ज़ियाउन्नबी अल-अब्बासी साहब और मौलवी अब्दुल-क़दीर अल-आज़म साहब अब्बासी ने अपने तजरिबात की रौशनी में इज़हारे-ख़याल किया। इसके बाद अमीरे-जमाअत ने कहा -

अमीरे-जमाअत : मौलवी अब्दुल-क़दीर साहब ने ठीक कहा है कि उलमा का मक़ाम इस्लाम की दावत पेश करनेवालों का था, न यह कि उनको भी दावत देने की ज़रूरत पेश आए। बहरहाल हम मौक़े के मुताबिक़ दावत देने की कोशिश करते हैं। इस साल पचास-साठ उलमा की ख़िदमत में ख़ुसूसी दावतनामे भेजे गए, उनमें से दो-तीन तशरीफ़ लाए हैं और इजतिमा में शरीक हैं। कुछ ने माज़रत न आने की मजबूरी लिख भेजी, कुछ की तरफ़ से कोई जवाब ही नहीं मिला। पता नहीं कि उन्होंने इस पर चुप्पी साध ली या हमारे दावतनामे ही उनको नहीं मिले। हमारी ख़ाहिश यही है कि वे इस काम में दिलचस्पी लें। इसलिए हम उनको ख़ुसूसी दावत देते हैं।

(28) सालाना इजतिमाआत कुल हिन्द होने के बजाय हल्क़ावार हों।

अमीरे-जमाअत : सालाना इजतिमाआत कुल हिन्द हों या हल्क़ावारी शक्ल ही में कर लिए जाया करें। इस मसले पर शूरा में ग़ौर किया जाएगा। लेकिन मैं इस सिलसिले में रुफ़क़ा की सरसरी राय मालूम करना चाहता हूँ ताकि ग़ौर करते वक़्त आसानी हो।

इसके बाद इस सिलसिले में मौलाना जलील अहसन नदवी, मुहम्मद अज़ीज़ साहब इलाहाबादी, हकीम मुहम्मद ख़ालिद साहब, मौलवी मुहम्मद सिद्दीक़ साहब गोरखपुरी, हाफ़िज़ इमामुद्दीन साहब राम नगरी, पीराने-कल्लिमा साहब, मुहीउद्दीन साहब अय्यूबी, मुहम्मद इदरीस शिबली साहब

और मुहम्मद बदरूल-इस्लाम साहब मुज़फ़्फ़रपुर, बिहार ने अपने ख़यालात का इज़हार किया।

इसके बाद अमीरे-जमाअत ने फ़रमाया कि फ़ैसले के वक़्त इन मशवरों को सामने रखा जाएगा।

(29) मुसलमान बच्चों की इब्तिदाई ताालीम (प्रारम्भिक शिक्षा) से ज़्यादा दिलचस्पी ली जाए।

अमीरे-जमाअत : हमारे नज़दीक इस मसले की बड़ी अहमियत है। इसलिए इस तरफ़ काफ़ी तवज्जोह की जा रही है। इसके लिए शूरा की रूदाद देखें।

(30) मर्कज़ी दर्सगाह के नमूने पर दर्सगाहें और मदरसे क़ायम किए जाएँ।

अमीरे-जमाअत : इस सिलसिले में शूरा की रूदाद देखी जाए।

(31) लड़कियों के लिए दर्सगाह क़ायम की जाए।

अमीरे-जमाअत : इसकी अहमियत और ज़रूरत से इनकार नहीं किया जा सकता, लेकिन इसमें चंद रुकावटें हैं और यह काम दूसरे कामों के मुक़ाबले ज़्यादा मुश्किल है। रुफ़क़ा खुद इस तरफ़ तवज्जोह दें।

(32) मदरसों के लिए निसाब (पाठ्यक्रम) छपाया जाए।

अमीरे-जमाअत : दर्सगाह की तरफ़ से उसका अपना निसाब छप गया है। साथ ही उन मदरसों के लिए निसाब बनाया गया है जो हमारे मुख़्तसर और हल्के निसाब को अपना सकते हैं।

(33) मदरसों के लिए टीचरों की ट्रेनिंग का इन्तिज़ाम किया जाए।

अमीरे-जमाअत : इस मसले पर ग़ौर किया जा रहा है। मर्कज़ी रिपोर्ट में इसका ज़िक्र आ चुका है।

(34) अमीर (मक़ामी/हल्क़ा/इलाक़ा) और क़य्यिम हज़रात को जल्द तरबियतगाह में बुलाया जाए।

अमीरे-जमाअत : जल्द ही इसका एहतिमाम किया जाएगा।

(35) तरबियतगाह का प्रोग्राम छपवा दिया जाए।

अमीरे-जमाअत : अभी उस प्रोग्राम पर तजरिबा चल रहा है, वरना हमारा इरादा पहले ही से उसको छपवाने का है।

अनवर अली ख़ान साहब 'सोज़' : इस प्रोग्राम के एक पहलू के लिए तो तजरिबे की ज़रूरत है लेकिन कुछ चीज़ें ऐसी भी हैं जिनके लिए किसी तजरिबे और इन्तिज़ार की ज़रूरत नहीं है। जैसे मुन्तख़ब अहादीस (हदीसों का संकलन) और क़ुरआन के हिस्से वग़ैरा। मक़ामी इजतिमाआत में भी इन चीज़ों की ज़रूरत पड़ती है।

अमीरे-जमाअत : तरबियतगाह के प्रोग्राम को पूरे प्रोग्राम की हैसियत से देखना चाहिए। मक़ामी ज़रूरतों को एक अलग पंफलेट के ज़रिए पूरा करना फ़ायदेमन्द हो सकता है, लेकिन असली फ़ायदा पूरे ही को अपनाने से होगा। तरबियती प्रोग्राम के हिस्सों को छापना इतना फ़ायदेमन्द न होगा।

(36) रुफ़क़ा की बुनियादी और इब्तिदाई तरबियत के लिए एक निसाब तैयार किया जाए, जिसको याद करना और दोहराना सबके लिए ज़रूरी हो।

अमीरे-जमाअत : कोई निसाब जो हर जगह के लिए और हर तरह की सलाहियत वाले रुफ़क़ा के लिए मुनासिब हो, नहीं बनाया जा सकता। यह काम जमाअतों के अपने तौर से करने का है। इसके लिए तरबियत का निसाब एक हद तक मददगार है। आसान लिट्रेचर भी जो छपा है या छपेगा, इस सिलसिले में फ़ायदेमन्द हो सकता है।

(37) रुफ़क़ा की मआशी (आर्थिक) बदहाली दूर करने के लिए कोई स्कीम अमल में लाई जाए। इसके लिए एक मआशी कमेटी बना दी जाए।

अमीरे-जमाअत : इसकी ज़रूरत से इनकार नहीं किया जा सकता। इस सिलसिले में एक मआशी कमेटी बना दी गई है।

इसके बाद अमीरे-जमाअत ने शाह ज़िया-उल-हक़ साहब को, जो इस मआशी कमेटी के दाई (आवाहक) हैं, मआशी कमेटी की रिपोर्ट पेश करने के लिए कहा। चुनांचे रिपोर्ट पेश की गई।

अमीरे-जमाअत ने इस रिपोर्ट के बाद तिजारती और कारोबारी सलाहियतें रखनेवाले रुफ़क़ा को इज़हारे-ख़याल का मौक़ा दिया। चुनांचे इस सिलसिले में कानपुर के रशीदुल-हसन साहब ने अपने तजरिबात पेश किए।

इसके बाद अमीरे-जमाअत ने रुफ़क़ा से कहा कि वे मआशियात (माली मामलों) के सिलसिले के अपने तमाम मशवरे मआशी कमेटी के रुफ़क़ा को दे दें।

(38) हमदर्दों को ख़िताबे-आम की इजाज़त दी जाए।

अमीरे-जमाअत : ख़िताब का दारोमदार सलाहियत और क़ुदरत पर है। यह न हो तो अरकान को भी इससे अपने आपको रोकना चाहिए। ऐसी ही बातों का ख़याल न रखे जाने की वजह से मैं आम इजाज़त के हक़ में नहीं हूँ।

अगर ख़िताबे-आम सही तरह से न हो तो इससे तरह-तरह के फ़ितने पैदा हो जाते हैं। मैं अमीर और क़य्यिम हज़रात को तवज्जोह दिलाता हूँ कि वे उन लोगों की तरफ़ ध्यान दें जिनकी तक़रीर से किसी तरह की ग़लतफ़हमी फैलने का अन्देशा हो।

(39) तालीमी इदारों (शिक्षण संस्थाओं) में स्टडी सर्किल क़ायम किए जाएँ।

अमीरे-जमाअत : रुफ़क़ा के लिए यह अच्छा मशवरा है। दावत के नुक़्त-ए-नज़र (दृष्टिकोण) से भी यह फ़ायदेमन्द तरीक़ा है। मौक़े के मुताबिक़ इस तरफ़ ध्यान देने की ज़रूरत है।

(40) तलबा की एक अलग जमईयत (संगठन) बनाई जाए।

इसपर अमीरे-जमाअत ने दूसरे रुफ़क़ा के ख़यालात मालूम किए। कई तरह के पहलू सामने आए। आख़िरकार यह कहा कि इस सिलसिले की तमाम तजवीज़ें मुहम्मद अज़ीज़ साहब इलाहाबादी को दे दी जाएँ और दूसरे वक़्त में इन पर ग़ौर कर लिया जाए। चुनांचे इस सिलसिले में तजवीज़ों का

प्रोग्राम ख़त्म होने पर आराम के वक़्फ़े में ख़ास इस तजवीज़ पर ग़ौर करने के लिए एक छोटी-सी निशस्त मुहम्मद शफ़ी 'मूनिस' साहब की निगरानी में हुई। इस निशस्त में इस मसले के मुख़्तलिफ़ पहलुओं पर ग़ौर किया गया कि तलबा में दावत के काम को किस तरह जारी किया जाए।

पहले मुहम्मद शफ़ी मूनिस साहब ने ज़ेरे-ग़ौर मसले को वाज़ेह किया। उसके बाद मुहीउद्दीन अय्यूबी साहब ने एक छोटी-सी तक़रीर में इस काम की अहमियत पर रौशनी डाली।

शुरू में इस मसले के सिलसिले में दो तजवीज़ें सामने आईं। एक यह कि तलबा की अलग तंज़ीम के ज़रिए यह काम किया जाए। दूसरी यह कि मौजूदा जमाअती नज़्म के तहत ही हल्क़ों के क़य्यिम हज़रात को इस काम की तरफ़ ख़ास तौर से तवज्जोह दिलाई जाए।

इसके बाद लोग अपने-अपने ख़यालात ज़ाहिर करते रहे और आख़िरकार दोनों तजवीज़ों के बेहतर अनासिर (तत्त्वों) को जमा करने से जो तजवीज़ सामने आई और सबकी सहमति से पास हो गई, वह इस तरह है-

> "तलबा में दावती काम को आगे बढ़ाने की तरफ़ ख़ुसूसी तवज्जोह के लिए मर्कज़ की तरफ़ से एक नाज़िम (प्रबंधक) मुक़र्रर किया जाए जो यह काम हल्क़ों के क़य्यिम हज़रात के ज़रिए से करे। अलबत्ता जहाँ हालात की माँग हो वहाँ इस काम की निगरानी के लिए अलग-अलग नाज़िम मुक़र्रर किए जाएँ जो हल्क़े के क़य्यिम की निगरानी में काम करेंगे।"

(41) **घनश्यामदास साहब, गंगोह :** जमाअते-इस्लामी के बहुत से नज़रियात, जो अकसर अख़बारात में छपते रहते हैं उनमें से अकसर को जमाअते-इस्लामी के अलावा दूसरी जमाअतों के लोग भी अच्छा समझते हैं। अगर वे उनको अपने अख़बारात में छापना चाहें तो इसका क्या तरीक़ा होगा? क्या उन ख़यालात को बिलकुल उसी तरह छापा जा सकता है या अपने तौर पर लिखकर छापा जा सकता है। दोनों तरीक़ों में क्या शर्तें होंगी, मेहरबानी करके तफ़्सील के साथ बताएँ।

तजवीज़ लिखित रूप में पेश की गई थी। तजवीज़ पेश करनेवाले ने ज़बानी तौर पर उसे स्पष्ट करने के लिए जो कुछ कहा उसका खुलासा इस तरह है -

जमाअते-इस्लामी के अकसर ख़यालात को, जो उनके लिट्रेचर और अख़बारों व रिसालों में छपते रहते हैं, दूसरे लोग भी पसंद करते हैं और चाहते हैं कि अपने अख़बारों में इस तरह के ख़यालात छापें। अब मुझे यह पूछना है कि क्या दूसरे लोगों को उन ख़यालात को छापने की इजाज़त है? और अगर इजाज़त है तो क्या उनके अस्ल अलफ़ाज़ और हवालों का ख़याल रखना ज़रूरी होगा या इसका ख़याल रखे बिना भी उन्हें छापा जा सकता है?

अमीरे-जमाअत: हमारे लिट्रेचर में जिन नज़रियात (विचारों) को पेश किया गया है वे सिर्फ़ हमारे लिए ही ख़ास नहीं हैं, बल्कि अस्ल में उनका ताल्लुक़ पूरी इनसानियत से है, इसलिए जो शख़्स या जो जमाअत चाहे उन्हें छाप सकती है। हमारी तरफ़ से इसके लिए कोई शर्त नहीं है। अलबत्ता उसका अख़लाक़ी फ़र्ज़ होगा कि इस्लाम या जमाअते-इस्लामी का हवाला देने की सूरत में उन ख़यालात को ज्यों-का-त्यों पेश करें, उनमें किसी तरह का कोई छोटा-बड़ा रद्दो-बदल न होने पाए। कहीं ऐसा न हो कि हमारे कहने का मतलब तो कुछ हो और बयान के बाद वह कुछ और हो जाए। लेकिन अगर किसी वजह से इसका ख़याल न रखा जा सके तो उन बातों को इस्लाम या जमाअते-इस्लामी दोनों में से किसी से न जोड़ा जाए।

तजवीज़ों का प्रोग्राम ख़त्म हो गया। इसके बाद आम हाज़िरीन को 15 मिनट का वक़्त आराम के लिए दिया गया। आराम का वक़्त गुज़र जाने के बाद रुफ़क़ा से ख़ुसूसी मुलाक़ात का प्रोग्राम रहा। इसमें अमीरे-जमाअत और क़य्यिमे-जमाअत ने जमाअत के अरकान से और शाह ज़ियाउल-हक़ साहब, मौलाना सद्रुद्दीन साहब, मौलाना हामिद अली साहब और मुहम्मद शफ़ी 'मूनिस' साहब ने हमदर्दों और जमाअत से मुतास्सिर लोगों से अलग-अलग मुलाक़ातें कीं। यह निशस्त 12 बजे ख़त्म हो गई।

सातवीं निशस्त (ज़ुहर की नमाज़ के बाद)

इस निशस्त में भी रुफ़क़ा व मुतास्सिर लोगों से खुसूसी मुलाक़ात का प्रोग्राम रहा। मुलाक़ातों का सिलसिला 5 बजकर 15 मिनट तक जारी रहा। इसके बाद यह निशस्त ख़त्म हो गई।

आठवीं निशस्त (9:30 से 12 बजे तक)

यह दूसरा आम इजतिमा था जिसमें कल रात की तरह हर मक्तबे-फ़िक्र के लोगों ने शिरकत की। इस इजलास में पहले मौलाना क़ुद्दूसी साहब ने रिसालत की ज़रूरत पर तक़रीर की।

मौलाना ज़करीया साहब कुद्दूसी की तक़रीर

खुत्बा-ए-मस्नून के बाद- साहबो! इस वक़्त मुझे जो कुछ अर्ज़ करना है उसका ताल्लुक़ उन दो तक़रीरों से है जो कल आपने सुनी हैं। उन तक़रीरों में यह बात साफ़ तौर से बयान की गई थी कि दुनिया में इस वक़्त बिगाड़ फैला हुआ है और कोई मुल्क और किसी मुल्क का कोई हिस्सा ऐसा नहीं है जो हर तरफ़ फैले हुए इस बिगाड़ से बचा हुआ हो। सवाल यह पैदा होता है कि यह बिगाड़ और फ़साद दूर क्यों नहीं होता और दूर हो तो किस तरह हो? इसका जवाब यह है कि जब तक इनसान पर इनसान का हुक्म चलता रहेगा, जब तक इनसान अपने लिए खुद क़ानून बनाता रहेगा दुनिया में फ़साद ही मचा रहेगा। अगर यह मान लिया जाए कि इनसान क़ानून बनाने का हक़ रखता है तो फ़ौरन यह सवाल पैदा होता है कि कौन इनसान? अगर कुछ ख़ास इनसान यह हक़ रखते हैं तो उसकी वजह मालूम होनी चाहिए और अगर सब इनसान क़ानून बनाने का हक़ रखते हैं और उन्हें क़ानून बनाना चाहिए तो यह मुमकिन नहीं है। दूसरा सवाल यह उभरता है कि इनसान के पास वे क्या ज़राए-वसाइल हैं जिनसे वह क़ानून बनाएगा। अगर अक़्ल से, तो आपको उसका महदूद और नाक़िस होना खुद मालूम है। छोटे-छोटे मामलों में भी बड़े-बड़े अक़्लमन्दों की अक़्लें किस तरह ठोकरें खाती हैं यह आप आए दिन देखते रहते हैं। क्या इस अक़्ल से इनसानी ज़िन्दगी के तमाम गोशों (विभागों) के लिए और सब इनसानों के तमाम मसलों को हल करने

के लिए कोई सही क़ानून बनाना मुमकिन है? तो क्या तजरिबे से? लेकिन किसके तजरिबे से? हर एक इनसान अलग-अलग तरह के तजरिबे रखता है और उनसे बिलकुल अलग नतीजे निकालता है। फिर इनसान ख़ाहिशों का ग़ुलाम है, वह तास्सुब, तरफ़दारी और जानिबदारी का शिकार है। जिस गरोह, जिस क़ौम, जिस तबक़े और जिस मुल्क के लोगों के हाथ में क़ानून बनाने का इख़्तियार आएगा वे दूसरों को अनदेखा कर देंगे। काला काले की हिमायत करेगा और गोरा गोरे की। जैसा कि आप चारों तरफ़ देख रहे हैं कि बड़े-बड़े मुहज़्ज़ब (सभ्य) और अक़्लमन्द नज़र आनेवाले लोग यही कुछ कर रहे हैं। इनसान का तो हाल यह है कि ख़ालिस इल्मी मसलों में भी वह तवाज़ुन क़ायम नहीं रख पाता और ख़यालात व नज़रियात में भी अपनी ख़ाहिशों और जज़बात और तरफ़दारी के रुझान को दाख़िल कर देता है। यही वजह है कि जो नज़रिया आज सही माना जाता है, कल उसे ग़लत कहा जाने लगता है। जब ख़यालात व नज़रियात और सच्चाई मालूम करने और नई-नई खोज करने में इनसान की जज़बात-परस्ती का यह हाल है तो क़ानून के मामले में तो वह और भी जज़बात और ख़ाहिशात का ख़याल रखेगा, क्योंकि क़ानून का ताल्लुक़ इनसान की ज़िन्दगी, उसके अमली मसाइल, उसके मुस्तक़बिल और उसके मफ़ादात से बेहद गहरा होता है। बल्कि क़ानून इन मामलों के लिए ही बनाया जाता है। चुनाँचे यही कुछ हो रहा है और इसका नतीजा सारी दुनिया में फैला वह बिगाड़ है जिससे सारी दुनिया चीख़ उठी है।

सवाल यह है कि अगर इनसान सही क़ानून नहीं बना सकता तो फिर इनसान को सही क़ानून कहाँ से मिले। इसपर ग़ौर करने से पहले इसपर ग़ौर कीजिए कि इनसान की तमाम ज़रूरतें कहाँ से पूरी होती हैं। आप ज़रा बताएँ कि ये दूध, फल, तरकारियाँ, अनाज और मेवे किसने पैदा किए। माँ के सीने में दूध किसने उतारा और माँ-बाप के दिल में मुहब्बत किसने पैदा की। सूरज की रौशनी, हवा, पानी, ज़मीन और दूसरी तमाम ज़रूरतों का किसने इन्तिज़ाम किया? खानों में सोना, चाँदी, लोहा, कोयला और दूसरे खनिज पदार्थ किसने पैदा किए? इसका जवाब इसके सिवा और क्या है कि ख़ुदा ने।

फिर अगर हक़ीक़त यही है कि मेहरबान ख़ुदा ने इनसानी जिस्म की हर ज़रूरत को पूरा किया है तो क्या उसने इनसान की रूह और उसकी इनसानियत के लिए कोई इन्तिज़ाम नहीं किया? उसने इनसान की हर छोटी-बड़ी ज़रूरत को पूरा किया और उसके लिए इतनी लम्बी-चौड़ी दुनिया बनाई और उसे चला रहा है तो क्या उसने इनसान की इस सबसे बड़ी ज़रूरत "ज़िन्दगी का क़ानून" को नज़र-अन्दाज़ कर दिया? यह बात समझ में नहीं आती और न ख़ुदा की रुबूबीयत हिकमत और रहमत से इसका कोई जोड़ है। जब हमारी हर ज़रूरत को, छोटी-से-छोटी ज़रूरत को ख़ुदा ही पूरा कर सकता है और करता है तो इस सबसे बड़ी ज़रूरत को भी वही पूरा कर सकता है और उसको पूरा करना चाहिए, क्योंकि उसके अलावा इसे पूरा करना किसी के इख़्तियार में नहीं है। जब आपसे पूछा जाता है कि इनसान के लिए ये सब सामान किसने पैदा किए तो आप ख़ुदा का नाम लेते हैं, लेकिन जब आपसे यह सवाल किया जाता है कि इनसान की इस सबसे बड़ी ज़रूरत को किसने पूरा किया और कौन पूरा करे तो आप ऐरे-ग़ैरे का नाम लेते हैं। अरे साहब! आप यह तो सोचें कि अगर मोटर को, रेल के इंजन को और दूसरी मशीनों को कोई अनाड़ी चलाएगा जो उनके कुलपुर्ज़ों से अच्छी तरह वाक़िफ़ न हो तो उनको बिगाड़कर न रख देगा। फिर जो लोग इनसान की फ़ितरत को न जानते हों, उसकी ज़िन्दगी के मक़सद से बेख़बर हों, इनसानी ज़िन्दगी के कुल-पुर्ज़ों की अच्छी तरह जानकारी न रखते हों, कायनात के निज़ाम की उन्हें ख़बर न हो, वे अगर क़ानून बनाएँगे तो क्या इनसानी ज़िन्दगी को बिगाड़ कर न रख देंगे? हक़ीक़त यह है कि इनसान के लिए ख़ुदा ही सही क़ानून बना सकता है, जिसने उसको पैदा किया है, जिसने उसकी फ़ितरत बनाई है, जिसने यह कायनात पैदा की है और जो इनसानी फ़ितरत, इनसानी ज़िन्दगी और कायनात के तमाम राज़ों का पूरा इल्म रखता है।

तो क्या ख़ुदा ने हमारे लिए क़ानून बनाया है? इसका जवाब पूरी तरह 'हाँ' में है। ख़ुदा ने इनसान को दुनिया में पैदा करने के साथ ही क़ानून भी दिया। ख़ुदा की तरफ़ से चुने गए जो बन्दे यह क़ानून लाए हैं उन्ही को नबी, रसूल और पैग़म्बर कहा जाता है।

रही यह बात कि हमें यह कैसे यक़ीन हो कि ये लोग अल्लाह के रसूल हैं तो इसका मालूम करना भी कुछ मुश्किल नहीं, मैं दूसरे नबियों के बारे में तो इस वक़्त कुछ नहीं कहूँगा अलबत्ता अल्लाह के आख़िरी नबी हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) के सिलसिले में बे-झिझक यह कहने की जुर्रत करता हूँ कि उनकी पूरी ज़िन्दगी का तफ़सीली रिकार्ड तारीख़ में मौजूद है। उसको आप पढ़ें, आप यह मानने पर मजबूर होंगे कि उनके जैसा सच्चा, अमानतदार, ख़ुदा से डरनेवाला और मुकम्मल इनसान, इनसानी तारीख़ में कोई दूसरा मौजूद नहीं है। ऐसा सच्चा और ख़ुदा से डरनेवाला इनसान अगर पूरे यक़ीन और साफ़ तरीक़े से अपने को अल्लाह का रसूल बताता है तो आख़िर किस बुनियाद पर हम उसके इस दावे को रद्द कर देंगे। जबकि जो दीन और जो ज़िन्दगी का तरीक़ा उसने पेश किया है, वह हमारी अक़्ल और हमारे दिल को अपील करनेवाला, हमारे तमाम उलझे हुए मसाइल हल करनेवाला और तमाम इनसानों की कामयाबी और भलाई की ज़मानत भी देता हो और उसमें वह हमागीरी (व्यापकता) वह रब्त, वह जामईयत (सारगर्भिता) वह गहराई और वह हिकमत मिलती हो जो उस दीन के अल्लाह के दीन होने का ख़ुद ही खुला सुबूत हो, जबकि ख़ुद अल्लाह के उस पाक रसूल की ज़िन्दगी का हर पहलू मुकम्मल इनसानियत के बेहतरीन नमूने की हैसियत से सामने आ रहा और जबकि उस दीन को पूरी तरह क़बूल करनेवाले सहाबा (रज़ि0) की ज़िन्दगियाँ इनसानियत का बेहतरीन नमूना हों और जबकि उस दीन के क़ायम व ग़ालिब होने पर वह सुनहरा, वह रौशन, वह इनसानियत परवर और वह इनसाफ़-पसन्द ज़माना दुनिया में आया हो जिसे दुनिया ने कभी न देखा और जिसको सारी इनसानियत ने सराहा और नमूने का दौर समझा। कोई वजह नहीं कि इसके बाद भी हम इस दीन को अल्लाह का दीन न मानें, उसके लानेवाले को अल्लाह का रसूल न समझें और अपनी भलाई के लिए इस दीन को न अपनाएँ। अगर हम अल्लाह के क़ानून की पैरवी करेंगे तो अपनी दुनिया व आख़िरत का फ़ायदा करेंगे और अगर पैरवी न करेंगे तो अपनी दुनिया व आख़िरत बर्बाद करेंगे।

मगर आज हाल यह है कि जो लोग इस दीन को मानते भी हैं और

क़ुरआन को अल्लाह की किताब समझते भी हैं, वे क़ुरआन से सिर्फ़ तावीज़-गण्डों का काम लेते हैं और उससे जिन्न-भूत बीमारी वग़ैरा को भगाने का काम लेते हैं। न तो उसपर अमल करते हैं, न उससे ज़िन्दगी के मसलों को हल करने में मदद लेते हैं और न उसकी दावत (पैग़ाम) को दुनिया के सामने पेश करते हैं। नतीजा यह है कि मुख़्तलिफ़ रास्तों में भटकते फिरते हैं। ज़िल्लत व अपमान सह रहे हैं। कभी काले का दामन पकड़ते हैं, कभी गोरे का। घर में ख़ज़ाना भरा पड़ा है, मगर अपने मसाइल को हल करने के लिए कभी अमेरिका के आगे हाथ फैलाते हैं और कभी रूस से मदद माँगते हैं। अल्लाह का भेजा हुआ निज़ामे-ज़िन्दगी घर में मौजूद है मगर वे दूसरे निज़ामों और तहरीकों के पीछे पागलों की तरह दौड़ रहे हैं। उनका बोझ अपने कन्धों पर उठा रहे हैं। दुनिया लोकतन्त्र, कम्यूनिज़्म, क़ौम-परस्ती और बेदीनी (अधर्म) के हाथों बरबाद हो रही है। इस तबाही से बचाने का नुस्ख़ा अपने पास रखते हैं, मगर दूसरों को तो क्या बचाते, ख़ुद भी तबाही के इसी सैलाब में बहे चले जा रहे हैं और सही निज़ामे-ज़िन्दगी की तरफ़ जाने के बजाए उन ग़लत और घातक जीवन-व्यवस्थाओं की तरफ़ लोगों को बुला रहे हैं। कितना अन्धेरा है! अल्लाह के भेजे हुए हिदायत के ख़ज़ाने पर साँप की तरह कुण्डली मारे बैठे हैं। न ख़ुद फ़ायदा उठाते हैं, न दूसरों को फ़ायदा उठाने देते हैं।

आप कहेंगे हमने कब ग़ैर-मुस्लिमों को रोका है कि वे इस्लाम से फ़ायदा न उठाएँ। यह सही है कि हमने ज़बान से नहीं रोका है। लेकिन हमारा अमल और हमारी तमाम अमली सरगर्मियाँ तो उन्हें इस राह से रोक रही हैं। वे देखते हैं कि क़ुरआन का माननेवाला झूठ बोलता है, रिश्वत लेता है, हर तरह की बद-अख़लाक़ी और हर तरह के ख़यालात बे उसूलेपन के काम करता है, फिर क्यों उसका दिल क़ुरआन के आगे झुके और क्यों उसका विचार इस्लाम के बारे में सही हों। अगर मुसलमान अपनी कथनी और करनी से दीन (इस्लाम) की गवाही पेश करते तो दुनिया अपनी सिर की आँखों से चलते-फिरते इस्लाम को देखती, देखने पर मजबूर होती और उससे असर लेती, लेकिन वह मुसलमानों के इन ग़लत नमूनों को देखती है

और दिन रात देखती है कि मुसलमान इस्लामी तहरीक को चलाने के बजाय दुनिया की दूसरी ग़लत और बातिल तहरीकों के अलमबरदार बने हुए हैं तो किस तरह उनका ज़ेहन इस्लाम का मुताला करने के लिए राज़ी हो और किस तरह उनके दिल में इस्लाम के बारे में कोई अच्छा गुमान पैदा हो।

मैं मुसलमानों से कहता हूँ कि जब दिल्ली में फ़साद हुआ तो तुम रोए, जब पूर्वी पंजाब में फ़साद हुआ तो तुम रोए, जब लूटे हुए बर्तन और सामान बिके तो तुम्हें रोना आया और इसलिए रोना आया कि हमारे प्यारे नबी हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ने फ़रमाया है कि अगर एक मुसलमान के काँटा लगे तो दूसरे मुसलमान के दिल में उसकी चुभन महसूस होनी चाहिए। यह एक फ़ितरी बात थी, लेकिन मैं उनसे पूछता हूँ कि किसी को इसपर भी रोना आया कि अल्लाह का क़ानून हर जगह पाँवों तले रौंदा जा रहा है। बाज़ार से, कचहरी से, एसेम्बलियों और काउंसिलों से, स्कूलों से, घरों से, शक्लों से और लिबासों तक से अल्लाह का दीन निकाल दिया गया है। हर जगह इबलीस का राज है। क्या इसका दर्द भी मुसलमान के दिल में पैदा हुआ? क़ुरआन घर से, दुकान से, ग़रज़ हर जगह से बेदख़ल कर दिया गया है लेकिन मुसलमान है कि मज़े की नींद सो रहा है। नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया है, "इस्लाम अजनबियत की हालत में ज़ाहिर हुआ था। और जिस तरह वह ज़ाहिर हुआ था उसी तरह वह फिर अजनबी हो जाएगा। तो ख़ुशख़बरी है उन लोगों के लिए जो (इस्लाम पर अमल करने की वजह से) अजनबी होंगे।" आज वही दौर है। तो क्या हम प्यारे नबी (सल्ल०) की इस ख़ुशख़बरी के हक़दार बनना नहीं चाहते?

साथियो! नबी (सल्ल०) पर नुबूवत ख़त्म हो चुकी है। आज इस्लाम हर जगह से निकाल दिया गया है और इस्लाम की मरज़ी के मुताबिक़ सांस लेना मुश्किल है। अब दुनिया को सीधे रास्ते पर चलाने और अल्लाह के दीन को क़ायम करने का काम किसके ज़िम्मे है? यक़ीनन यह तुम्हारा ही फ़र्ज़ है। उठो, अल्लाह के दीन को फैलाओ और अपनी पूरी ज़िन्दगी और अपने काम और अमल से दुनिया के अन्दर हक़ की गवाही पेश करो।

ग़ैर-मुस्लिम भाइयों से मुझे सिर्फ़ यह कहना है कि मुसलमानों ने इस दीन की क़द्र नहीं की है और इस वजह से वे ठोकरें खा रहे हैं। तो छोड़ो उनको और ख़ुद देखो कि यह दीन कैसा है ? क़ुरआन ख़ुद तुम्हारे मुल्क में मौजूद है। तुम इसका मुताला कर सकते हो। पण्डित जवाहर लाल नेहरू ने कहा था- "मैं तो यह चाहता हूँ कि कोई ऐसा उपाय मिल जाए कि भारत को सुख प्राप्त हो जाए।" क़ुरआन पढ़कर तुम महसूस करोगे कि पण्डित नेहरू और हर हिन्दुस्तानी जिस चीज़ को दिल से चाहता है वह इसके अन्दर मौजूद है। यह समझना कि यह मुसलमानों ही की चीज़ है, सही नहीं है। यह मुसलमानों की जागीर नहीं है। क्या बारिश, सूरज, चाँद, हवा सिर्फ़ मुसलमानों के लिए हैं? क्या अनाज, सब्ज़ियाँ और लाखों नेमतें सिर्फ़ मुसलमानों के लिए हैं? नहीं, और हरगिज़ नहीं! इसी तरह ख़ुदा का नाज़िल किया हुआ क़ुरआन और ख़ुदा का भेजा हुआ क़ानून सब इनसानों के लिए नेमत है और सब इनसान उससे फ़ायदा उठाने का एक जैसा हक़ रखते हैं। इसलिए इससे भागने की ज़रूरत नहीं। ग़ौर कीजिए और फ़ैसला कीजिए कि यह अल्लाह का आख़िरी दीन है या नहीं? और इससे इनसानों के तमाम मसाइल हल होते हैं या नहीं?

आप सवाल कर सकते हैं कि जिस इस्लाम की तारीफ़ की जा रही है वह कहीं क़ायम भी है? मैं अर्ज़ करूँगा कि वह कहीं भी क़ायम और लागू नहीं है और यह हम मुसलमानों का अपने फ़र्ज़ को न पहचानने का नतीजा है। मगर ये हवाई बातें नहीं हैं और न इस्लाम सिर्फ़ नज़रिया है। उसका एक इतिहास है। ज़रा पीछे की तरफ़ नज़र उठाकर देखिए, अल्लाह के क़ानून की बहारें दुनिया के अन्दर आ चुकी हैं। ख़िलाफ़ते-राशिदा के सुनहरे दौर को कौन नहीं जानता और कौन उसके बेहतरीन दौर होने को तस्लीम नहीं करता। उस दौर की क्या ख़ास खुसूसियत थी। बस यही तो कि इस्लाम का क़ानून अपनी मुकम्मल शक्ल में अपने अस्ल सिलसिले के साथ लागू था। आप इतिहास में इस दौर की तफ़सीलात पढ़ें। अमीरुल-मोमिनीन हज़रत अली (रज़ि०) की ख़िलाफ़त का ज़माना है। उनकी ज़िरह गुम हो गई थी। देखा कि एक यहूदी के हाथ में है। उसने कहा मेरी है। इस झूठ के बावजूद

उस वक़्त के ख़लीफ़ा (हज़रत अली) ने यह नहीं किया कि डरा धमकाकर या एक थप्पड़ मारकर ज़िरह उससे छीन लें। इसके बजाय वह क़ाज़ी (जज) के यहाँ अपने मामले को ले गए। क़ाज़ी ने दोनों से बराबर बर्ताव किया और यह न देखा कि कौन वक़्त का ख़लीफ़ा है कौन इस्लाम का दुश्मन। क़ाज़ी ने ख़लीफ़ा से कहा कि आप मुददई हैं, गवाह लाइए। हज़रत अली (रज़ि०) ने गवाही के लिए अपने ग़ुलाम क़ुंबर और अपने बेटे हसन (रज़ि०) को पेश किया। क़ाज़ी ने कहा, "ग़ुलाम की गवाही तो क़बूल की जा सकती है मगर बाप के हक़ में बेटे की गवाही क़ानूनी और उसूली तौर पर क़बूल नहीं की जा सकती। कोई दूसरा गवाह लाइए वरना मैं कार्रवाई आगे बढ़ाता हूँ।" ख़लीफ़ा ने कहा, "और तो कोई गवाह मेरे पास नहीं है।" क़ाज़ी ने यहूदी से कहा कि तुम क़सम खाओ कि ज़िरह मेरी है। उसने क़सम खा ली। क़ाज़ी ने यहूदी के हक़ में फ़ैसला कर दिया। आपने ग़ौर किया? दावा किसका रद्द किया गया, वक़्त के ख़लीफ़ा का, अमीरुल-मोमिनीन का, उस वक़्त के सबसे बड़े सहाबी का, प्यारे नबी (सल्ल0) के चचेरे भाई और दामाद का। और गवाही किसकी रद्द की गई? नबी (सल्ल०) के नवासे की, वक़्त के ख़लीफ़ा के बेटे की, उनकी जिनके बारे में प्यारे नबी (सल्ल०) का कहना है कि वे जन्नत के नौजवानों के सरदार हैं। और फ़ैसला किसके हक़ में हुआ, इस्लाम के सबसे कट्टर दुश्मन यहूदी के हक़ में। क्यों हुआ? इसलिए कि उसूल और क़ानून का यही तक़ाज़ा था। यहूदी ने जब इस बेलाग इनसाफ़ को देखा तो फ़ौरन अपने आपको इस्लाम के क़दमों में डाल दिया।

यह और इस तरह के अनगिनत वाक़िआत यह दुनिया अपनी आँखों से देख चुकी है और इतिहास के पन्नों ने पूरी एहतियात से उन्हें महफ़ूज़ कर लिया है। क्या आप नहीं चाहते कि आज फिर वही दौर आए। कम-से-कम हमारे भारत में आए। यह दौर सिर्फ़ ख़ुदा से डरनेवालों, उसके अहकाम पर पूरी तरह अमल करनेवालों ही के हाथों फिर वुजूद में आ सकता है और उसी वक़्त वुजूद में आ सकता है जब इनसान के ख़ुद के बनाए हुए क़ानून के बजाय अल्लाह का क़ानून दुनिया में लागू हो। आइए हम सब मिलकर अल्लाह के क़ानून को तलाश करें, उसकी पैरवी करें और समाज के पूरे ढाँचे

की तामीर खुदाई क़ानून की बुनियादों पर करने के लिए एक ऐसा चौ-तरफ़ा इनक़िलाब मुल्क में ले आएँ जिससे हमारा मुल्क सचमुच जन्नत जैसा बन जाए। हर तरफ़ सुख-शान्ति, इनसाफ़, इनसानियत, अख़लाक़, भाईचारे, मुहब्बत और रहमदिली का राज हो। जमाअते-इस्लामी इसी काम के लिए उठी है और आपको इसी बात की दावत देती है।

अमीर जमाअते-इस्लामी हिन्द का लेख

मौलाना ज़करीया साहब की तक़रीर के बाद मौलाना अबुल्लैस नदवी इस्लाही अमीर जमाअते-इस्लामी हिन्द का एक लेख पढ़कर सुनाया गया। लेख पढ़े जाने से पहले अमीरे-जमाअत ने अपनी एक मुख़्तसर ज़बानी तक़रीर में इजतिमा में शरीक लोगों को मुख़ातब करते हुए फ़रमाया -

कल से इस वक़्त तक आप हमारे कई रुफ़क़ा की ज़बानी तीन तक़रीरें सुन चुके हैं। जिनमें से दो तक़रीरों में आज के लोकप्रिय नज़रियात (विचार धाराओं) पर तब्सिरा करते हुए यह बताने की कोशिश की गई है कि वे किस तरह दुनिया और ख़ासकर हिन्दुस्तान के मौजूदा मसाइल को हल करने में नाकाम हैं और तीसरी तक़रीर में कुछ इख़्तिसार (संक्षेप) के साथ इस बात की तरफ़ इशारे किए गए हैं कि उनके हल का सही तरीक़ा क्या हो सकता है। अब इस सिलसिले की सिर्फ़ आख़िरी तक़रीर बाक़ी रह गई है, जिसमें यह बात साफ़ तौर पर बताई जाएगी कि जमाअते-इस्लामी, जिसकी दावत पर आप इस वक़्त यहाँ तशरीफ़ लाए हैं, क्या चाहती है और जो कुछ चाहती है उसको वह किस तरह हासिल करना चाहती है? यह तक़रीर मेरे फ़राइज़े-मनसबी के लिहाज़ से मुझे करनी थी और मैं कुछ दिन पहले तक यही सोच रहा था कि इस सवाल के सिलसिले में मुझे जो कुछ कहना है, उसे मैं ज़बानी करूँगा, लेकिन मुझे महसूस हो रहा है कि हमारे ख़यालात के सिलसिले में हम पर बड़ा ज़ुल्म किया जा रहा है। बहुत से लोग हमारी बातों को ग़लत तरीक़े से बयान करते हैं, बल्कि बिल्कुल ग़लत और बेबुनियाद बातें हमसे जोड़ दी जाया करती हैं और आज कल तो खुसूसियत के साथ यह काम बड़े पैमाने पर हो रहा है। इसलिए यह मुनासिब मालूम होता है कि

जमाअत के मक़सद और उसके तरीक़े-कार (कार्य-प्रणाली) के बारे में जो कुछ कहना चाहता हूँ। उसे तहरीरी शक्ल में बयान करूँगा ताकि वे बातें ठीक तरह से अदा हों और ठीक तरह समझी जाएँ। इस ख़याल के मुताबिक़ मैंने अपनी बातें लिख ली हैं और वही तहरीर इस वक़्त आपके सामने पढ़कर सुनाई जाएगी। मैं समझता हूँ कि हमारी इस एहतियात के बावजूद जो लोग ग़लतफ़हमियाँ फैलाने का इरादा ही कर चुके हैं वे इसके बाद भी उससे नहीं रूकेंगे, लेकिन ज़ाहिर है इस एहतियात के अलावा हमारे पास ऐसे लोगों को उनकी इस हरकत से रोकने की कोई और तदबीर (उपाय) नहीं है। यह लेख काफ़ी लम्बा हो गया है इसलिए मेरी गुज़ारिश है कि इसको ज़रा सुकून से आख़िर तक सुनें। इसमें उन सभी ज़रूरी पहलुओं पर रौशनी डाली गई है जिनका जानना जमाअत की दावत को समझने के लिए ज़रूरी है।

इसके बाद एक रफ़ीक़ स्टेज पर आए और बुलन्द आवाज़ से उन्होंने तक़रीर करनी शुरू की। (यह तक़रीर "जमाअते-इस्लामी, उसका मक़सद और तरीक़े-कार" नामी किताबचे में देखी जा सकती है।)

23, अप्रैल, 1951 दर्से-क़ुरआन

फ़ज्र की नमाज़ के बाद रोज़ की तरह मौलाना सदरुद्दीन इस्लाही साहब ने क़ुरआन मजीद का दर्स दिया। आज दर्स सूरा-5 माइदा की आयत 7 से 14 तक से मुताल्लिक़ था। आयतों के तर्जमे के बाद उनकी शरह (व्याख्या) इस तरह की गई -

साथियो! यह आयतें हमारी ईमानी फ़लाह और मिल्ली ज़िन्दगी के ताल्लुक़ से फ़ैसलाकुन बात की हैसियत रखती हैं। इनको दरअस्ल अल्लाह तआला का वसीयत-नामा समझना चाहिए जो उसने अपने सारे अहकाम सुना देने के बाद हर्फ़े-आख़िर (उपसंहार) के तौर पर क़ुरआन की पैरवी करनेवालों के कानों में डाल दिया है। इस वसीयत-नामे में उम्मते-मुस्लिमा के ताल्लुक़ से सबसे ज़्यादा अहम हक़ीक़तों को बयान किया गया है। उसे समझा दिया गया है कि क़ुरआन को हाथ में लेने के बाद उस पर कितनी बड़ी ज़िम्मेदारियाँ आ चुकी हैं और अब अल्लाह रब्बुल-आलमीन की निगाहों में उसका क्या मक़ाम है। अगर उसने अपना फ़र्ज़ न पहचाना तो इस ग़द्दारी

की उसे क्या सज़ा मिल सकती है। उसमें ऐसी क्या खुसूसियात होनी चाहिएँ जिससे अमली दुनिया में वह दूसरों से अलग नज़र आए। और अगर अल्लाह न करे इस उम्मत में अपनी ज़िन्दगी के फ़राइज़ से बचने की बीमारी फैल जाए तो उस वक़्त भी एक सच्चे मोमिन का रवैया क्या होना चाहिए। फिर इन सारी अहम हक़ीक़तों को यहूदियों और ईसाइयों के शिक्षाप्रद इतिहास के आईने में भी दिखा दिया गया है। मैं उनकी थोड़ी सी तफ़सील बताता हूँ।

फ़रमाया जाता है कि मुसलमानो! इस क़ुरआन को अच्छी तरह पहचान लो। याद रखो कि फ़ितरतन (स्वाभाविक रूप से) तुम पर मेरे अहकाम की पाबन्दी ज़रूरी तो थी ही, क्योंकि मैं ही तुम्हारा ख़ालिक़, मालिक और परवरदिगार हूँ। मगर अब तो इस क़ुरआन की पैरवी का और इसकी अलमबरदारी का इक़रार करके तुमने इस फ़रमाँबरदारी को अपने ऊपर और भी ज़्यादा लाज़िम कर लिया है। यह क़ुरआन मेरे और तुम्हारे बीच होनेवाले मुआहदे की वह दस्तावेज़ है, जिसके मुताबिक़ ही अब तुमसे मामला होगा दुनिया में भी और आख़िरत में भी। मगर यह भी सुन लो कि मुआहदे की यह दस्तावेज़ बिलकुल नई तरह की दस्तावेज़ है जिसकी हैसियत, मुश्किलों और मुसीबतों के ढेर की नहीं, बल्कि नेमतों के ख़ज़ाने की सी है। ख़बरदार! जो इससे तुम्हारे दिलों में नागवारी और तंगी पैदा हो, जैसा कि नादान अहले-किताब के दिलों में पैदा हुई और ज़बानों से इसका इज़हार भी हुआ। यह इन मानी में ज़रूर एक अहदनामा ही है कि तुम्हारे बारे में जो फ़ैसला भी कल (यानी आख़िरत में) किया जाएगा, इसी के मुताबिक़ किया जाएगा, क्योंकि अक़्ल का, हिकमत का और इनसाफ़ का यही तक़ाज़ा है। मगर यह किताब खुद अपने आप में वह अनमोल नेमत है जिससे बड़ी नेमत इस आसमान के नीचे कोई उतारी नहीं गई।

इस मुआहदे की पाबन्दी तुम्हें किस तरह करनी है? इसका जवाब लम्बा भी है और मुख़्तसर भी। लम्बा जवाब तो वह है जो क़ुरआन की 114 सूरतों में समाया हुआ और प्यारे नबी (सल्ल0) के अक़वाल और अफ़आल (कथनों और कर्मों) में फैला हुआ है और मुख़्तसर जवाब यह है

कि "अल्लाह के लिए क़िस्त (इनसाफ़) के 'क़व्वाम' और 'शाहिद' बनो। यह 'क़िस्त' क्या चीज़ है? सीधी बात यह है कि क़िस्त या इनसाफ़ वह दीन और शरीअत है जिसका नाम इस्लाम है। 'क़व्वाम' का मतलब है इनसाफ़ के इस क़ानून (दीन) पर मज़बूती से जम जाना और 'शाहिद' (गवाह) बनने का मतलब यह है कि उसकी सच्चाई और उसके फ़ायदेमन्द होने की गवाही, अपने क़ौल व अमल (कथनों और कर्मों) से बाक़ी दुनिया के सामने पेश की जाए।

हज़रात! सूरा-4 निसा की एक आयत में भी लफ़्ज़ "क़िस्त" आया है अलबत्ता उसके दूसरे अल्फ़ाज़ इस (सूरे माइदा वाली) आयत से ज़रा अलग हैं। क़ुरआन की आयतें एक दूसरे की शरह (व्याख्या) और तफ़सील बयान करनेवाली होती हैं। लिहाज़ा अगर आप इस आयत को निसा वाली आयत की रौशनी में देखें तो वह मतलब आपके सामने बिलकुल स्पष्ट हो जाएगा जो मैं बता रहा हूँ। कहने का मतलब यह कि दीने-हक़ की ख़ुद पैरवी का और दूसरों तक उसकी तब्लीग़ व शहादत का दोहरा फ़र्ज़ इस आयत से साबित होता है।

हज़रात! इस ख़ालिस हक़ व इनसाफ़ की पैरवी और इसका बोलबाला करने का काम कितने बेलाग तरीक़े से होना चाहिए ? इस सूरा निसा वाली आयत में साफ़-साफ़ बयान कर दिया गया है कि हक़ का दामन हरगिज़ न छोड़ो चाहे इस हक़-परस्ती की चोट बज़ाहिर ख़ुद तुम पर या तुम्हारे माँ-बाप और रिश्तेदारों पर ही क्यों न पड़ती हो। (क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-135) मतलब यह है कि दुनिया के अक़्लमन्दों का मशवरा चाहे कुछ हो, ज़ात और ख़ानदान, नस्ल और बिरादरी, क़ौम और मिल्लत, मुल्क और वतन के अन्धे तक़ाज़े जो कुछ भी कहें, तुम्हें हर आवाज़ के लिए अपने कान बहरे कर लेने चाहिएँ और करना वही चाहिए जो दुरुस्त हो, इनसाफ़ हो, क़ुरआन में बयान किया गया हो, ख़ुदा का हुक्म हो, अल्लाह के रसूल ने फ़रमाया हो। बेशक दुनिया में अक़्लमन्द कहे जानेवाले लोग इसे बेवक़ूफ़ी कहेंगे और कोई ताज्जुब नहीं कि कितने ही मौक़ों पर तुम्हारा दिल भी ज़ाहिरी हालात के तूफ़ानी झोंकों से हिल जाए। मगर याद रखो, यही फ़ैसले

का वक़्त होगा और यहीं तुम्हारी वादा-वफ़ाई (वचन बद्धता) जाँची जाएगी। फिर इसका भी यक़ीन करो कि तुमसे इस बेलाग हक़परस्ती का मुतालबा सिर्फ़ इसी लिए नहीं किया जाता कि यही ख़ुदा का हुक्म है, इसलिए भी किया जाता है कि दरअस्ल इसमें तुम्हारी भी भलाई है और उसकी भी जिसके ख़िलाफ़ तुम्हारी यह गवाही बज़ाहिर पड़ रही हो। तंग-नज़री और कम निगाही से काम न लो, दूर तक सोचो, आख़िर तुम अपने या अपने ख़ानदान या अपनी क़ौम या अपने वतन के ख़िलाफ़ गवाही देने और सच कहने से परेशान क्यों होते हो? इसी लिए न कि तुम्हारा गुमान है कि इस तरह उसपर चोट पड़ जाएगी और उसका नुक़सान हो जाएगा। मगर अफ़सोस! तुमने यह नहीं सोचा कि जिसको तुम चोट खाने से बचाना चाहते हो, मुझसे बढ़कर उसका सचमुच ख़ैरख़ाह (हितैषी) कोई नहीं।

("फ़रीक़े-मामला ख़ाह चाहे मालदार हो या ग़रीब, अल्लाह तुमसे ज़्यादा उनका भला चाहनेवाला है।") (क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-135) क्या मुझसे बढ़कर तुम उसके ख़ैरख़ाह हो? कारसाज़ी मेरे हाथ में है या तुम्हारे? अत: इस सच्ची गवाही का नतीजा सिर्फ़ यही नहीं कि तुम अपने अहदे-बन्दगी में सच्चे साबित होगे, बल्कि जिसके ख़िलाफ़ तुम्हारी यह गवाही पड़ेगी उसकी भी हक़ीक़ी भलाई इसी तरह महफ़ूज़ होगी। तुम उसे अल्लाह के और उसके क़ानून के सुपुर्द करके दरअस्ल उसे फ़ायदा पहुँचाओगे, अगरचे वक़्ती तौर पर बज़ाहिर नुक़सान होता दिखाई देगा, मगर यह मामले को सतही तौर पर देखने की वजह से नुक़सान दिखाई देगा, हक़ीक़त में नुक़सान न होगा। इसलिए अगर तुम सही मानी में अपने या अपने नाते-रिश्तेदारों के या देश व क़ौम का भला चाहनेवाले हो तो ग़लत बातों में उनका साथ न दो, बल्कि उनकी मुख़ालिफ़त करो और उसे हक़, (न्याय) के सुपुर्द कर दो।

हज़रात! इस शहादते-हक़ (सत्य की गवाही) की एक अमली मिसाल भी सुन लीजिए जो क़ुरआन ने इसी सूरा में आगे चलकर पेश की है। यह मिसाल बनी- इसराईल के दो उलुल-अज़्म (दृढ़निश्चयी) हक़ की गवाही देनेवालों की है। जब ख़ुदा के हुक्म से हज़रत मूसा (अलैहि0) ने

बनी-इसराईल को फ़िलिस्तीन पर हमला करने का हुक्म दिया तो उनके हाथ-पाँव फूल गए और वे चिल्ला उठे, "उस (बस्ती) में तो बड़े ज़बरदस्त लोग रहते हैं।" (क़ुरआन, सूरा-5 माइदा, आयत-22) "(मूसा) तुम और तुम्हारा रब दोनों जाओ, लड़ो, हम तो यहीं बैठे रहेंगे।" (क़ुरआन, सूरा-5 माइदा, आयत-24) जिस वक़्त अल्लाह और रसूल के हुक्मों की इस तरह खुले आम ख़िलाफ़वर्ज़ी हो रही थी और इनसाफ़ से साफ़ तौर पर मुँह मोड़ा जा रहा था तो उसी क़ौम के अन्दर से ख़ुदा के दो बन्दे उठे जिनका नाम तौरात में 'यूशा' और 'कालिब' बताया गया है। उन्होंने क़ौम के सामने ईमान को गर्मा देनेवाली तक़रीर की और उसकी बेयक़ीनी के ख़िलाफ़ एहतिजाज करते हुए उसे ख़ुदा के हुक्म की पैरवी करने पर उभारा। उन्होंने इसकी कोई परवाह नहीं की कि हालात क्या हैं? यह नहीं सोचा कि क़ौम के ज़्यादातर लोग क्या चाहते हैं? उनके सामने सिर्फ़ ख़ुदा का हुक्म था, रसूल का फ़रमान था, क़िस्त (न्याय) की पैरवी थी और हक़ की गवाही थी। क़ौम ने अगरचे उनकी बातों को भी ठुकराया, यहाँ तक कि उनको पत्थरों से मार-मारकर हलाक कर देने की सोचने लगी, मगर वे बराबर अपनी बात पर ही जमे रहे।

हज़रात! फिर आपको यह भी मालूम होना चाहिए कि मुस्तक़बिल का फ़ैसला क्या रहा? मुस्तक़बिल का फ़ैसला यह रहा कि आख़िरकार वह वक़्त आया जब इन्हीं 'यूशा' की सरदारी में फ़िलस्तीन फ़तह हुआ और उन्हें बनी-इसराईल का सरदार बनाया गया। जी हाँ, इन्ही यूशा को जिनकी बातों को कल ठुकरा दिया गया था और पूरी क़ौम जिनको नादान ठहरा चुकी थी और उनको उनके चंद हक़-परस्त साथियों के साथ अकेला छोड़कर अलग हो चुकी थी। यह था हक़ पर जमे रहकर उसके गवाह बनने का फ़ायदा। अल्लाह तआला ने अहद को पूरा करने, हक़ पर चलने और इनसाफ़ की गवाही देने की यह मिसाल भी हमारे सामने रख दी है और साथ ही यहूदियों और ईसाइयों द्वारा अहद तोड़ने की दास्तानें भी सुना दी हैं और फिर दोनों रवैयों के नतीजे भी सुना दिए हैं। अब यह हमारा काम है कि इन दोनों में से एक को अपने लिए चुन लें।

व आख़िरू दावाना अनिल-हम्दु लिल्लाहि रब्बिल-आलमीन !

"आख़िर में हम सारे जहानों के रब अल्लाह की हम्द करते हैं।"

नौवीं निशस्त

7:30 से 8:30 तक

नाश्ते वग़ैरा से निबटने के बाद इजतिमा की नौवीं निशस्त (बैठक) शुरू हुई। यह निशस्त इस इजतिमा की आख़िरी निशस्त थी। इसमें अमीरे-जमाअत ने रुफ़क़ा को हिदायत देने के लिए अपनी इख़्तितामी तक़रीर (समापन भाषण) की जो नीचे दी जा रही है।

अमीरे-जमाअत की इख़्तितामी तक़रीर

हम्द व सना के बाद :

मुहतरम रुफ़क़ा व हाज़िरीन!

यह हमारे इजतिमा की आख़िरी बाक़ायदा निशस्त है। इसके बाद हल्क़ा-ए-अदब (साहित्य) और हल्क़ा-ए-मआशियात (अर्थशास्त्र) वग़ैरा के कुछ ज़ैली इजतिमाआत और होंगे। इस तरह से जो नई बस्ती दो-चार दिन के लिए यहाँ बस गई थी, वह उजड़ जाएगी और लोग अपने-अपने घरों को वापस चले जाएँगे। यूँ तो मैं आम हालात में भी अपने ज़्यादा तर कामों में अल्लाह की ख़ास मेहरबानी को महसूस करता रहा हूँ, लेकिन ख़ास इस इजतिमा के मौक़े पर अल्लाह तआला ने जिस तरह अपने फ़ज़्ल व करम से नवाज़ा है जब मैं उसके बारे में सोचता हूँ तो मेरा दिल शुक्र व एहसान के जज़्बे से भर जाता है। इस इजतिमा का एलान होते ही मक़ामी तौर पर मुख़ालिफ़तों का एक तूफ़ान उमड़ पड़ा था। मुख़्तलिफ़ लोग मुख़्तलिफ़ मक़सदों के तहत हमारी मुख़ालिफ़त पर उतर आए थे। हम पर बेबुनियाद इल्ज़ामात लगाए गए। हमारे रुफ़क़ा को तरह-तरह की उलझनों और परेशानियों में डालने की कोशिश की गई और कुछ लोगों ने तो ऐसे-ऐसे तरीक़े अपनाए कि अगर वे ख़ुद उनपर सुकून के साथ ग़ौर करेंगे तो उन्हें शर्म आएगी, लेकिन अल्लाह का बहुत-बहुत शुक्र है कि मुख़ालिफ़त में किए

गए इन तमाम कामों का हमारे इजतिमा पर कोई असर न पड़ा, बल्कि कुछ पहलुओं से वे हमारे लिए फ़ायदेमन्द साबित हुए। उनकी वजह से बहुत से नए लोग हमारे बारे में जानकारी हासिल करने और हमारी बातों पर ध्यान देने लगे और बहुत से लोगों को मुख़ालिफ़त करनेवालों की तरफ़ से मुख़ालिफ़त के घटिया तरीक़े अपनाने की वजह से हमारे साथ हमदर्दी पैदा हुई और उन्होंने ख़ुद ही उनके इलाज की कोशिश की। अल्लाह तआला उन सबकी कोशिशों को क़बूल फ़रमाए। बहरहाल अल्लाह तआला का जो ख़ुसूसी फ़ज़्ल व करम इस मौक़े पर ज़ाहिर हुआ है और जिसकी वजह से हम इतने सुकून व इत्मीनान के साथ अपनी सब कार्रवाइयाँ कर सके हैं, वह बहुत ही अहम और अजीब है, जिसपर हमें ख़ास तौर से अल्लाह का शुक्र अदा करना चाहिए और अल्लाह के फ़ज़्ल व करम को ज़ेहन में रखते हुए हमें देखना चाहिए कि हमने इस इजतिमा के मौक़े पर शुक्र गुज़ारी का हक़ कहाँ तक अदा किया है।

मैंने प्रोग्राम के शुरू में की जानेवाली अपनी तक़रीर में इजतिमा के मक़ासिद को बयान करते हुए यह कहा था कि इस इजतिमा के तीन अहम मक़ासिद हैं। एक यह कि हम एक-दूसरे से परिचित हों, एक दूसरे के क़रीब आएँ और एक-दूसरे के हालात से वाक़िफ़ हों। ज़ाहिर है जो काम हम करना चाहते हैं, उसे इसके बिना कर ही नहीं सकते कि हम आपस में एक-दूसरे से जुड़े रहें, हम में आपसी मुहब्बत और एकता हो और हम एक-दूसरे के साथ ज़्यादा तआवुन करें। दूसरा मक़सद यह है कि हम अपने कामों का जाइज़ा लें और देखें कि हमें क्या कुछ करना चाहिए था और हमने क्या कुछ किया है और जो कुछ नहीं किया है क्यों नहीं किया है और फिर जो रुकावटें और वजहें हमारे सामने आएँ उन्हें दूर करने के उपाय सोचें। तीसरा मक़सद जो इन दोनों का निचोड़ है यह है कि अपनी दावत से आनेवालों को ज़्यादा-से-ज़्यादा वाक़िफ़ कराने की कोशिश करें और इसके लिए किसी मौक़े को हाथ से जाने न दें।

अब आप अपने काम का जाइज़ा लेकर अन्दाज़ा लगाएँ कि अल्लाह तआला ने अपनी मेहरबानी से जो मौक़ा दिया था उससे आपने कहाँ तक

फ़ायदा उठाया है और इजतिमा के उन मक़ासिद को कहाँ तक पूरा किया। अगर आपने इस मौक़े से पूरा-पूरा फ़ायदा उठाया है तो यह ख़ुशी की बात है, वरना इसके सिवा और क्या कहा जा सकता है कि आपने अल्लाह के फ़ज़्ल की ठीक से क़द्र नहीं की और इस इजतिमा के लिए तरह-तरह की तकलीफ़ें उठाकर आपका आना बहुत हद तक आपके लिए नुक़सानदेह साबित हुआ है। अपने बारे में सही फ़ैसला तो आप ही कर सकते हैं। लेकिन जहाँ तक मेरा अन्दाज़ा है, मैं समझता हूँ कि आप में से बहुत से लोगों ने इस मौक़े से पूरा फ़ायदा उठाने की कोशिश की है और अपना क़ीमती वक़्त ऊपर बयान किए गए मक़ासिद ही में लगाया है, लेकिन इसके साथ मुझे अफ़सोस के साथ कहना पड़ता है कि बहुतों ने इस मौक़े से पूरा फ़ायदा नहीं उठाया। मिसाल के तौर पर आप पहले ही मक़सद को लीजिए। यह इजतिमा काफ़ी दिनों के बाद आयोजित हुआ था और यह ख़ुदा ही बेहतर जानता है कि इसके बाद हमें कब इस तरह का कोई मौक़ा मिल सकता है क्योंकि आइन्दा इजतिमा का दारोमदार बहरहाल हालात ठीक होने और जमाअती मसलिहतों पर है। ऐसे हालात में इस मौक़े को बहुत ग़नीमत समझना चाहिए था और अपने वक़्त का एक-एक पल किसी-न-किसी फ़ायदेमन्द काम में लगाना चाहिए था, लेकिन मैं समझता हूँ कि बहुतों ने फ़ुर्सत के लम्हों को एक दूसरे से मिलने और दावत व तहरीक के सिलसिले में बातचीत करने और एक दूसरे के ख़यालात जानने के बजाय बेकार के कामों में गँवा दिया। यह ठीक है कि इजतिमा की थका देनेवाली मसरूफ़ियतें एक बड़ी रुकावट थीं, फिर भी उनको बहुत ज़्यादा अहमियत नहीं दी जा सकती। अगर वक़्त की पूरी क़द्र पहचानी जाती तो आपस में परिचय और मुलाक़ातों के लिए बहरहाल कुछ-न-कुछ फ़ुर्सत मिल सकती थी और कुछ इसी तरह की बातें इजतिमा के दूसरे दो मक़ासिद के बारे में भी कही जा सकती हैं। बहरहाल इस पहलू से अपना जाइज़ा लीजिए और जिस हद तक मुमकिन हो अपनी कमियों और लापरवाहियों पर क़ाबू पाने के बारे में सोचिए। अगर आप इन्हें दूर करने के लिए तैयार हों तो उसकी राहें अब भी बन्द नहीं हैं। यह ज़रूर है कि अब आइन्दा (आगामी) सालाना इजतिमा से

पहले मुलाक़ात और परिचय का इतना बेहतर मौक़ा आपको नहीं मिल सकता, जिसमें भारत के तक़रीबन हर हिस्से के रुफ़क़ा (सदस्य) एक जगह इकट्ठे हो गए थे। लेकिन छोटे पैमाने पर इसकी भरपाई भी किसी हद तक मुमकिन है, क्योंकि हल्क़ावार और ज़िला स्तर के इजतिमाआत होते रहेंगे और उनसे परिचय और मुलाक़ात का थोड़ा बहुत फ़ायदा हासिल किया जा सकेगा और जहाँ तक दूसरे दो मक़ासिद का ताल्लुक़ है, ख़ास तौर से तीसरे मक़सद का, उनके लिए मौक़े तो हर वक़्त और हर जगह मिल सकते हैं। इसलिए अगर यहाँ आप उनके सिलसिले में कुछ नहीं कर सके हैं तो मैं इसे भी ग़नीमत समझूँगा कि आप अपनी कमी और लापरवाही का यह एहसास लेकर यहाँ से जाएँ और यहाँ से जाने के बाद उनकी भरपाई करने के मौक़े तलाश करें और पूरी सरगर्मी और लगन के साथ उनसे फ़ायदा उठाने में लग जाएँ।

यह एक मौक़ा तो बहरहाल आपके सामने खुला हुआ है कि इजतिमा में शरीक होनेवालों में बहुत से ऐसे लोग भी होंगे जो इस शिरकत के बाद भी दावत व तहरीक के बारे में तरह-तरह की ग़लतफ़हमियों का शिकार होंगे। कुछ ऐसे लोग भी होंगे जिनका इजतिमा में शिरकत के बाद तहरीक व दावत के बारे में कुछ थोड़ा सा असर पड़ा होगा। ऐसे लोग इस क़ाबिल हैं कि आप यहाँ से जाने के बाद ऐसे लोगों से ख़ास तौर से सम्पर्क बनाएँ और उनकी ग़लतफ़हमियाँ दूर करने और उनपर पड़नेवाले असर को और गहरा करने की कोशिश करें। यह आपके काम के लिए बहुत बड़ा मैदान है, लेकिन अगर आप तलाश करेंगे तो इसके सिवा और भी बहुत से मैदान मिल सकते हैं। जिनमें लगकर आप अपनी कमी और लापरवाही की बहुत कुछ भरपाई कर सकते हैं। लेकिन इसके लिए दिल की लगन और अपनी ग़लती के एहसास का होना ज़रूरी है। अगर ऐसा नहीं है तो बेहतर-से-बेहतर मौक़े भी आपके लिए बेकार हैं और अगर ये किसी हद तक मौजूद हैं तो ये अपने काम करने के बहुत से मौक़े खुद ही पैदा कर सकते हैं। इस लगन और एहसास के पैदा करने का तरीक़ा सिर्फ़ एक है कि आप अपने रब के साथ ज़्यादा-से-ज़्यादा लगाव पैदा करें। जब तक यह लगाव पैदा नहीं होगा उस वक़्त तक काम के

साथ भी लगाव पैदा नहीं होगा। इस मक़सद के लिए सबसे ज़्यादा फ़ायदेमन्द चीज़ अल्लाह का कलाम (क़ुरआन) है। जो रुफ़क़ा क़ुरआन को समझने के लिए अरबी ज़बान सीख सकते हों उनको इस तरफ़ पूरा ध्यान देना चाहिए और जिनके पास इसका मौक़ा नहीं है वे तर्जमे की मदद से क़ुरआन को समझकर पढ़ने की ज़रूर कोशिश करते रहें।

दूसरी अहम चीज़ नमाज़ है। यही हक़ीक़त में अल्लाह की याद है। इसको ठीक-ठीक अदा करने की तरफ़ ज़्यादा से ज़्यादा ध्यान दीजिए और इसके ज़रिए अपना मुहासबा (आत्मनिरीक्षण) करते रहिए। इस तरह आपको दीन से और दीन के लिए की जानेवाली कोशिशों से लगाव होगा। इस सिलसिले की तीसरी ज़रूरी चीज़ ज़िक्र (अल्लाह की याद) है। ग़फ़लत से बचने के लिए आपको हर वक़्त ज़िक्र में लगा रहना चाहिए। ज़िक्र से मेरी मुराद सिर्फ़ ज़बानी ज़िक्र नहीं है बल्कि यह है कि आप हर वक़्त अल्लाह को याद रखें और हर काम अल्लाह को राज़ी करने के लिए करें। इस तरह आपका हर काम 'ज़िक्र' होगा और ग़फ़लत आपके अन्दर जगह न बना सकेगी। बहरहाल 'ताल्लुक़ बिल्लाह' (अल्लाह से ताल्लुक़ बनाए रखना) हमारे काम की अस्ल बुनियाद है। अगर, ख़ुदा न करे, उसमें कमी रही तो यह काम अंजाम नहीं दिया जा सकता और 'ताल्लुक़ बिल्लाह' की इस मौक़े पर तो ख़ास तौर से ज़रूरत है, क्योंकि यह बिलकुल क़ुदरती बात है कि इजतिमा के बाद लोगों का ध्यान आपकी तरफ़ लगा रहेगा और बहुत से लोग आपकी टोह में पड़ जाएँगे। कुछ लोग आपकी तरफ़ से बदगुमान होंगे और हो सकता है कि उन बदगुमानियों के नतीजे में आपके सामने तरह-तरह की आज़माइशें आएँ और यह उस वक़्त तक होता रहेगा, जब तक कि आप और आपकी दावत से पूरे मुल्क के लोग वाक़िफ़ न हो जाएँ। इन मुश्किल हालात में 'ताल्लुक़ बिल्लाह' के बग़ैर आप उन आज़माइशों से निकलने में किसी तरह कामयाब नहीं हो सकते।

ताल्लुक़ बिल्लाह के बाद दूसरी ज़रूरी चीज़ सब्र है।

दीन का काम हर ज़माने में मुश्किल रहा है, लेकिन मौजूदा हालात में

इसको करना तो पहले से भी ज़्यादा मुश्किल है। जो लोग हमारे साथ इस काम को पूरा करने में लगे हैं, वे अपने इरादे को कुछ ज़्यादा मज़बूत और पक्का कर लें और पूरी तरह तैयार हो जाएँ। जो भी मुसीबत आप पर पड़े उसको बर्दाश्त करने में ज़्यादा-से-ज़्यादा हिम्मत से काम लें और याद रखिए, यह बात अल्लाह के साथ लगाव के ज़रिए ही पैदा हो सकती है।

तीसरी बात जिसकी तरफ़ मैं आपको तवज्जोह दिलाना चाहता हूँ वह यह है कि अपनी मज़बूती के साथ-साथ यह ज़रूरी है कि आप यह कोशिश भी करें कि आपके साथियों में निरन्तर काम करने की लगन और उसके प्रति जमाव पैदा हो। हम जिस काम को कर रहे हैं उसके लिए मज़बूत इजतिमाइयत की ज़रूरत है और यह इजतिमाइयत दूसरों का भला चाहने और भला करने के बग़ैर पैदा नहीं हो सकती। अगर आप अपने दूसरे रुफ़क़ा के काम में उनकी मदद न करेंगे और उनकी मुश्किलों में उनका हाथ न बँटाएँगे तो इस इजतिमाइयत का क़ायम रखना मुश्किल हो जाएगा। अपने साथियों की मज़बूती और उन्हें ताक़त पहुँचाने का ज़रिआ बनिए। अपने आपको उनका मददगार बनाइए, ख़ुसूसन इस वजह से भी कि जो हालात सामने आनेवाले हैं उनमें से बहादुरी के साथ गुज़र जाना सिवाय इस ताल्लुक़ के मुमकिन ही नहीं है। तहरीक से अब लोग नावाक़िफ़ और अनजान नहीं रहे हैं लोग इससे वाक़िफ़ हो रहे हैं। अलबत्ता उनके ज़ेहनों में इसके बारे में शक व शुब्हे पैदा हो रहे हैं। ऐसे दौर में आपसी मेलजोल और एक दूसरे की मदद के अलावा सलामते-फ़िक्र (वैचारिक परिपक्वता) और इस्तिक़ामत (दृढ़ता) की भी ज़रूरत है। अपनी फ़िक्र की भी इस्लाह कीजिए। मैं महसूस करता हूँ कि इस दौर के लिए जिस पुख़्तगी-ए-फ़िक्र (वैचारिक परिपक्वता) और फ़िक्री जमाव की ज़रूरत है, वह अभी उस हद तक मौजूद नहीं है जितनी होनी चाहिए। कितनी ही ग़लत बातें हैं जो ग़ैर-शऊरी तौर पर दिमाग़ में बैठी हुई हैं। इसलिए ज़रूरी है कि आप अपने-अपने विचारों और ख़यालात का जाइज़ा लेते रहें और जो ख़याल भी दीन और दीनी जिद्दोजुहद के मुताबिक़ न हो उसे ज़ेहन से निकाल फेंकिए, फिर जो कुछ सोचिए ख़ालिस दीनी लाइनों पर अल्लाह को राज़ी करने के लिए और

आख़िरत की कामयाबी के लिए सोचिए। जो ग़लत बातें ज़ेहन में घुस आई हैं या सही बातों के साथ मिलजुल गई हैं, ज़ेहनी यकसूई (मानसिक एकाग्रता) और पुख़्तगी के लिए उनको छाँटकर अलग करके फेंक देना ज़रूरी है। अगर यह न होगा तो वे फल भी हमें हासिल न होंगे जिनकी हम तमन्ना रखते हैं।

फ़िक्र को ठीक करने के साथ यह भी ज़रूरी है कि हमारा अमल भी हमारे ख़यालात के मुताबिक़ हो। पहली चीज़ के मुक़ाबले में इस बात की साफ़ तौर पर कमी महसूस होती है। सही ख़यालात को सही अमल के साँचे में ढालने की कोशिश करते जाइए। मतलब यह कि दावत का जो अस्ल मिज़ाज है, अमलन आप उसके रंग में रंग जाएँ। सही फ़िक्र के तक़ाज़े पूरी तरह समझकर उन्हें अदा करने की जिद्दोजुहद कीजिए, जिनकी तरफ़ मैंने अपनी रात की तक़रीर में हल्के से इशारे भी किए हैं।

मैं रुफ़क़ा को इस तरफ़ भी ध्यान दिलाना चाहता हूँ कि आप यह न समझें कि इजतिमा के बाद आपका काम एक मंज़िल पर पहुँचकर ख़त्म हो गया है। काम तो दर अस्ल अब शुरू हुआ है। इस इजतिमा में बहुत से नए लोग शिरकत के लिए आए हैं। इस तरह अल्लाह की मेहरबानी से आपके लिए जान-पहचान बढ़ाने का एक नया हल्क़ा पैदा हो रहा है। इस हल्क़े से आपको ज़्यादा-से-ज़्यादा ताल्लुक़ात क़ायम करने चाहिएँ, वरना हो सकता है कि वक़्ती तास्सुरात (क्षणिक प्रभाव) बाक़ी न रहें। क्योंकि जो तास्सुर इब्तिदाई दरजे में होता है वह ज़्यादा देर तक क़ायम नहीं रहता। इस तास्सुर का आगे बढ़ाने और पक्का कराने का यही मौक़ा है और यह उस वक़्त हो सकेगा जबकि आप यह समझें कि इस इजतिमा के बाद दर अस्ल आपका अस्ल काम शुरू हो रहा है। अगर आगे न किया गया तो इस इजतिमा पर जो वक़्त और माल ख़र्च किया गया है, उसका कोई ख़ास फ़ायदा न होगा। इस मामले का दूसरा रुख़ भी है और वह यह कि अगर इस इजतिमा के बाद इसी पैमाने पर काम न किया गया तो तरह-तरह की बदगुमानियाँ पैदा होंगी और फैलेंगी जो आगे एक तरफ़ आपकी दावत (पैग़ाम) के फैलाव में रुकावट

बनेंगी, दूसरी तरफ़ उनकी वजह से आप खुद भी मुख़्तलिफ़ ख़तरों का शिकार हो सकते हैं। ख़तरों से मेरी मुराद आम ख़तरे हैं वरना दीनी जिद्दोजुहद के रास्ते में जो ख़तरे भी सामने आएँ, उनको ख़तरे कहना ही सही नहीं है, वे तो हमारे लिए आख़िरत में मिलनेवाले अज्र और फ़लाह का ज़रिआ हैं। बहरहाल अपनी दावत को सरगर्मी के साथ ज़्यादा-से-ज़्यादा फैलाने की कोशिश करें। हमारे लिए अस्ल ख़तरा यही है कि लोग अभी तक हमारी दावत (पैग़ाम) से वाक़िफ़ नहीं हो सके हैं। इसी के साथ हालात को देखते हुए आप लोग अपनी ज़बान और अपने अमल में ज़्यादा-से-ज़्यादा एहतियात बरतने की कोशिश करें और अपना पूरा एहतिसाब (आत्म-मंथन) करते रहें। आपकी एक छोटी सी ग़लती एक बड़े फ़ित्ने की वजह बन सकती है। ये बातें खुसूसियत के साथ मैं अपने जमाअत के साथियों को मुख़ातब करके कह रहा हूँ, लेकिन ये बातें उन लोगों के लिए भी हैं जो जमाअत के कामों से हमदर्दी का ताल्लुक़ रखते हैं। हो सकता है ये लोग अपनी निश्चित नीति पर इस लिहाज़ से मुत्मइन हों कि वे जमाअत से बाक़ायदा ताल्लुक़ नहीं रखते, लेकिन मैं यह बताना चाहता हूँ कि आम लोगों की निगाह में वे हमसे अलग नहीं समझे जा सकते। इसलिए वे जो कुछ बोलते या करते हैं उसकी ज़िम्मेदारी जमाअत के सिर डाल दी जाती है। लिहाज़ा अगर उनको जमाअत और उसके कामों से लगाव है तो उनको भी अपनी ज़बान और अमल में ज़्यादा-से-ज़्यादा एहतियात बरतने की ज़रूरत है। यह ज़ाहिर बात है कि हमदर्दों को अपने रवैये के बारे में फ़ैसला करने का पूरा-पूरा इख़्तियार है, लेकिन मैं यह समझ नहीं पा रहा हूँ कि अगर वे समझते हैं कि जमाअते-इस्लामी जो काम कर रही है, करने का काम वही है और इसके लिए तरीक़ा भी वही मुनासिब है जो जमाअत ने अपनाया है तो ऐसी हालत में उनका सिर्फ़ हमदर्द बनकर रहना और जमाअत से बाक़ायदा ताल्लुक़ क़ायम न करना कहाँ तक दुरुस्त है और यह पॉलिसी अपना कर वे अल्लाह के नज़दीक और इनसानों के नज़दीक कहाँ तक अपनी ज़िम्मेदारियों को पूरा करनेवाले साबित हो सकते हैं, इस मौक़े पर मैं इससे ज़्यादा और कुछ कहना नहीं चाहता।

अरकान (सदस्यों) और हमदर्दों के बाद मैं कुछ बातें उन हज़रात से भी कहना चाहता हूँ जो इसलिए यहाँ आए हैं कि हमें और हमारे कामों को क़रीब से देखें। ऐसे लोगों के आने से बड़ी ख़ुशी हुई है। आम तौर से मुसलमानों में हक़ की तलाश का जज़्बा कुछ मुर्दा सा होकर रह गया है। बहुत कम लोग ऐसे हैं जो बहुत मामूली और तुच्छ फ़ायदों को छोड़कर ऊँचे और ब़ड़े मक़ासिद की तरफ़ ध्यान देते हों। यह सूरते-हाल बहुत ही तशवीशनाक (चिन्ताजनक) है और इसको देख-देखकर तो कभी-कभी मुझ पर मायूसी छाने लगती है। ऐसे हालात में आप जैसे लोगों का इजितमा में शिरकत के लिए आना और हमारी खुश्क और नीरस बातों को ध्यान से सुनना भी बहुत बड़ी बात मालूम होती है। हमने अपनी हद तक यही कोशिश की है कि उनको उनकी जाँच-पड़ताल में पूरी मदद पहुँचाएँ लेकिन मैं नहीं कह सकता कि हम इसमें कहाँ तक कामयाब हुए हैं। यक़ीनन इस सिलसिले में हमसे कोताहियाँ भी हुई होंगी, क्योंकि उम्मीद के ख़िलाफ़ बातों के पेश आने की वजह से हम अपनी दावत के तमाम पहलू पूरी वज़ाहत (स्पष्टता) के साथ पेश नहीं कर सके हैं। लेकिन इन हालात में हमसे जो कुछ भी हो सकता था उसे करने में कोई कोताही नहीं की। अब यह अल्लाह की मेहरबानी और आपकी तवज्जोह और दिलचस्पी पर निर्भर है कि नतीजों के लिहाज़ से हमारी यह कोशिश कहाँ तक कामयाब साबित हो सकी है और मैं इस बात की तरफ़ भी इशारा करना चाहता हूँ कि सच्चाई का पता लगाने के लिए हमारी कोशिशों के अलावा हक़ तक पहुँचने के लिए आपकी आमादगी और अपनी ज़िम्मेदारी को महसूस करने की भी बड़ी ज़रूरत है, बल्कि अगर ये न हों तो हमारी सारी कोशिशें बेकार हैं और अगर ये हों तो हमारी मामूली कोशिश भी कामयाब हो सकती है और दूसरे ज़राए जैसे लिट्रेचर और रुफ़क़ा से मुलाक़ात वग़ैरा के ज़रिए फ़ायदा उठाया जा सकता है। मैं तो यह उम्मीद करता हूँ कि आपने जो कुछ यहाँ देखा और सुना होगा उसपर गम्भीरता से ग़ौर करेंगे और अपनी ज़िम्मेदारियों को पूरा करने की कोशिश करेंगे। दावते-हक़ को समझने में अकसर काम करनेवालों की अपनी कमज़ोरियाँ भी बड़ी रुकावट बन जाती हैं। हमारे अरकान में भी बेशक बहुत सी कमज़ोरियाँ और कमियाँ हैं जिनका हमें खुद एहसास है और

हम उनके सुधार पर ध्यान भी दे रहे हैं लेकिन इस इजतिमा में अरकान के साथ बहुत से ऐसे लोग भी शरीक हैं जो जमाअत के बाक़ायदा रुक्न नहीं, बल्कि वे हमदर्द या मुतास्सिर या सिर्फ़ जमाअत को जाननेवाले की हैसियत रखते हैं। ज़ाहिर है कि ऐसे लोग किसी तरह भी हमारे काम के जाँचने का पैमाना नहीं हो सकते। लिहाज़ा आप हमारी कमियों को अनदेखा करके हमारी दावत को समझने की कोशिश करें। हम और हमारे रुफ़क़ा अपनी कमज़ोरियों में आपकी दुआओं के हक़दार तो ज़रूर हैं, लेकिन हमारी कमज़ोरियाँ और कोताहियाँ ख़ुद आपके लिए इस काम से अलग रहने की दलील नहीं बन सकतीं, जिसको आप अपनी जाँच-पड़ताल के आधार पर सही समझ रहे हों। ख़ुदा के पास हर शख़्स अपना ज़िम्मेदार ख़ुद है। किसी एक की ग़लती दूसरे की ग़लती के लिए दलील (बहाना) नहीं बन सकती। मैं इस मौक़े पर ख़ास तौर से उन ग़ैर-मुस्लिम भाइयों का शुक्रिया अदा करना चाहता हूँ जो सिर्फ़ हमारे काम को देखने के लिए हमारे इजतिमा में शरीक हुए हैं। ख़ास तौर से उन लोगों का जो बाहर से सिर्फ़ इसी मक़सद से आए हैं और शुरु से अब तक बराबर हमारे इजतिमाआत में शरीक होते रहे हैं। माना कि उनकी तादाद बहुत थोड़ी है और यह शायद उस बदगुमानी और नफ़रत का नतीजा है जो अभी तक हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच पाई जाती है और जिसकी ज़िम्मेदारी ग़ैर-मुस्लिमों से ज़्यादा मुसलमानों के लीडरों और नुमायाँ व मशहूर शख़्सियतों पर आती है, जिनके ग़लत रवैये ने इस देश के रहनेवालों पर हक़ के दरवाज़े को बन्द कर दिया है और अब इस दरवाज़े को खोलने में बड़ी मुश्किलों का सामना करना पड़ रहा है। हालाँकि इस मुल्क में ऐसे लोग बड़ी तादाद में मौजूद हैं जो अपने अन्दर हक़ को क़बूल करने की सलाहियत रखते हैं, लेकिन वे जिस तादाद में भी शरीक हुए हैं, मेरे लिए उनका आना बेहद ख़ुशी की बात है, क्योंकि यह इस बात की निशानी है कि उनमें हक़ को क़बूल करने की सलाहियत मौजूद है और अगर हम उनके सामने सही तरीक़े से अपना पैग़ाम रखेंगे तो वे उसपर ग़ौर कर सकेंगे। मैं उन हज़रात से गुज़ारिश करूँगा कि आप मुसलमानों के रवैये से मुतास्सिर होकर हमारी दावत के बारे में कोई राय क़ायम न करें, बल्कि खुले दिलो-दिमाग़ से काम लेते हुए, आप मुसलमानों के रवैये को दर किनार करके, हमारी बात

समझने की कोशिश करें। अल्लाह ने चाहा तो आप इसे अपने लिए और अपने मुल्क के लिए फ़ायदेमन्द पाएँगे।

अब मैं कुछ बातें इजतिमा के सिलसिले में भी कहना चाहता हूँ। यह तो सभी जानते हैं कि इजतिमा की तैयारियों के लिए हमें वक़्त बहुत थोड़ा मिला था और कुछ उलझन पैदा करनेवाले हालात भी आख़िर वक़्त तक लगे रहे। इसलिए क़ुदरती बात है कि मरज़ी के मुताबिक़ इन्तिज़ामात करने में हम कामयाब नहीं हो सके और नज़्म, वक़ार (गौरव) और शाइस्तगी के लिहाज़ से हमारे इजतिमाआत की अब तक जो ख़ुसूसियत रही है, वह पूरी तरह बाक़ी नहीं रह सकती, फिर भी हो सकता है कि हालात की मजबूरियों के अलावा किसी हद तक इसमें हमारे रुफ़क़ा की लापरवाही और सुस्ती का हाथ रहा हो और समझा जाता है कि ऐसा भी है, क्योंकि यह कुल हिन्द इजतिमा एक लम्बे अरसे के बाद मुनअक़िद (आयोजित) हुआ था और हमारे रुफ़क़ा इस सिलसिले की बहुत सी बातों को शायद याद न रख सके थे। बहरहाल हमारे रुफ़क़ा को इस तजरिबे से पूरा-पूरा फ़ायदा उठाना चाहिए। मैं अल्लाह तआला से दुआ करता हूँ कि वह हमारी कमियों और कोताहियों को नज़र अन्दाज़ करे और हमें उन्हें सुधारने और उनकी भरपाई का मौक़ा दे।

व आख़िरू दावाना अनिल-हम्दु लिल्लाहि रब्बिल-आलमीन। "आख़िर में हम सारे जहानों के रब अल्लाह की हम्द करते हैं।"

इसके बाद दुआ पर, जिसपर तमाम हाज़िरीन ने दिल की गहराई से 'आमीन' कही, बाक़ायदा इजतिमा के ख़त्म करने का एलान किया गया। इजतिमा ख़त्म होने पर कई लोगों ने इस ख़ाहिश का इज़हार किया कि बहुत से लोग अमीरे-जमाअत से मिलना और बातचीत करना चाहते हैं, लेकिन इजतिमा की मसरूफ़ियतों में इसका मौक़ा नहीं मिल सका है, इसलिए अगर लोगों को कम-से-कम 'मुसाफ़हा' (हाथ मिलाने) का मौक़ा दिया जाए तो ज़्यादा मुनासिब होगा। अमीरे-जमाअत ने इसके जवाब में कहा कि मुझे बाहर से आनेवाले रुफ़क़ा से मिलने की ख़ुद ख़ाहिश है और सिर्फ़ 'मुसाफ़हा' से यह ख़ाहिश पूरी नहीं हो सकती। इसलिए मैं मौक़ा निकालकर

लोगों से क़ियामगाहों पर थोड़ी-थोड़ी देर के लिए जाकर ख़ुद मुलाक़ात करूँगा और वैसे भी जो लोग इजतिमा के बाद ठहरेंगे, उनसे इत्मीनान से मुलाक़ात हो सकती है। चुनाँचे अमीरे-जमाअत ने कई एक क़ियामगाहों पर जाकर मुलाक़ातें कीं।

इसके बाद अरकान का एक ख़ुसूसी इजतिमा हुआ जिसकी मुख़्तसर रूदाद नीचे दी जा रही है।

अरकान का इजतिमा

इस इजतिमा में पहले अमीर जमाअते-इस्लामी हिन्द ने एक मुख़्तसर तक़रीर की, जिसमें आपने बताया कि जमाअते-इस्लामी हिन्द की तश्कीले-जदीद (पुनर्गठन) किन हालात में हुई और किन मजबूरियों के तहत रुफ़क़ा के इसरार पर आपने इमारत (अमीर बनने) की ज़िम्मेदारी को संभाला था और किस तरह आपने इस ज़िम्मेदारी को पूरा करने की कोशिश की। इसके बाद उन्होंने भरे हुए गले से अरकान को मुख़ातब करते हुए कहा कि तश्कीले-जदीद के बाद यह अरकान का पहला आम इजतिमा है। इसलिए मैं अपने रुफ़क़ा से दरख़ास्त करता हूँ कि वे अपने फ़ैसले पर एक बार फिर ग़ौर कर लें और यह भारी और मुश्किल ज़िम्मेदारी किसी और को सौंप दें। उन्होंने फ़रमाया कि मैं इस अज़ीमुश्शान मक़सद की ख़िदमत से जी चुराना नहीं चाहता और अल्लाह ने चाहा तो जब तक ज़िन्दा रहूँगा, इसके लिए तन, मन, धन से लगा रहूँगा। लेकिन जो ज़िम्मेदारी आपने मेरे सुपुर्द की है वह बहुत नाज़ुक है और मैं अपने अन्दर वे सलाहियतें नहीं पाता जो इस ज़िम्मेदारी को अच्छी तरह पूरी करने के लिए ज़रूरी हैं। इसलिए अपने में से किसी ज़्यादा क़ाबिल शख़्स को चुनकर मुझे इस बोझ से आज़ाद करें। अमीरे-जमाअत की इस दिल भर आनेवाली मुतास्सिर तक़रीर के बाद, मुख़्तलिफ़ हल्क़ों के ज़िम्मेदारों और कई दूसरे रुफ़क़ा ने अपने दिली तास्सुरात का इज़हार किया। उन्होंने बताया कि वे अमीरे-जमाअत पर पूरा भरोसा करते हैं और उनकी रहनुमाई पर मुत्मइन हैं। उन्होंने इस बात पर ज़ोर दिया कि अमीरे-जमाअत ही इस नाज़ुक ज़िम्मेदारी को उठाएँ, क्योंकि इस

मनसब (पद) के लिए जमाअत के अन्दर उनसे ज़्यादा क़ाबिल कोई दूसरा मौजूद नहीं है। तमाम अरकान की तरफ़ से इस बात पर ज़ोर देने पर अमीरे-जमाअत ने इस ज़िम्मेदारी को फिर क़बूल किया और रुफ़क़ा के एतमाद पर अल्लाह का शुक्र अदा किया। इसके बाद उन्होंने इस नाज़ुक ज़िम्मेदारी को पूरा करने के सिलसिले में पूरा सहयोग देने और दिल से दुआ करने की दरख़ास्त की और अल्लाह के भरोसे पर दीन के लिए लगातार जिद्दोजुहद करते रहने का नेक और पक्का इरादा ज़ाहिर किया। इसके बाद फिर कई रुफ़क़ा ने दावत व तहरीक के सिलसिले में कुछ सवालात किए जिनके जवाब के बाद यह इजतिमा दुआ पर ख़त्म हो गया।

इस्लामिक स्टडी सर्किल के इजतिमाआत की रूदाद

इस सिलसिले में मुख़्तलिफ़ वक़्तों में तीन निशस्तें हुईं, जिनकी मुख़्तसर रूदाद नीचे दी जा रही है :

20, अप्रैल 1951 ई०

व्यक्तिगत मुलाक़ातों में तरह-तरह के मसाइल पर चर्चा चलती रही और 20, अप्रैल को मग़रिब की नमाज़ के बाद उन तलबा का इजतिमा किया गया जो सामाजिक विषयों में डिग्री क्लासों में तालीम हासिल कर रहे हैं या बी० ए० कर चुके हैं। विज्ञान के कुछ तलबा भी शरीक थे। हैदराबाद, भोपाल, टोंक, जयपुर, लखनऊ, इलाहाबाद, पटना, दरभंगा, भागलपुर और मुज़फ़्फ़रपुर के तलबा मौजूद थे। कुछ मक़ामी तलबा भी थे।

सबसे पहले नजातुल्लाह साहब ने इजतिमा का मक़सद बयान किया। इल्मी काम की अहमियत, ज़ेहनी इन्क़िलाब (वैचारिक क्रान्ति) और अमली काम का ताल्लुक़, उसके लिए तैयारियों की ज़रूरत, निज़ामे-तालीम की कमी, उसके न होने पर फ़िक्री रब्त (वैचारिक संबंध) और एक दूसरे के ख़यालात का एक दूसरे के सामने आते रहना और उसपर टीका-टिप्पणी और मशवरों से फ़ायदा उठाते रहना वग़ैरा, इन बातों पर रौशनी डाली गई। अब तक जो स्टडी सर्किल अर्थशास्त्र का बुलेटिन निकल रहा है, उसके सिलसिले में ये बातें कही गईं –

(1) शुरू में ग़लती से हल्के-फुल्के सामान्य लेख और नज़्में वग़ैरा शामिल कर दी गईं, जिससे वह अपने मक़सद पर न रह सका। लिहाज़ा अब सिर्फ़ बौद्धिक लेख रखे जाएँ न कि दावती।

(2) चूँकि दूसरे सामाजिक ज्ञान के छात्र भी हमारे साथ हैं, इसलिए उनको भी सहूलत पहुँचाने के लिए बुलेटिन में उन विषयों के लेख भी लिए जाएँ।

(3) बुलेटिन का दायरा महदूद हो। तलबा, रुफ़क़ा और पढ़े-लिखे लोगों तक ही पहुँचाया जाए ताकि उनके मशवरे वग़ैरा हासिल किए जा सकें और दूसरे लोगों की दिलचस्पी को देखते हुए दूसरी चीज़ें न रखनी पड़ें।

अज़ीज़ साहब इलाहाबाद ने इन बातों से सहमति जताई। ख़ास तौर से पहले बयान की गई बातों से। अलबत्ता आपने यह ख़याल ज़ाहिर किया कि आप लोगों में अंग्रेज़ी में दावत पहुँचाने और अंग्रेज़ी में तलबा से लेख लिखवाने के लिए एक अंग्रेज़ी अख़बार जारी किया जाए और अंग्रेज़ी साहित्य का एक ग्रुप क़ायम किया जाए।

कुछ देर अंग्रेज़ी अख़बार वग़ैरा के सिलसिले में मूल विषय से हटकर बातचीत होती रही, लेकिन आख़िरकार यह महसूस किया कि स्टडी सर्किल जिसका काम छात्रों में फ़िक्री ताल्लुक़ (वैचारिक संबंध) और अमली ग़ौर व फ़िक्र को आगे बढ़ाना है, अंग्रेज़ी दावती अख़बार या अंग्रेज़ी-वर्ग से अलग एक मामला है और फ़िलहाल इस इजतिमा में सिर्फ़ स्टडी सर्किल के मसले पर बात कर ली जाए। चुनाँचे अब चर्चा इस पर होने लगी कि :

(1) बुलेटिन तमाम सामाजिक विषयों पर आधारित हो या सिर्फ़ अर्थशास्त्र पर?

(2) क्या इल्मी मज़ामीन (ज्ञानपरक लेखों) के अलावा आम लेख भी इसमें शामिल हों?

ज़्यादातर लोगों की राय यह थी कि बुलेटिन में दूसरे सामाजिक विषय भी शामिल हों। ऐसा कहनेवालों के तर्क ये थे -

(1) दूसरे विषयों में ग़ौर-व-फ़िक्र का काम भी काफ़ी अहम है और हम

उनके लिए फ़िलहाल अलग-अलग बुलेटिन नहीं निकाल सकते, न ही उनमें इतने ज़्यादा तलबा हैं कि वे अलग-अलग स्टडी सर्किल क़ायम कर सकें।

(2) कुछ लोगों के इस ख़याल पर कि इससे बुलेटिन के पेज ज़्यादा हो जाएँगे, कहा गया कि तलबा की कमी को देखते हुए इस बात की उम्मीद नहीं की जा सकती कि अर्थशास्त्र के अलावा दूसरे विषयों में हमें ज़्यादा लेख मिल सकेंगे। दूसरे विषयों के तलबा ने इस ख़याल से सहमति जताई।

अज़ीज़ साहब इलाहाबाद, अब्दुल-मुइज़्ज़ साहब 'मंज़र' पटना, नईम साहब जयपुर, नजातुल्लाह साहब, अशफ़ाक़ अहमद साहब और दूसरे लोगों का भी यही ख़याल था।

सईद साहब इलाहाबादी का यह ख़याल था कि यह सिर्फ़ राजनीति और अर्थशास्त्र पर आधारित हो। दो-तीन और लोगों ने भी इससे सहमति जताई।

के॰ बी॰ अब्दुल-हलीम साहब जयपुर का यह ख़याल था कि बुलेटिन हर तरह के अंग्रेज़ी लेखों के लिए खुला रहे।

सैयद साहब इलाहाबादी ने एक अंग्रेज़ी पर्चे के जारी करने पर ज़ोर दिया और साथ ही बुलेटिन के अर्थशास्त्र और दूसरे सामाजिक विषयों पर हावी होने का समर्थन किया।

हामिद अहमद साहब हैदराबादी और अहमद ख़िज़्र साहब लखनवी की राय यह थी कि बुलेटिन विज्ञान के लेखों के लिए भी खुला रहे।

इस इजतिमा की कार्रवाई वक़्त की कमी को देखते हुए यहीं ख़त्म हो गई। इजतिमा में शरीक होनेवालों की तादाद पच्चीस या तीस के क़रीब थी। कुछ निचली क्लासों के तलबा भी थे।

22, अप्रैल 1951 ई0

तीसरे दिन अस्र की नमाज़ के बाद फिर इजतिमा हुआ। तलबा कुछ कम थे। इस इजतिमा ने यह तय किया कि बुलेटिन के सिलसिले में और

स्टडी सर्किल के सिलसिले में लोगों के ख़यालात व तजवीज़ें सामने आ गई हैं। अब एक कमेटी बना दी जाए जो इनकी रौशनी में ज़ेरे-बहस मसले और दूसरे छोटे-छोटे मसलों को तय करे और अमीरे-जमाअत की मंज़ूरी के बाद बाक़ायदा तौर से काम शुरू किया जाए।

कमेटी के लिए आम राय से जिन लोगों का चयन किया गया उनके नाम ये हैं :

(1) मुहम्मद अज़ीज़ साहब, इलाहाबाद (अर्थशास्त्र)

(2) अब्दुल-मुइज़ साहब, पटना (अर्थशास्त्र)

(3) क़ाज़ी अशफ़ाक़ अहमद, रामपुर (राजनीति व इतिहास)

(4) मुहम्मद नजातुल्लाह सिद्दीक़ी (अर्थशास्त्र)

इसी इजतिमा में मालियात के सिलसिले में मुख़्तलिफ़ मक़ामात से अपेक्षित माहाना मदद की एक फ़ेहरिस्त बनाई गई।

23, अप्रैल 1951 ई0

सुबह को कमेटी की एक बैठक शाह ज़ियाउल-हक़ साहब की मौजूदगी में हुई जिसमें नीचे लिखे मामले तय किए गए -

(1) इदारे (संस्था) का नाम बजाए इस्लामिक स्टडी सर्किल होने के इस्लामिक रिसर्च सर्किल रखा जाए ताकि यह हमारे उन स्टडी सर्किल्स से अलग नज़र आए जो हम लिट्रेचर और इस्लाम के अध्ययन और उसपर परिचर्चा के लिए आम तौर पर बनाते हैं।

(2) इसमें तमाम सामाजिक विषयों को शामिल किया जाए।

(3) इसके नाज़िम शाह ज़ियाउल-हक़ साहब रहें। ज़ियाउल-हक़ साहब ने इसके लिए रज़ामन्दी ज़ाहिर की।

(4) बुलेटिन के अर्थशास्त्र के संपादक मुहम्मद अज़ीज़ साहब इलाहाबादी और राजनीति, इतिहास और सामाजिक विषयों के संपादक अशफ़ाक़ अहमद साहब रामपुर होंगे।

(बाद में मुहम्मद अज़ीज़ साहब के शहर से चले जाने की वजह से इस विभाग के संपादक मुहम्मद नजातुल्लाह सिद्दीक़ी साहब बना दिए गए।)

(5) इलाहाबाद से बुलेटिन के प्रकाशन में कई मुश्किलों को देखते हुए तय किया गया कि आगे से बुलेटिन साइक्लोस्टाइल मशीन के ज़रिए मर्कज़ ही से प्रकाशित किया जाए।

(6) मालियात के लिए बुलेटिन की कोई क़ीमत तय न की जाए बल्कि अपनी मरज़ी से जो सहयोग देना चाहे उसे क़बूल कर लिया जाए। इस तरह काम किया जाए।

तय हुआ कि मुहम्मद नजातुल्लाह सिद्दीक़ी इन तमाम बातों को तरतीब से लिखकर अमीरे-जमाअत की ख़िदमत में पेश करेंगे।

चुनाँचे इस रूदाद को अमीरे-जमाअत के सामने पेश किया गया और उन्होंने कमेटी के फ़ैसलों को दुरुस्त ठहराते हुए शाह ज़ियाउल-हक़ साहब को इस हल्क़े का नाज़िम (प्रबन्धक) बना दिया। बाद में उनकी इजाज़त से एक दस्तूर तैयार किया गया जो उनकी मंज़ूरी के बाद इस्लामिक रिसर्च सर्किल बुलेटिन नं० 4, भाग-2 में छप चुका है।

औरतों की ख़ुसूसी निशस्तें

अगरचे इस इजतिमा में शरीक होना ख़वातीन अरकान (महिला सदस्यों) के लिए भी ज़रूरी नहीं था लेकिन फिर भी तहरीके-इस्लामी से दिलचस्पी रखनेवाली औरतों की अच्छी ख़ासी तादाद इजतिमा में शरीक हुई और उन्होंने इजतिमा की आम कार्रवाइयों में शिरकत करने के अलावा अपनी चन्द खास निशस्ते भी की जिनकी रूदाद नीचे लिखी जा रही है :

पहली निशस्त

21, अप्रैल 1951 ई०

पहली निशस्त 21, अप्रैल को 4 ब़जे शाम मुनअक़िद हुई। सबसे पहले मौलाना मुहम्मद ज़करीया साहब क़ुद्दूसी ने औरतों को ख़िताब

फ़रमाया जिसका ज़िक्र पिछले पन्नों में निशस्त की कार्रवाई में आ चुका है। उसके बाद मुहतरमा महमूदुन्निसा साहिबा रुक्न जमाअते-इस्लामी कलकत्ता ने दर्से-क़ुरआन दिया जिसमें सूरा आराफ़ के पहले रुकू का तर्जमा और तफ़सीर बयान की। दर्स के बाद बेगम असरारुल-अली साहिबा (रामपुर) ने 'इजतिमा से मुताल्लिक़ तवज्जोह देने लायक़ बातें' के शीर्षक पर एक तक़रीर की। उन्होंने अपनी तक़रीर में कहा –

"अपने इजतिमा से सही तौर पर फ़ायदा उठाने के लिए हमको इन बातों का ध्यान रखना चाहिए।"

(1) **सलीक़ा मन्दी** - इससे मेरी मुराद यह है कि उठना-बैठना, बातचीत करना, प्रोग्राम के मुख़्तलिफ़ हिस्सों का देखना या सुनना कहने का मतलब यह कि हर काम सही ढंग से और सलीक़े से होना चाहिए।

(2) **ईमानदारी** - इसका मतलब यह है कि हमारे इजतिमाआत के ज़रिए लोगों को यह बात महसूस भी हो और साफ़ तौर पर नज़र भी आए कि एक मुस्लिम समाज में अमानतदारी और दियानतदारी किस तरह क़ायम होती है। यहाँ तक कि अगर किसी शख़्स की कोई चीज़ कहीं पड़ी रह जाए तो या तो उसको उठाकर उस चीज़ के मालिक के पास पहुँचा दी जाए या फिर वहीं पड़ी रहने दी जाए, यहाँ तक कि चीज़ वाला ख़ुद उसको पा ले।

(3) **तनक़ीदी नज़र** - इसका मतलब यह है कि एक बहन को दूसरी बहन के अख़लाक़, बातचीत और अमल में जो ख़ूबियाँ नज़र आएँ उनको अपनाने की कोशिश की जाए और जो बातें क़ाबिले-एतिराज़ और शरीअत के ख़िलाफ़ दिखाई दें तो उनके सुधार के लिए नर्मी और हमदर्दी भरे अन्दाज़ से उनकी इस्लाह की तरफ़ तवज्जोह दिलाई जाए।

(4) **हमदर्दी और भाईचारा** - इसका मतलब यह है कि एक बहन को दूसरी बहन के आराम का ख़याल हो और अगर किसी बहन को किसी तरह की तकलीफ़ का सामना करना पड़ जाए तो दूसरी बहन को भी इसका पूरा एहसास हो और उसको दूर करने के लिए हर मुमकिन कोशिश की जाए। हमको यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि

जहाँ हमदर्दी और भाईचारा मौजूद होगा वहाँ बेगानापन और अजनबीपन का निशान नहीं मिल सकता।

इसके बाद बेगम अकरमुद्दीन साहिबा (इलाहाबाद) ने अपनी एक तक़रीर में इबादत का मतलब समझाया। उन्होंने कहा –

"इस लफ़्ज़ 'इबादत' में परस्तिश, ग़ुलामी और फ़रमाँबरदारी तीनों मतलब शामिल हैं। ख़ुदा की इबादत का मतलब यह है कि इनसान का सिर सिर्फ़ अल्लाह के सामने झुके। अल्लाह ही की ग़ुलामी का पट्टा उसकी गरदन में हो और वह अपनी पूरी ज़िन्दगी में सिर्फ़ अल्लाह तआला ही की इताअत करे। इबादत के इस अर्थ को निगाह में रखकर हम अपनी ज़िन्दगियों का जाइज़ा लें तो मालूम होगा कि हमने ख़ुदा के अलावा और बहुत सी ज़िन्दा और मुर्दा हस्तियों को अपना माबूद बना रखा है और अल्लाह तआला से हमारा ताल्लुक़ अगर कुछ है भी तो सिर्फ़ रोज़ा-नमाज़ की हद तक रह गया है और वह भी उनकी ज़ाहिरी शक्ल तक। वरना रूह तो इन इबादतों में भी नहीं रह गई है। अगर हम दुनिया में एक मुसलमान की हैसियत से ज़िन्दा रहने और इसी हैसियत से अल्लाह के सामने हाज़िर होने की ख़्वाहिश रखते हैं तो हमें अपनी इन्फ़िरादी और इजतिमाई पूरी ज़िन्दगी अल्लाह तआला की इताअत में गुज़ारनी चाहिए।"

दूसरी निशस्त

22, अप्रैल 1951 ई॰- 8:00 बजे से 11 बजे तक

सबसे पहले मुहतरमा महमूदुन्निसा साहिबा ने सूरा अनआम के आख़िरी रुकू का दर्स दिया। उसके बाद औरतों ने अपने-अपने मक़ाम की औरतों की दावती सरगर्मियों की रिपोर्टें पेश कीं। उसके बाद बेगम आबिदी साहिबा (दिल्ली) ने एक तक़रीर की जिसका ख़ुलासा नीचे दिया जा रहा है -

हम्द व सलात के बाद-

"मुहतरम बहनो! इस्लाम, जैसा कि आपको मालूम है, एक दीन है। ज़िन्दगी का मुकम्मल निज़ाम। वह इनसान की पूरी ज़िन्दगी के लिए वाज़ेह

हिदायतें देता है कि उसको क्या करना है और क्या नहीं करना है। खाना-पीना, बैठना-उठना, मामलात व ताल्लुक़ात, कहने का मतलब यह कि ज़िन्दगी के हर छोटे-से-छोटे और बड़े-से-बड़े मामले के लिए उसने इनसान की पूरी रहनुमाई की है और उसी की रहनुमाई को इख़्तियार कर लेने से इनसान की ज़िन्दगी सुथरी और पाकीज़ा बन सकती है और वह अपनी गुत्थियों को उसी की रहनुमाई में सुलझा सकता है। मगर यह सब कुछ उसी हालत में मुमकिन है जबकि एक तरफ़ उसको इस्लाम की सही जानकारी भी हो और उसके हक़ पर होने का यक़ीन भी, मगर अफ़सोस की बात यह है कि आज हम मुसलमानों की हालत बेहद ख़राब है। हमें इस्लाम से दिलचस्पी और अक़ीदत तो ज़रूर है मगर दीन के तक़ाज़ों का सही शऊर (समझ) नहीं। इसलिए सबसे बड़ी ज़रूरत इस बात की है कि मुसलमान मर्दों की तरह मुसलमान औरतों में भी दीन को समझने का सही एहसास हो और वे महसूस करें कि उनको अपने दीन की ज़िम्मेदारी अपने मर्दों पर डालने केबजाए खुद समझनी और निभानी चाहिए। इसी के साथ हमें अपनी दीनी तालीम, अमली ज़िन्दगी की इस्लाह, बच्चों की परवरिश और तरबियत और घरेलू कामों के करने की तरफ़ भी पूरा ध्यान देने की ज़रूरत है और सबसे बढ़कर जिस बात को निगाह में रखना चाहिए वह यह है कि मर्द और औरत दोनों के सहयोग से ही सही समाज बन सकता है। यह काम न अकेले मर्द के बस का है, न अकेली औरत के बस का।"

तीसरी निशस्त (3 बजे से 5 बजे तक)

इस निशस्त (बैठक) में सबसे पहले बिन्ते-चौधरी रफ़ीउद्दीन साहिबा (रामपुर) ने एक तक़रीर की। उन्होंने अपनी तक़रीर में इस्लामी अख़लाक़ियात को बयान किया और औरतों को तवज्जोह दिलाई कि वे अपने अन्दर सही तरह के अख़लाक़ की परवरिश करने की कोशिश करें। उन्होंने औरतों को सहाबियात (रज़ि0) और दूसरी मुस्लिम औरतों की ज़िन्दगियों के मुताले की तरफ़ भी तवज्जोह दिलाई। इसके बाद बिन्ते-अबरार अहमद साहिबा (रामपुर) ने "मुस्लिम औरतों की सामाजिक ज़िम्मेदारियाँ" के शीर्षक से एक लेख पढ़ा।

सबसे आख़िर में बेगम इकरामुद्दीन साहिबा (इलाहाबाद) ने जमाअते-इस्लामी पर लगाए गए उन इल्ज़ामात (जो क़िसी हद तक औरतों में भी उभर आए थे) को ग़लत साबित करने के लिए एक तक़रीर की। उन्होंने कहा, "औरतों में अव्वल तो इल्म की बहुत कमी है और दूसरे उन्होंने जमाअते-इस्लामी के पैग़ाम को ठीक तरह समझने की अभी कोशिश भी नहीं की, इसलिए आसानी के साथ औरतों में ग़लतफ़हमियाँ फैलाई जा सकती हैं। ज़रूरत इस बात की है कि उनको इस्लामी तालीमात से वाक़िफ़ कराने की ज़्यादा-से-ज़्यादा कोशिश की जाए। इसके बाद ही उनको यह फ़ैसला करने में आसानी होगी कि किस बात का दीन से क्या ताल्लुक़ है फिर उनको इस तरह ग़लतफ़हमियों में आसानी के साथ फँसाया नहीं जा सकेगा।"

चौथी निशस्त (23, अप्रैल 1951 ई०)

औरतों की यह सबसे आख़िरी निशस्त अमीरे-जमाअत की इख़्तितामी तक़रीर (समापन भाषण) के बाद मुनअक़िद हुई। औरतों ने तफ़सीली तौर पर एक दूसरे का तआरुफ़ हासिल किया और इजतिमा के बारे में अपने-अपने तास्सुरात का इज़हार किया और इस बात का अज़्म (संकल्प) किया कि अपने-अपने मक़ाम पर वापस जाकर दावत को समझने और दूसरी बहनों को उससे वाक़िफ़ कराने की ज़्यादा-से-ज़्यादा कोशिश की जाएगी।

इदारा अदबे-इस्लामी का कुल हिन्द इजतिमा

इदारा अदबे-इस्लामी हिन्द का पहला कुल हिन्द इजतिमा 24, अप्रैल 1951 ई० को 10 बजे दिन में शुरू हुआ। इजतिमा की सदारत इदारा अदबे-इस्लामी के नाज़िम जनाब मुहम्मद शफ़ी साहब 'मूनिस' ने की। इजतिमा में आए हुए ज़्यादातर लोगों ने इस निशस्त में शिरकत की। मक़ामी लोग भी शरीक हुए।

सबसे पहले क़ुरआन मजीद की तिलावत हुई। उसके बाद मूनिस साहब ने इदारे की तरफ़ से पेश किए जानेवाले मक़ाले (लेख) का तआरुफ़ कराते

हुए कुछ बातें कहीं और मुहम्मद नजातुल्लाह सिद्दीक़ी को मक़ाला पेश करने के लिए बुलाया।

इस मक़ाले का उनवान था "इस्लामी अदब क्या है?" इसमें इस्लामी अदबी नज़रिए (इस्लामी साहित्यिक दृष्टिकोण) की व्याख्या करते हुए यह बताया गया था कि वह किस तरह दूसरे अदबी नज़रिओं (साहित्यिक विचार धाराओं) से अलग है। ख़ास तौर से हिन्दुस्तान की मौजूदा साहित्यिक विचार धाराओं को सामने रखकर अपना मौक़िफ़ (नीति) वाज़ेह और स्पष्ट किया गया था। आख़िर में इस्लामी अदबी तहरीक के तरीक़े-कार पर भी कुछ रौशनी डाली गई थी और देश के तमाम हस्सास (संवेदनशील) अदीबों से इस मकतबे-फ़िक्रो-अदब का संजीदगी से मुताला करने और उसकी दावत को क़बूल करने की गुज़ारिश की गई। यह मक़ाला पूरे एक घण्टे में पेश किया जा सका।

इसके बाद 'मेयार' के मुदीर (संपादक) सैयद असग़र अली साहब आबिदी ने एक मक़ाला "हमारी अदबी तहरीक" के उनवान से पेश किया। इसमें मौजूदा तरक़्क़ी-पसंद अदबी रुझानात और इस्लामी अदबी नज़रीए, दोनों की तुलना की गई थी। और इस्लामी अदब की उसूली तौर पर भी वज़ाहत (व्याख्या) की गई थी। इन चंद चीज़ों के बाद इजतिमा ज़ुहर की नमाज़ तक के लिए मुल्तवी कर दिया गया।

दूसरी निशस्त (बैठक) ठीक 2:30 पर शुरू हुई। इस बैठक में नीचे लिखी रचनाएँ पेश की गईं।

(1) महमूद फ़ारूक़ी साहब, मुदीर 'अल-इनसाफ़'- अफ़साना
(2) मौलाना सैयद अहमद उरूज क़ादिरी - अफ़साना
(3) इक़बाल नसीम साहब, मेरठ - अफ़साना
(4) मुनीर हुसैन साहब, अलीगढ़ अफ़साना "शैतान के साथ चंद घण्टे"
(5) हफ़ीज़ साहब मेरठी दो ग़ज़लें
(6) नज्मुल-इस्लाम साहब, मुदीर 'मेयार' मेरठ ग़ज़ल

(7)	अबुल-मुजाहिद साहब 'ज़ाहिद'	दो नज़्में
(8)	अनवर आज़मी साहब	चन्द रुबाइयात
(9)	मौलाना वारिस कामिल साहब, मुदीर 'मदीना'	ग़ज़ल
(10)	बदरुल-इस्लाम साहब 'बद्र', लखनवी	नज़्म
(11)	सुहैल ज़ैदी साहब, इलाहाबाद	नज़्म

इसके बाद इन लेखों पर टीका-टिप्पणी का वक़्त था।

मौलाना वारिस कामिल साहब ने इज़हारे-ख़याल करते हुए इस हक़ीक़त को बयान किया कि इस्लामी अदब किस तरह तहरीके-इस्लामी की दावत को लोगों के दिलों में बिठाने का एक असरदार ज़रिआ है। इसके बाद उन्होंने कहा कि 'इस्लामियात' इस्लामी अदब की सबसे नुमायाँ हक़ीक़त होनी चाहिए। हमारे ख़यालात और हमारा किरदार दोनों इस्लामी होने चाहिएँ। यह इस्लामी अदब का सबसे पहला तक़ाज़ा है। उन्होंने तख़लीक़ात (रचनाओं) में अदबी ख़ूबसूरती पैदा करने के लिए और ज़्यादा तवज्जोह देने की ज़रूरत को भी बयान किया।

आख़िर में मूनिस साहब ने हाज़िरीन को मुख़ातब करते हुए कहा कि थोड़े ही वक़्त की कोशिशों से हमारे अहले-क़लम हज़रात की अदबी तख़लीक़ात में जो नुमायाँ तरक़्क़ी महसूस होने लगी है, उसपर अल्लाह तआला का जितना भी शुक्र अदा किया जाए, कम है। लेकिन इसी के साथ यह भी हक़ीक़त है कि अदब को सही मानी में इस्लामी बनाने के लिए अभी बहुत ज़्यादा कोशिश की ज़रूरत है। इस काम को ठीक तरह करने के लिए हमारे फ़नकारों (अदीबों व शाइरों) को इस्लामी अदबी नज़रीए और जाहिली अदबी नज़रीए, दोनों के मुताले के अलावा इनसानी नफ़्सियात और मौजूदा समाज का गहरा मुताला करना होगा ताकि एक तरफ़ वे जाहिली तर्ज़े-ज़िन्दगी पर मुनासिब तनक़ीद करके उसकी एक-एक ख़राबी को अच्छी तरह साफ़-साफ़ बयान कर सकें और दूसरी तरफ़ इस्लामी तरीक़े-ज़िन्दगी और उसके फ़ायदों और बरकतों से समाज को आसानी से वाक़िफ़ और मुतास्सिर किया जा सके।

एक इस्लामी अदीब (लेखक) लिखते वक़्त सबसे ज़्यादा जिस बात का ध्यान रखता है वह उसके लेख का बामक़सद होना है क्योंकि अदब की ख़िदमत ही उसका मक़सद नहीं होता बल्कि वह अपने अस्ल मक़सद को पूरा करने के लिए अदब को एक ज़रिए के तौर पर अपनाता है। लेकिन इसके साथ ही यह सच्चाई भी अपनी जगह एक अटल हक़ीक़त है कि अपनी बात को बेहतर और ख़ूबसूरत अन्दाज़ में बयान किए बिना मतलूबा असर पैदा नहीं हो सकता। इसलिए हमारे लिए अहमियत के मुताबिक़ अदब के दोनों ही पहलुओं का ख़याल रखना ज़रूरी है।

इसके बाद उन्होंने हाज़िरीन का शुक्रिया अदा किया और यह निशस्त भी बर्ख़ास्त हो गई।

इदारा अदबे-इस्लामी की मुशावरती निशस्त

इदारा अदब से मुताल्लिक़ दस्तूरी बातों पर ग़ौर-व-फ़िक्र किया गया और इस काम के लिए दोबारा मजलिसे-शूरा की मीटिंग बुलाई गई। इन दोनों बैठकों में मुख़्तलिफ़ हज़रात को अपने ख़्यालात ज़ाहिर करने का मौक़ा दिया गया। मूनिस साहब जो मजलिस की सदारत कर रहे थे, मुख़्तलिफ़ नज़रियों को एक-दूसरे से क़रीब लाने की कोशिश करते रहे ताकि मजलिस ऐसी किसी दस्तूरी शक्ल तक पहुँच सके जिसपर एक राय हों। लेकिन वक़्त कम था, लिहाज़ा जब मुख़्तलिफ़ ख़यालात पूरी तरह सामने आ गए तो उनकी नुमाइन्दगी करनेवालों की एक सब कमेटी (Sub Committee) बना दी गई जिसके अरकान निम्नलिखित हैं—

(1) सैयद असग़र अली साहब आबिदी

(2) महमूद फ़ारूक़ी साहब

(3) मुहम्मद नजातुल्लाह साहब सिद्दीक़ी

इन हज़रात ने अलग-अलग बैठकों में उन बातों पर फिर ग़ौर किया और आख़िरकार इन तीनों ने अपनी-अपनी तजवीज़ें लिखित तौर पर इदारे के नाज़िम के सुपुर्द कर दीं, ताकि वे उनको अमीरे-जमाअत के सामने रख दें और वे इस सिलसिले में कोई आख़िरी फ़ैसला कर सकें।

(इन तजवीज़ों के सामने आने के बाद अमीरे-जमाअत ने एक दस्तूरी शक्ल तय कर दी और इन लाइनों पर एक दस्तूर (संविधान) तैयार कराके उसकी मंज़ूरी भी दे दी है। उसकी कापियाँ मक़ामी इदारों को भेजी जा चुकी हैं।)

प्रेस की ग़लत बयानी

इज्तिमा की पूरी कार्रवाई सामने आ चुकी है। इसके सिलसिले में अब और ज़्यादा कोई बात पेश करने की नहीं है। लेकिन इजतिमा के बाद मुल्क के एक ख़ास तरह के प्रेस ने इस इज्तिमा के सिलसिले में जिस तरह के झूठ और ग़लत-बयानियों से काम लिया, उसका यहाँ मुख़्तसर तौर पर ज़िक्र किया जा रहा है। ताकि आप अन्दाज़ा कर सकें कि प्रेस इस तरह के मामलों में कितना ज़िम्मेदार है।

उस प्रेस की तरफ़ से नीचे लिखे इल्ज़ामात जमाअत पर लगाए गए।

(1) जमाअते-इस्लामी के कारकुन (कार्यकर्ता) लगातार तीन दिन तक ख़ुफ़िया मीटिंग करते रहे और उन ख़ुफ़िया मीटिंगों में तय किया गया कि हिन्दुओं में जो तरह-तरह के मतभेद पैदा हो गए हैं, उनसे मुसलमान पूरा फ़ायदा उठाने की कोशिश करें और उनके मतभेदों को और हवा दें।

(2) ज़ाहिर तौर पर हर सियासी पार्टी से मिले रहें, लेकिन अन्दर-अन्दर उन पार्टियों की जड़ें खोखली कर दें।

(3) चुनावों के वक़्त मुसलमान एक ही जमाअत के तहत हिस्सा लें और मुसलमानों के लिए विधान सभा में सीटें निश्चित कराने के बारे में क़रारदादें (प्रस्ताव) पास कराएँ और हुकूमत से ज़ोरदार अलफ़ाज़ में इसकी माँग करें।

फ़िर क़य्यिमे-जमाअत ने इन आरोपों का खण्डन करते हुए अपना वज़ाहती बयान छापने के लिए भेजा तो उसको छापा नहीं गया। क़य्यिमे-जमाअत का यह बयान नीचे दिया जा रहा है जो रोज़नामा "आग़ाज़" रामपुर (अप्रैल 1951 ई0) में शाया हुआ।

क़य्यिमे-जमाअत का वज़ाहती बयान

"जमाअते-इस्लामी हिन्द के पिछले दिनों रामपुर में हुए कुल हिन्द इजतिमा के बारे में मक़ामी हिन्दी अख़बार 'प्रकाश' (26, अप्रैल, 1951 ई0) में कुछ ख़बरें छपी हैं, जो बिलकुल ग़लत और बेबुनियाद हैं और उनसे उन लोगों के ग़लतफ़हमी में पड़ जाने की सम्भावना है जो पहले से जमाअत और उसकी दावत से वाक़िफ़ नहीं हैं। इसलिए ज़रूरत महसूस होती है कि कुछ पंक्तियों में उन ख़बरों की हक़ीक़त बयान कर दी जाए। उम्मीद है कि आप इस तरदीद (खण्डन) को छाप कर हमें शुक्रिए का मौक़ा देंगे।"

(1) इस अख़बार में इलज़ाम लगाया गया है कि जमाअते-इस्लामी के कारकुन लगातार तीन दिन तक ख़ुफ़िया मीटिंग करते रहे और इन ख़ुफ़िया मीटिंगों में यह तय किया गया कि हिन्दुओं में जो तरह-तरह के मतभेद पैदा हो गए हैं, उनसे मुसलमान पूरा फ़ायदा उठाने की कोशिश करें और उनके मतभेदों को और ज़्यादा हवा दें।

(2) ज़ाहिर तौर पर हर राजनीतिक पार्टी से मिले रहें, लेकिन अन्दर-अन्दर उन पार्टियों की जड़ें खोखली कर दें।

(3) चुनावों के वक़्त मुसलमान एक ही जमाअत के तहत हिस्सा लें और मुसलमानों के लिए विधान सभा में सीटें निश्चित कराने के बारे में क़रारदादें पास कराएँ और हुकूमत से ज़ोरदार शब्दों में इसकी माँग करें।

हमें अफ़सोस है कि इन बेबुनियाद बातों को उस जमाअत से जोड़ा गया है जिसके मक़सद और तरीक़े-कार से मुसलमानों और ग़ैर-मुस्लिम हज़रात की एक बहुत बड़ी तादाद वाक़िफ़ है। दूर जाने की ज़रूरत नहीं है, ख़ुद इस इजतिमा में जो लोग शरीक हुए हैं बहुत मुमकिन है कि उनके कानों में अभी तक अमीरे-जमाअत मौलाना अबुल-लैस साहब के ये शब्द गूँज रहे होंगे -

"हमारे दीन में, जिसको हम क़ायम करना चाहते हैं, झूठ, चालबाज़ी और धोखाधड़ी, ज़ुल्मो-ज़्यादती वग़ैरा की बिलकुल

> गुंजाइश नहीं है। इसलिए हम जो कुछ कहते और करते हैं, हमारी कोई चीज़ राज़ नहीं है। जो हमारे दिल में है, वही हमारी ज़बानों पर है। अगर हम इसके सिवा कोई और तरीक़े-कार अपनाएँ तो उसके मानी इसके सिवा और कुछ नहीं हो सकते कि हम जिस चीज़ के क़ायम करने के लिए खड़े हुए हैं, उसकी खुद सबसे पहले अपने हाथों जड़ें काट दें।"

इस तरीक़े-कार के मुताबिक़ हमारे ये इजतिमाआत भी बिलकुल खुले आम होते रहे हैं। हमारा कोई इजतिमा भी ऐसा नहीं हुआ जिसका लाउड स्पीकर के ज़रिए पहले से एलान न कर दिया गया हो। यहाँ तक कि रुफ़क़ा की आपसी मुलाक़ातें भी खुली जगहों में होती रहीं और उनमें जमाअत से ताल्लुक़ रखनेवाले और ताल्लुक़ न रखनेवाले हर तरह के लोग बे रोक-टोक शरीक होते रहे हैं। और सच तो यह है कि हमारा कोई इजतिमा खुफ़िया हो भी नहीं सकता था। क्योंकि इजतिमा में शरीक होनेवाले अच्छी तरह जानते हैं कि खुफ़िया पुलिस का कितना बड़ा दस्ता हमारे कामों की निगरानी के लिए तैनात था। वह अकसर अपनी सीमाएँ फलांगते हुए किस तरह दोस्तों की निजी बातों तक में शरीक हो जाया करता था। इसके अलावा बाहर से आनेवालों में कई ग़ैर-मुस्लिम हज़रात भी शामिल रहे हैं और उनका बैठना उन्ही रुफ़क़ा के साथ रहा है। ऐसी हालात में खुद अन्दाज़ा लगाया जा सकता है कि हम खुफ़िया इजतिमाआत, जिनमें ऊपर बयान की गई बातें तय कर सकें, किस तरह कर सकते हैं।

जहाँ तक फूट डालने का ताल्लुक़ है, उसे ग़लत साबित करने के लिए हम अपना पूरा लिट्रेचर और पिछली पूरी सरगर्मियों को पेश कर सकते हैं। खुद इस इजतिमा में भी अमीरे-जमाअत ने जमाअत के तरीक़े-कार को बयान करते हुए फ़रमाया था –

> "दूसरी बात यह है कि हमारे सामने तोड़-फोड़ और बिगाड़ फैलाने जैसा कोई काम नहीं है, क्योंकि हम जो कुछ चाहते हैं, उसके लिए सही तरीक़े-कार यही हो सकता है कि सबसे पहले

इनसान के ज़ेहन और ख़यालात को सुधारा जाए। अल्लाह के नबियों ने यही तरीक़ा अपनाया है और ख़ुद अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल0) की ज़िन्दगी से भी यही साबित होता है।"

इस सिलसिले में अमीरे-जमाअत के एक लेख का एक छोटा सा हिस्सा भी यहाँ नक़्ल करना मुनासिब समझता हूँ जो पिछले महीने "ज़िन्दगी" में छपा है–

"कुछ लोग इलेक्शन से अलग रहने का यह नुक़सान बताते हैं कि इलेक्शन ने हमें यह मौक़ा दिया है कि उन पार्टियों में घुसकर उनको आपस में लड़ा सकें। इसलिए हमें इस मौक़े से ज़रूर फ़ायदा उठाना चाहिए। यह दलील हमारे नज़दीक इन्तिहाई बेवक़ूफ़ी की बात है। अगर यह चीज़ मुमकिन हो तो भी किसी तरह हमें यह शोभा नहीं देता। पहली बात यह कि दुनिया की कोई क़ौम दूसरी क़ौम को नुक़सान पहुँचाकर अपना मुस्तक़बिल नहीं सँवार सकती। इसके लिए ठोस बुनियादों की ज़रूरत होती है। और दूसरी बात यह है कि हम हिन्दुस्तान में यहाँ के आम नफ़ा-नुक़सान से अलग होकर अपने लिए किसी फ़ायदे की उम्मीद नहीं कर सकते। जो चीज़ यहाँ की आम आबादी पर नुक़सानदेह असर डाल सकती है, उसके असरात से हम ख़ुद को भी नहीं बचा सकते। इसलिए जो लोग इस अंदाज़ से सोचते हैं, वे देश के ही दुश्मन नहीं हैं, बल्कि खुद क़ौम और ख़ुद अपने भी दुश्मन हैं। कुछ लोगों के मुँह से इस तरह की दलीलें सुनकर हमें मुसलमानों की हालत पर बेहद दुख होता है।"

(ज़िन्दगी, अप्रैल 1951 ई0, पृष्ठ 7)

इन बातों के अलावा अगर यह बात भी ध्यान में रखी जाए कि पूरे देश में हमारे कारकुनों की तादाद क्या है तो शायद कोई शख़्स ऊपर बयान की गई ख़बरों पर हँसे बिना नहीं रह सकता। हमारे अरकान (सदस्यों) की

तादाद कुल मिलाकर पूरे देश में सिर्फ़ 389 है और जिनमें से कोई भी न तो किसी राजनीतिक पार्टी में शरीक है और न शरीक होने को सही समझता है। इससे अन्दाज़ा कीजिए कि हम इतने और ऐसे अरकान (सदस्यों) के साथ किस तरह देश की दर्जनों मज़बूत राजनीतिक पार्टियों में फूट डालने की हिम्मत कर सकते हैं? क्या यह अत्यन्त हास्यास्पद बात नहीं है?

मेम्बरों और सीटों के सिलसिले में जो बातें कही गई हैं, उनपर वह व्यक्ति यक़ीन कर सकता है जो हमारी जमाअत के बारे में थोड़ी सी जानकारी भी न रखता हो या जिसके ज़ेहन में इसकी गुंजाइश ही न हो कि वह किसी जमाअत का मक़सद इलेक्शन के सिवा कुछ सोच सके। वरना इलेक्शन और सीटों के बारे में जमाअत की निश्चित नीति हालात की जानकारी रखनेवाला हर शख़्स अच्छी तरह जानता है। हमारी दावत का एक हिस्सा यह भी है कि इलेक्शन और राजनीतिक पार्टियों से अलग रहा जाए। और कोई एक मिसाल भी इसके ख़िलाफ़ न सिर्फ़ अरकान बल्कि हमदर्दों के सिलसिले में भी नहीं पेश की जा सकती। ख़ुद माहनामा 'ज़िन्दगी' में भी पिछले कई महीनों से इलेक्शन के बारे में अमीरे-जमाअत का एक लेख छप रहा है जिसका ख़ुलासा यह है कि मुसलमानों को आनेवाले चुनावों से अलग रहना चाहिए। इन बातों के होते हुए आप ख़ुद फ़ैसला करें कि ऊपर दी गई ख़बरें कहाँ तक सही हो सकती हैं। आख़िर में कुछ जुमलों में इस्लाम की तबलीग़ के बारे में भी बताना चाहता हूँ, जिसको ख़बर में ज़्यादा अहमियत दी गई है। जिस इस्लाम को हम मानते और पेश करते हैं वह मुसलमानों के लिए मख़सूस नहीं है बल्कि चन्द आलमगीर (सार्वभौमिक) सच्चाइयों का नाम है जिनकी तबलीग़ हमारे अक़ीदे के मुताबिक़ हर क़ौम और हर ज़माने में अल्लाह के पैग़म्बरों ने की है और इस तबलीग़ का हरगिज़ यह मक़सद नहीं है कि हम मुसलमान नाम की क़ौम की हुकूमत के ख़ाहिशमन्द हैं। इस्लाम और मुसलमान क़ौम दो अलग-अलग चीज़ें हैं और उनपर इसी हैसियत से ग़ौर करना चाहिए। (क़य्यिमे-जमाअत इस्लामी हिन्द, रामपुर)

ये इल्ज़ामात जो ऊपर बयान किए गए अख़बारों ने लगाए थे, इतने बेबुनियाद थे कि उन तमाम मुसलमानों और ग़ैर-मुस्लिमों को, जो इस

इजतिमा में शरीक थे, उन्हें पढ़कर बेहद ताज्जुब और अफ़सोस हुआ। चुनाँचे इजतिमा में शरीक होनेवाले एक ग़ैर-मुस्लिम दोस्त श्री घनश्याम दास गंगोही ने भी इन बेबुनियाद इलज़ामों को पढ़कर एक तरदीदी (खण्डन करनेवाला) बयान छपने के लिए दोनों अख़बारों को भेजा, मगर ये अख़बार (शायद मसलहत के ख़िलाफ़ समझकर) इसे छापने की भी हिम्मत न कर सके।

उसके बाद क़य्यिमे-जमाअत ने अपने मुरासले (पत्र) के साथ श्री घनश्याम दास साहब के बयान का उर्दू तर्जमा उर्दू अख़बारों को भेजा जो तमाम दूसरे अख़बारों में से रोज़नामा 'नाज़िम' रामपुर, 17, मई 1951 ई0 को छपा। घनश्याम दास साहब का पत्र नीचे दिया जा रहा है -

घनश्याम दास साहब का पत्र

श्री सम्पादक महोदय, सलाम!

आपका दैनिक 'स्वदेश' दिनांक 27 अप्रैल को दूसरा अंक मेरी नज़र से गुज़रा। मेरे आश्चर्य एवं दुख की कोई सीमा न रही जब मैंने जमाअते-इस्लामी के कुल हिन्द इजतिमा के बारे में, जो 20, 21, 22 और 23 तारीख़ों में रामपुर में हुआ था, उसका बयान पढ़ा। क्योंकि किसी वजह से मैं भी उन्ही तिथियों में रामपुर में था और इजतिमा की लगभग तमाम बैठकों में सम्मिलित होता रहा। आपके समाचार पत्र का बयान और मैंने जो कुछ वहाँ देखा और सुना, दोनों एक दूसरे के विपरीत हैं।

जमाअते-इस्लामी के राजनीतिक दृष्टिकोण का जहाँ तक सम्बन्ध है, मैंने इजतिमा की कार्रवाइयों में जो समझा है और विशेषत: श्री हबीबुल्लाह साहब की तक़रीर से, जो दूसरे दिन रात के समय हुई थी, यह बात पूरी तरह स्पष्ट हो गई थी कि वर्तमान सेक्युलर स्टेट, जिसको वे 'लादीनी हुकूमत' (अधार्मिक राज्य) कहते हैं, में न चुनावों में भाग लेने का सवाल पैदा होता है और न मुसलमानों के हितों को इस शासन प्रणाली में सुरक्षित कराने का सवाल ही पैदा होता है, क्योंकि उनका मानना यह है कि जो संविधान

ईश्वरीय संविधान से भिन्न है वह मानवता के लिए ग़लत ही नहीं बल्कि हानिकारक भी है। इसलिए किसी भी ऐसे संविधान से जमाअत को कोई रुचि नहीं है।

रहा हिन्दू-मुस्लिम सम्बन्धों के बारे में तो जमाअत का दृष्टिकोण भी कुछ बुरा नहीं है। जमाअत का मानना है कि सारे इनसान एक ही पिता की सन्तान हैं, परन्तु समय के अन्तराल के कारण मानवजाति जातियों एवं वर्गों में बँट गई है, परन्तु फिर भी आपस में बहुत से ऐसे सामाजिक मूल्य हैं जो दोनों में समान हैं और जिनपर हम साथ-साथ काम कर सकते हैं, उठ-बैठ सकते हैं तथा इकट्ठे हो सकते हैं और जिन बातों में भी मतभेद है उनपर शान्त मन से विचार करने का प्रयास कर सकते हैं। बाक़ी मेरी समझ में वहाँ पर कोई गुप्त या उससे मिलती-जुलती कार्रवाई नहीं हुई। तमाम कार्रवाइयाँ खुले इजलास में लाउडस्पीकर के द्वारा हुई हैं।

मैंने इसे अपना कर्त्तव्य समझते हुए कि किसी ग़लत और गुमराहकुन बात से जनता और सरकार में वातावरण दूषित न हो जाए। उस भ्रान्ति को जो समाचार के बयान से पैदा हो सकती है, यह लिखने का साहस किया है।

भवदीय

घनश्याम दास सिंह कौशिक,

प्रधान आर्य समाज,

गंगोह, ज़िला सहारनपुर, 6 मई 1951 ई0

इजतिमा के बारे में इस तरह के शक व सन्देह इतने बेबुनियाद थे कि उसकी पूरी कार्रवाइयों को देखकर उन लोगों को भी आख़िर में अपनी राय बदलनी पड़ी जो पहले उसकी तरफ़ से उलझन में पड़े थे। चुनाँचे मक़ामी रोज़नामा 'आग़ाज़' ने, जो कुछ अन्देशों की वजह से रामपुर में इजतिमा के ख़िलाफ़ था, इजतिमा ख़त्म होने पर अपने तास्सुरात का इज़हार इन लफ़्ज़ों में किया।

'आग़ाज़' का तबसिरा

जमाअते-इस्लामी हिन्द का सालाना इजतिमा 20, 21, 22 अप्रैल को रामपुर में हुआ। उसके बारे में आम तौर से तरह-तरह के अन्दाज़े लगाए जा रहे थे। हो सकता है कुछ लोग इस इजतिमा के सिरे से ख़िलाफ़ हों, चाहे यह जहाँ भी होता। लेकिन ज़्यादातर लोग इस इजतिमा को ग़लत नहीं समझते थे, मगर उनको मसलहत इसी में नज़र आ रही थी कि यह इजतिमा रामपुर में न हो किसी बड़े शहर में हो। अब इन ख़यालात के सिलसिले में किसी तर्क व दलील की ज़रूरत बाक़ी न रही। बहरहाल इजतिमा हुआ और ख़ैरियत से ख़त्म भी हो गया। अपनी खुसूसियत के लिहाज़ से बेहद शानदार तरीक़े पर हुआ और इन्तिहाई पुरसुकून व मुनज़्ज़म तरीक़े से हुआ, जिसमें मुस्लिम और ग़ैर-मुस्लिम सभी शरीक हुए। इस इजतिमा में जो तक़रीरें हुईं उनपर तबसिरे के लिए वक़्त और गुंजाइश चाहिए। इसलिए हम उनपर अपने ख़यालात ज़ाहिर न करते हुए इजतिमा के सुकून व तंज़ीम की तारीफ़ किए बिना नहीं रह सकते और इस सिलसिले में इजतिमा का एहतिमाम करनेवालों को मुबारकबाद का हक़दार समझते हैं कि उन्होंने कोई ऐसा मौक़ा न दिया जो क़ाबिले-एतिराज़ होता या किसी फ़िरक़े और वर्ग को उससे शिकायत की गुंजाइश मिलती। हम इस इजतिमा को नज़्मो-ज़ब्त (अनुशासन) के लिहाज़ से दूसरी जमाअतों के लिए मिसाली और तक़लीद के क़ाबिल (अनुकरणीय) ठहराते हुए मशवरा देंगे कि हर मौक़े पर इसकी तक़लीद (अनुकरण) लाज़िमी समझी जाए।